॥ दीपनिर्व्वाण ॥

॥ जिसको ॥

मुंशी उदितनारायणलाल वर्म्मा वकील

जिलः गाजीपुर ने

भारतवर्षीय इतिहास और हिन्दी भाषा रसिकों के

विनोदार्थ बङ्ग भाषा से आर्य्य भाषा में अनुवाद

किया और इस पुस्तक के छपाने का अधिकार

श्रीयुत बाबू रामकृष्ण वर्म्मा सम्पादक

भारतजीवन को है ।

पञ्चैते पाण्डुपुत्राः क्षितिपतितनया धर्मभीमार्जुनाद्याः ।
शूराः सत्यप्रतिज्ञा दृढ़तरवपुषः केशवेनापिगूढाः ॥
ते वीराः पाणिपात्रे कृपणजनगृहे भिक्षुचर्य्याप्रवृत्ताः ।
कोवाकार्य्यसमर्थो भवति विधिवशाद्भाविनी कर्मरेखा ॥

काशी ।

भारतजीवन प्रेस में मुद्रित हुआ ।

सन् १८९१ ई० ।

मूल्य ।।/

निवेदन

प्रिय पाठकगण !

आप सज्जनों ने मेरे सतीनाटक के अनुवाद का आदर किया जिससे मुझ को इस दूसरी पुस्तक के अनुवाद का साहस हुआ यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है, इसके प्रगट करने की तो कोई आवश्यकता नहीं है कि मैं कायस्थ जाति हूं मुझे सर्व्वदा यवनभाषा से प्रयोजन रहता है अत एव हिन्दीभाषा में मेरे लेख की उत्तमता व लालित्य का होना अति कठिन है किन्तु आपकी गुण ग्रहकता और सज्जनता से दृढ़ आशा है कि इसके अवलोकन से प्रसन्न होकर मेरा उत्साह किसी तीसरे पुस्तक के अनुवाद करने में बढ़ावेंगे और मेरा श्रम सफल करेंगे ।

आपका प्रेमाभिलाषी
उदितनारायणलाल वर्म्मा
ग़ाज़ीपुर ।

—✿✿✿—

उपक्रमणिका।

मुसल्मान लोग जब भारतवर्ष आक्रमण करने आये उसके पहिले जिस समय हिन्दू राजाओं में एकता का दृढ़ बन्धन क्रमशः शिथिल होता चला आता था, और जिस समय परस्पर सभी लोग सर्व प्रधान होने के लिये संकल्प करके घरफूट का सूत्रपात (प्रारंभ) करते थे, उसी समय की एक घटना अवलम्बन करके इस उपन्यास का आरम्भ है; और इसी घरफूट को सुअवसर समझ कर यवनों ने जिस समय भारत के चिरप्रज्वलित दीप को निर्वाण किया, वही दीपनिर्वाण दीपनिर्वाण का अन्त है।

इस उपन्यास में दिल्ली ही प्रधान रंगभूमि है। जिस समय कुरुराज दुर्योधन हस्तिनापुर के राजा थे, उसी समय में पाण्डवश्रेष्ठ युधिष्ठिर ने एक और राजधानी बनाकर उसका नाम इन्द्रप्रस्थ रक्खा। कुरुक्षेत्र के युद्ध होने के उपरान्त पाण्डव लोग एकादि क्रम से तीस पीढ़ी तक इन्द्रप्रस्थ के सिंहासन पर अधिकार करते आये। पाण्डव लोगों के उपरान्त गौतम वंश के राजा हुये। गौतम वंश के राजा दिल्लू ने इन्द्रप्रस्थ के कुछ दक्षिण एक और स्वतंत्र नगरी बनाकर उसी जगह राजधानी स्थापन किया। अपने

नाम से उस नगरी का नाम दिल्ली रक्खा, क्रमशः दिल्ली ही प्रधान होगई, और एक समय में वही दिल्ली प्रायः समस्त भारतवर्ष की राजधानी गिनी गई । फिर कुमायूं देश के राजा पुरुराज ने दिल्लूराज को युद्ध में पराजित करके दिल्ली पर अधिकार किया। इस सकल घटना के उपरान्त तूयार (तोमर) वंश और उसके बाद चौहानवंश दिल्ली के राजा हुये। राजा अनंगपाल ने दिल्ली नगरी को स्तम्भ, (खम्भा) दुर्ग (किला और कोठों अटारियों से विभूषित किया था । अनंगपाल के मृत्यु होने पर उनके दौहित्र, (नाती) अजमेराधिपति सोमेश्वर के पुत्र पृथ्वीराज दिल्ली के सिंहासन पर बैठे। उनके समय में यद्यपि सकल क्षत्री राजा लोग चढ़े बढ़े थे, तथापि घर फूट में उन लोगों की एकता शिथिल होती आती थी। वही घर फूट पीछे सकल अनर्थ का मूल हुआ।

कान्यकुब्जाधिपति जयचन्दही घरफूट के मूल कारण हैं। जिस समय नागौर देश का बहुत काल का सञ्चित ७० लाख स्वर्ण मुद्रा (अशरफी) का पता पाकर पृथ्वीराज ने, चित्तौर के राजा समरसिंह की सहायता से उससे लेने के लिये चाहा, उस समय जयचन्द और पत्तनराज ईर्षावश उनके दर्पचूर्ण करने की अभिलाषा से महम्मदगोरी को देश में बुलवाया। ११३ शकाब्द, अर्थात् ११९१ ईस्वी में

महम्मदगोरी ने भारतवर्ष पर चढ़ाई किया। स्थानेश्वर में हिन्दू और यवनों का घोर युद्ध हुआ। उस युद्ध में ऐसा नहीं हुआ कि पृथ्वीराज और समरसिंह केवल यवनों को पराजितही करके शान्त हो गये, वर्न महम्मद्गोरी को और अनेक बड़े २ यवनों को कैद कर लाये थे। किन्तु अन्त में पृथ्वीराज ने अपनी सुजनता और उन्नति स्वभाव के गुण से उन लोगों को मुक्त करके अपने देश में लौट जाने दिया। स्थानेश्वर के पहिल युद्धवृत्तान्त के साथ हमलोगों ने इस उपन्यास का कोई सम्बन्ध न समझ कर जयचन्द्र को फिर हमलोग उपन्यास में नहीं लाये, और उनकी बिश्वासघातकता का भी विशेष वर्णन नहीं किया; किसी २ स्थान में केवल उनका नाम मात्र उल्लेख किया है।

उस युद्ध में यवनों का पराजित हो कर भाग जाने के दो वर्ष उपरान्त १११५ शकाब्द में फिर वे सब दिल्ली पर चढ़ाई करने के अभिप्राय से आये। जयचन्द्र इत्यादि राजागण ईर्षा के मद में मत्त होकर, सानन्दचित से निश्चिन्त होकर उसे देखते रहे और भीतरही भीतर सहायता करने में भी कसर (त्रुटि) न की। इस बेर भी स्थानेश्वरही में युद्ध हुआ, और इस युद्ध में तीन दिन घोर से घोरतर संग्राम होने पर यवनों की धूर्तता और विश्वासघातकता से हिन्दू

लोग पराजित हुये। तभी से आर्य्य राज्य का लोप होना आरम्भ हुआ।

चित्तौर के राजा समरसिंह पृथ्वीराज के परम बन्धु थे; मुसलमानों के संग पृथ्वीराज का जो दो युद्ध हुआ उन दोनों युद्ध में उन्होंने बड़ी सहायता की। उपन्यास के अनुरोध से हमलोगों ने समरसिंह के सम्बन्ध में दो स्थानों पर इतिहास के व्यतिक्रम करने में बाध्य हुये हैं। प्रथम, हमलोगों ने समरसिंह का वयः क्रम चार वर्ष अधिक किया है। दूसरे, समरसिंह पृथ्वीराज के बहिनोई (भगिनी पति) थे, किन्तु उपन्यास के अनुरोध से हमलोगों ने उस सम्बन्ध की रचा नहीं किया है। यद्यपि यह पुस्तक उपन्यास मात्र है, किन्तु पुस्तक के प्रधान २ व्यक्तिगण प्रायः इतिहासही से लिये गये हैं, और उनलोगों के स्वभाव और जीवन घटना को इतिहास के अनुसार रखने की यथा साध्य चेष्टा की गई है।

कविचन्द यथार्थ में एक प्रसिद्ध राजपूत महाकवि पृथ्वीराज के परम बन्धु थे, और पृथ्वीराज के सहवासही में सर्व्वदा रहते थे। चन्दकवि पुस्तक में कविचन्द्र के नाम से लिखे गये हैं। इङ्गल्याण्ड के सर फिलिप्सिड्नी और सर वालटर रयाली के समान वे काव्यविषय में निपुण थे, युद्ध विषय में भी वैसही दूरदर्शी थे, किन्तु काव्यही उनके

यश का चिन्ह है। उनका सकल महाकाव्य राजपूत लोगों के, विशेषतः पृथ्वीराज के कीर्त्तिकलाप और शूरता पराक्रम से वर्णन हुआ है । सुतराम् समस्त आर्य्य जाति में जैसे रामायण और महाभारत आदरणीय है, ग्रीक (यूनान) लोगों में जैसे होमर आदरणीय है, राजपूत लोगों में चन्दकवि का काव्यसमूह भी वैसेही आदरणीय है। किन्तु चन्दकवि का कपोलकल्पित काव्य बहुत कम है, प्रकृत वृत्तान्त का भाग अधिक है । दुःख का विषय यही है कि उनका समस्त जीवनचरित्र कहीं भी नहीं पाया जाता और उनके काव्यसमूह का अधिकांश प्रायः प्राचीन हिंदी भाषा में छन्दोबद्ध है।

पृथ्वीराज के समय हिन्दू लोगों में तोप का व्यवहार प्रचलित था इसमें बहुतेरों ने कल्पना और सन्देह किया, और कोई २ हमारे स्वजन ने भी इसमें नितान्त कल्पना चित्त में करके उस विषय में पहिले नाना तर्क वितर्क किया, किन्तु फिर जब उन लोगों ने प्रमाण पाया कि यथार्थ में बहुत प्राचीन काल से हमलोगों में तोप प्रचलित है तब उन लोगों का वह सन्देह दूर हुआ, और जिसमे पीछे फिर भी उनके समान कोई दूसरा सन्देह करे, इसी आशंका से उन्होंने भूमिका में तोप व्यवहार विषयक कुछ विशेष रूप से वर्णन करके लिखने में अनुरोध किया।

उन्हीं के अनुरोध से इस स्थल पर तोप सम्बन्ध में संक्षेपतः कुछ कहना पड़ा । किसी २ अंग्रेज़ी इतिहास लेखक ने कहा है * कि बाबर की समय से इस देश में पहिले पहिल तोप का व्यवहार हुआ । उसके पहिले से इस देश में तोप का प्रचलित होना उन लोगों ने स्वीकार नहीं किया है, विशेषतः युरोप में, क्योंकि १३३६ ईस्वी के पहिले तोप प्रचलित नहीं थी । सुतरां उसके सैकड़ों वर्ष पहिले जो हिन्दू लोग तोप बनाने और चलाने जानते थे इसका विश्वास विदेशियों को सहज में नहीं हो सकता । साधारण मत यही है कि १३३६ किम्बा १३३८ ईस्वी में युरोप में पहिले पहिल तोप का प्रचार हुआ । किन्तु बड़ी तहकीकात के बाद इतिहास जाननेवालों में यह अब एक प्रकार सिद्ध हुआ है कि उसके पहिले १३१२ ई० में मूर लोगों ने स्पेन में एक प्रकार के तोप का व्यवहार किया था । मूर लोग जो कि अरबनिवासियों के कर्त्तृक अस्त्र विद्या में दीक्षित (तालीम याफ़्त) हुये थे इसमें सर्वबादी सम्मत है, और अब इस प्रकार से प्रमाण पाया जाता है कि अरबनिवासियों ने भारतवर्ष से चिकित्साविद्या, जोतिर्व्विद्या, गणितशास्त्र इत्यादि की शिक्षा पाया था, इससे

* M. General Brriggs, quoten py Elliot in his Histo y of India.

बोध होता है कि तोप का व्यवहार भी उन लोगों ने भारतवर्ष से शिक्षा पाकर उसके बाद युरोप में प्रचलित किया है।

किन्तु जब मूर लोगों ने युरोप में तोप प्रचलित किया उसके बहुत दिन बाद अंग्रेज़ लोगों ने १३४७ ईस्वी में पहिले पहिल तोप का व्यवहार किया, इसलिये यदि यह बात कि 'भारतवर्ष में भी थोड़ेही दिन से तोप चली है' वे लोग प्रमाणसिद्ध करने की चेष्टा करें तो इसमें आश्चर्य क्या है? किन्तु रामायण और महाभारत में 'शतघ्नी' अस्त्र का उल्लेख है वह अनेक अंग्रेज़ ग्रंथकार लोगों के मत में भी तोप के सिवाय दूसरा कुछ नहीं हो सकता। ह्यालहेड महोदय ने तोप व्यवहार विषय में नाना तर्क वितर्क करके यही स्थिर किया है, कि "हिन्दू और चीन देशीय लोग इतने प्राचीन काल से बारूद का बनाना और व्यवहार करना जानते थे कि उसका निर्णय करना अत्यन्त कठिन है।" (१) किन्तु शतघ्नी विषय में नाना प्रकार के सन्देह रहने पर भी, कविचन्द्र का युद्ध वर्णन पढ़ने से 'पृथ्वीराज के समय में तोप का व्यवहार होता था, इसमें

(1) Halhead says "gun-powder has been known in China as well as Hindustan far beyond all periods of investigation" Quoted by Elliot in his history of India.

हमलोगों को सन्देह नहीं रह सकता । उन्होंने कन्नौज खण्ड में एक जगह लिखा है (१) "सब तोपों से ऐसी विकट ध्वनि और उसके गोलों से ऐसा भयानक शब्द होने लगा कि वह दस कोस तक सुना गया था । फिर "नय लच्च मुद्राहार" नामक काव्य के युद्ध वर्णनस्थल में उन्होंने कहा है 'विषम भार युक्त तोप समूह श्रेणीवद्ध भाव से सज्जित रही ।' एक और जगह लिखा है कि "तोपों का समूह और बारूद की थलिका तीन कोस तक भरी रही ।" जो कोई हिन्दीभाषा जाननेवाले अंग्रेज़ ग्रंथकार है, वाजिहों कविचन्द्र की कोई २ कविता अनुवाद किया हैं, उन लोगों ने भी इस तोप शब्द को (Cannon) कहकर भाषान्तर किया है ।

यमुना स्तम्भ (खम्भ) अब कुतुबमीनार के नाम से प्रसिद्ध है, और उसी नाम केकारण वह हिन्दू लोगों का बनाया होकर भी छिप रहा है । प्रकृत प्रस्ताव में यमुना खम्भ पृथ्वीराज का निर्मित है । कन्यावत्सल पृथ्वीराज ने अपने कन्या के प्रतिदिन सन्ध्याकाल में यमुना दर्शन के

(१) नृप पंग नयर छूटे अराव । कोटहि कगुर चढ़ि २ सिताव जंबूर तोप छूटहि झनकि । दस कोस जाय गोला भनकि । सिरदार भार बाराह रोह । लगो अमंग बरहने कोह ॥

निमित्त उक्त खम्भ को बनवाया था। यह बात हमलोगों की कपोल कल्पित नहीं है। आजकल भी दिल्ली के आस पास और प्राचीन काल के सब लोगोंमें यही चर्चा प्रचलित है। और मेटकाफ, हिवर इत्यादि अनेक अंग्रेज़ और मुसलमान लोगों ने भी इसको प्रमाणित किया है कि यमुना खम्भ हिन्दू लोगों का बनाया हुआ है। यमुना खम्भ के बनाने के कौशल के संग मुसलमान लोगों के खम्भ बनाने के कौशल में अनमेल देखकर बगलार महोदय ने सिद्धान्त किया है कि यमुनाखम्भ हिन्दू लोगों का बनाया हुआ है (३)। फिर अलीगढ़निवासी विख्यात सैय्यद अहमदखां ने, कर्नल केनिङ्हम को उस विषय में जो एक पत्र लिखा है उसमें उन्होंने दिखलाया है (४) कि यमुनाखम्भ कभी मुसलमान-कृत नहीं हो सकता। विशेषत: यमुना खम्भ के नीचे के अलंग में हिन्दू लोगों के पूजन का घाट इत्यादि जो सकल प्रतिमूर्ति हैं इससे वह हिन्दू लोगों का कृत कहा जाना प्रमाणित होता है। यमुनाखम्भ जितना ऊंचा पहिले था अब उतना ऊंचा नहीं है क्योंकि कुतबुद्दीन ने उसका शिखर (कंगुरा) तोड़कर मुसल्मानों के ढंग से फिर उसका शिखर बनवाकर अपने नाम से प्रसिद्ध किया है।

---

(3) Jourual A. S. Bengal for 1864 Vol. 33.

(4) Cunninghan's Archeaological Survcy of India Vol. IV.

जैसे कुरुचेत्र इस समय स्थानेश्वर के नाम से कहा जाता है, उसी प्रकार कुरुचेत्र की पुण्य नदी दृषद्वती भी आजकल कागार (५) नाम से विख्यात है। यह स्थानेश्वर प्रदेश के दचिण अलँग बहती है।

पगली का व्यापार हमलोगों ने एक प्रकृति घटना के अभाव से कल्पित कर लिया है।

कप्तान टाड साहिब के राजस्थान के पढ़ने से जाना जाता है कि आशापूर्णा नामक देवी यथार्थ यही दिल्ली की कुल देवी थीं, और सब राजपूत लोग किसी काम करने के पहिले आशापूर्णा देवी की पूजा करते थे।

---

(5) Elphinstone's History of India.

श्री

दीपनिर्व्वाण।

प्रथम परिच्छेद।

सम्बत १२२९ विक्रमीय शाके १०९४—सन्ध्या समय आज चित्तौर नगरी में महा धूम धाम मँच रही है—राजभवन में आज महोत्सव है। नगर में स्थान २ पर वाद्य वाले उपस्थित हैं; पथ पथ पर दीन दुखी गण को धन बितरण हो रहा है; दीपमाला प्रभृति की ज्योति से नगरी उद्दीप्त हो रही है; घाट बाट वीथी सकल हास्यमय होरहे हैं; नगर के समस्त जन आनन्द में निमग्न हैं; भद्राभद्र सब के द्वार पर कदली खंभ और मंगल कलस स्थापित हैं, और प्रति गृहों में मंगलसूचक संखनाद सुनाई देते हैं; राजगृह शंखध्वनि और नृत्यगीत से परिपूर्ण है, आज इस नगरी के जिस ओर दृष्टि पात करो, सर्व्वत्रही उत्सवमय दीख पड़ता है। यह कैसा उत्सव है?

महाराज समरसिंह के आज पुनः एक पुत्र उत्पन्न हुवा है। चित्तौराधिपति के प्रथम महिषी के गर्भ से तीन पुत्र उत्पन्न हुये। उस महिषी के अकाल मृत्यु पर महाराज ने लक्ष्मीदेवी से बिवाह किया। उनसे कोई पुत्र न होने के

कारण उन्होंने पत्तन राजकन्या कमलादेवी का पाणि-ग्रहण किया। कमलादेवी को आज यह प्रथम सन्तान उत्पन्न हुवा है। तीन पुत्र के सुख से सुखी रहने पर भी समरसिंह ने पुत्रकामना से फिर क्यों विवाह किया? यद्यपि यह कुतूहल जनक है, किन्तु यह कुतूहल कुछ कालानन्तर आनन्ददायक होगा।

सन्तान भूमिष्ठ होने के पूर्व्व महाराज समरसिंह आज चिन्ता में निमग्न होरहेहैं। उनका वही सुप्रशस्त (१) और महत्वप्रकाशक ललाट चिन्ता से किंचित कुंचित हो गया है। उनके सुदीर्घ, स्थिर एवं उज्वल नेत्र की गंभीर और मधुर दृष्टि शून्यदेश में संयुक्त हो रही है। उस मूर्त्ति के अवलोकन मात्र से हृदय में एकक्षण में नाना भाव उदय होते हैं। जैसे अपार अतलसागर की शोभा देख कर समस्त हृदय प्रशस्त होजावे, सकल विस्तीर्ण—सकल महान—सकल आनन्दमय होकर मनको नूतनभाव में परिणत करे, तरंग के संग २ हृदय नाच उठे, किंतु फिर उसी आनन्द प्रकर्ण के मध्य एक भय का भाव भी तरंगित होजावे, उसी प्रकार से समरसिंह के उसी स्थिर गंभीर नयन से नयन मिलतेही हृदय में भक्ति और प्रेम का उदय होता है, फिर उसी के संग २ हृदय कंपित भी हो जाता

(१) सुन्दर

है। उनकी मूर्त्ति तेजस्वी और अहंकार शून्य और कोमल है किन्तु साथही दृढ़ प्रतिज्ञा व्यञ्जक भी है। समरसिंह की अवस्था यद्यपि छब्बीस वर्ष की होगी, किन्तु उनकी वह उन्नत राजमूर्त्ति देखने से यह बोध होता है कि उन की अवस्था बिशेष अधिक है। जिस कक्ष (२) में महाराज बैठे थे उसी कक्ष में सहसा एक भृत्य ने (३) आकर रुद्ध-श्वास से कहा कि महाराज, "राजमहिषी को पुत्र उत्पन्न हुवा है" इस शुभ सम्बाद के सुनते ही महाराज का मुख कमल अतिहर्ष से प्रफुल्लित होगया! पूर्णचन्द्र के उदय से बिशाल समुद्र तुर्त मानो रजतमार्जित (४) होकर उमँग पड़ा।

महाराज समरसिंह ने अत्यन्त प्रसन्नचित्त होकर पुत्र का मुख देखने के हेतु अन्तःपुर में गमन किया। पूर्णिमा तिथि को चन्द्रोदय के संगही कुमार की भी उत्पत्ति हुई। ऐसे शुभ लग्न में कुमार का जन्महोना देखकर सब के हृदय में आह्लाद परिपूर्ण होगया। समरसिंह ने पुत्र को देखकर वहां गमन किया जहां उनके गुरुदेव मंगलाचार्य्य पुत्र का भाग्य निर्णय करते थे मंगलाचार्य्य राजबाटी के उद्यान में कुशासन पर उपबिष्ट थे, हाथ में

(१) प्रकाशक (२) बगल (३) दास (४) चांदी के ऐसा साफ।

योतिष ग्रंथ लिये पट्टवस्त्र का परिधान पहिरे सुदीर्घ शुभ्र ललाट में रक्त चन्दन का त्रिपुंड लगाये शोभायमान थे। वे ग्रंथ देख २ कर नवकुमार के भाग्य की गणना करते और उसी के संग २ तारा नक्षत्र मिलाने के निमित्त बीच २ नभमंडल के ओर भी दृष्टि करते थे। गगन मे मेघ का चिन्ह मात्र भी न था; आकाश स्थान २ तारा गण समूह के प्रकाश से दीप्तमान था; और पूर्ण शशिधर के निर्मल किर्ण से समस्त उद्यान, सरोवर, वृक्ष पत्र, शुभ्रवेष धारण किये थे। भला इस प्रकाश के निकट दीपमाला के प्रकाश की शोभा कब हो सकती है? समरसिंह ने आकर देखा कि गुरुदेव गणना कर रहे हैं, किन्तु उनका मुख बिषाद से अंकित है। उनका मुख देखकर समरसिंह का अह्लाद तिरोहित होगया, और बोले कि 'गुरुदेव जी नवकुमार का भाग्य देखा? कैसा है? वह भविष्यत में राजा होगा?"।

मंगलाचार्य्य ने गंभीर स्वर से कहा, कि 'होगा-किन्तु'।

समरसिंह 'किन्तु' सुनकर विषाद और विस्मय से गुरुदेव की बात शेष न होने पाई थी कि बोल उठे, "इस बार भी किन्तु? हाय! मैंने ऐसे कौन पाप किये हैं, कि मेरे बंश में कोई भी किसी प्रकार से सिंहासनारूढ़ नहीं हो सकता। मेरे ज्येष्ठ पुत्र कल्याणसिंह के भाग्य का लि-

र्णय करके आप ने कहा था—कि "कल्याण यदि सिंहासनारूढ़ हो, तो चित्तौर का सौभाग्य है। ऐसा सुपुत्र तुमारे बंश में आद्यावधि उत्पन्न नहीं हुआ, किंतु कल्याण किसी शाप से राजा होने के उपयुक्त वयःक्रम पर्यन्त इस पृथ्वी पर रहैगा कि नहीं इसी में सन्देह है, तुम उसके राजा होने की आशा त्याग दो" मैंने कल्याण की मंगलकामना से आप को कितनी यात्रा, यज्ञ, हवन करने को कहा था, आप किसी प्रकार उसे शान्ति न कर सके। अब कल्याण की आशा मैंने परित्याग कर दी। कल्याण के जो दो कनिष्ट भ्राता हैं, आप ने कहा "कि वे भी राजा होने के उपयुक्त नहीं हैं, उनके राजा होने से चित्तौर का मंगल नहीं है। तुम फिर बिवाह करो"। उसी कारण मैंने उन सभों की आशा त्याग कर लक्ष्मीदेवी से विवाह किया। उनसे भी कोई सन्तान न देखा तब आप के आज्ञानुसार कमला देवी से बिवाह किया। उनके गर्भवती होने पर आप ने कहा कि "इस बार जो पुत्र जन्म लेगा वही तुमारे राजसिंहासन का अधिकारी होगा"। यह सुन कर अपने हृदय में मैं कितना आनन्दित होता था, ईश्वर को कितना धन्यबाद देता था कि क्या कहूं। इस समय आज आप कहते हैं कि "राजा होगा किन्तु"—तो किन्तु क्यों कहा? हमारे भाग्यही में नहीं है तो आप क्या कीजियेगा?

गुरुदेव बोले 'वत्स ! इतने निराश मत हो! कपाल का लेख खण्डन नहीं होता, मैं क्या करूंगा। इस नवकुमार का समस्त राजलक्षण देखता हूं, जिस प्रकार से हो राजा होगा। किन्तु तीन वर्ष तक इसको एक ग्रह है। इसकारण सावधानी से रखना होगा, इसके अनन्तर फिर कोई भय नहीं है।' उसी समय उनलोगों के निकटही एक चीत्कार का शब्द सुनने में आया। दोनों उसी ओर देखने लगे, देखा कि एक स्त्री के हाथ से कोई वस्तु लेने को दो तीन स्त्रियां चेष्टा कर रही हैं, किन्तु वह उसको नहीं छोड़ती, और उन्हींलोगों के परस्पर वादाविवाद से कलरव होता है, वे सब कोलाहल करते २ राजा के सन्मुख उपस्थित हुयीं। एक ने कहा "महाराज ! यह पगली आप के तत्क्षणिक जन्मे हुए पुत्र को लेकर भाग आई है। उसको हमलोग किसी प्रकार से देना नहीं चाहते थे। इस भय से कि कुमार को किंचित क्लेश हो हमलोग बल प्रकाश नहीं कर सकते" इस बात के शेष होने पर मंगलाचार्य ने समरसिंह से पूछा कि "यह पगली कौन है?" समरसिंह बोले, क्या अपने बिंदु नामक दासी को आप नहीं पहिचानते ? क्या आप ने सुना नहीं, कि वह पागल हो गयी है ? मंगलाचार्य ने कहा, जब से मैं तीर्थाटन करके आया तब से मैंने इसका कुछ समाचार नहीं सुना। और पगली

होने से इसकी आकृति इस समय ऐसी परिवर्तन होगई है कि वास्तव में पहिले मैंने इसको कुछ भी नहीं पहिचाना, किंतु यह पागल हुई कैसे ?

समरसिंह ने कहा 'छ महीने हुये, इसके एक सन्तान उत्पन्न हुवा था, उसके दो तीन महीने अनन्तर वह विधवा होगई उसके थोड़े ही दिनोपरान्त उसके सन्तान की भी मृत्यु होगयी। उसी दिन से बिन्दु पगली होगई है ! और इस समय उसके चित्त पर यह बात चढ़ गई है, कि मैं उसका स्वामी हूं, और उसको यह विश्वास है कि उसका पुत्र मरा नहीं है, जीवित है, कोई चुरा लेगया है। इसके भिन्न और किसी विषय में यह विशेष पगली नहीं दीख पड़ती।" पगली इस समय हर्षपूर्व्वक बालक को चुंबन करते २ बोली, 'महाराज ! आज मैंने अपना हेराया हुवा धन फिर पाया है। अहा हा ! ठीक २ वही है जो चोरी गया था । किसने चुराया था तुम जानते हो ?" यह कहकर समरसिंह के कर्ण के निकट मुख लेजाकर धीमे-स्वर से बोली कि "देखो ! मेरी सौत मेरे बच्चे को गोद में लेकर सोई थी मैं देख कर तुरंत खीच कर लेती हुई चली आती हूं। कैसा छकाया है हा हा हा !" सौतिनों को छकाया है, इसी अह्लाद में उच्च स्वर से हसती है। समरसिंह ने कहा 'नहीं, यह तेरा पुत्र नहीं है। तू जिसके

निकट से ले आई है यह उसीका पुत्र है। तेरा पुत्र होता तो आज तक कितने दिन हुये, बड़ा हुवा, होता, देखती नहीं यह तो अभी तत्कालिक जन्मा हुआ बालक है?' पगली क्रुद्ध होकर बोली, कि "क्या? तुम भी सौतिन के पक्ष में होकर मेरे पुत्र को उसे देने कहते हो? मेरा स्वामी भी मेरे उपर निर्दय है! नां. मै अपने पुत्र को कदापि नहीं दूंगी, बरन तुम मेरे सौतिनों के होकर रहो। फिर मैं तुम को नहीं चाहूंगी। तुम केवल उन्हीं लोगों के स्वामी होजाओ। मैं अपने बच्चे को लेकर रहूंगी। अपना बञ्छित धन, निधि फिर मैंने पाया है -- अब मुझको क्या भावना है?'। पगली बालक को समरसिंह के मुख के निकट लाकर फिर कहने लगी, 'देखो देखो, मेरे बच्चे का मुख देखो ठीक वैसाही है। देखो तो कबकी लाई हूं -- तुमने पुत्र के मुखका एक चुंबन भी नहीं लिया! हां बूझती हूं, दो रानियों के मध्य मे न यह बालक रहा है, एक रानी का पुत्र होता तो अबतक न जाने कितना चुंबन चाटन हुआ होता'। समरसिंह ने कहा, अच्छा, हमारे गोद में देव, चुंबन करें"।

पगली ने कहा -- तुमारे गोद में देते हुये भय मालूम होता है, कि सौतिन के वश में होकर, मेरे पुत्र को उन लोगों को देकर उनका मन संतुष्ट करोगे। अच्छा लेव तु-

मारा भी तो पुत्र है । तुम को भी तो गोद में लेने की इच्छा होगी। यह लेव, एक वेर गोद में लेकर चुंबन करके देदो !" समरसिंह ने पगली की गोद से पुत्र लेकर एक परिचारिका के गोद में दे दिया । वह बालक को लेकर अन्तःपुर में चली गयी । पगली रोष और विस्मययुक्त हो चणेक राजा की ओर देखती रही, फिर रोष से कंपित स्वर से बोली, ' विश्वासघातक ! यही तुमारा कर्तव्य है ! अब न हमारा सौन्दर्य्य है और न रंगरूप है, हां यहीबात यही उचित है ! जाव जाव ! चलेजाव सब चलाजाय ! अब हमारा कौन है ? जब मेरा स्वामी ही मेरा नहीं है, सौतिन बश मेरे बालक को सौतिनों को दे दिया, तब मेरा कौन है ?" पगली रूस कर गाली देती हुई चली गई ! पगली जब तक रही मंगलाचार्य्य उसकी ओर एकटक देखते रहे । उसके गमन करने पर बोले. "तीन वर्ष पर्य्यन्त इस पगली के गोद में कुमार को किसी प्रकार न देना चाहिये, इस पर विशेष ध्यान रखना होगा । एक तो वह क्षिप्त है, उसके गोद में शिशु सन्तान देनाही उचित नहीं, दूसरे उसके मन का भाव प्रतिक्षण परिवर्त्तित हो सकता है, कभी मातृ चक्षू से देख कर अत्यन्त स्नेह करैगी, कभी सपत्नी का पुत्र समझकर उसकी मन्द इच्छा होने में भी आश्चर्य्य नहीं है, और वह बालक को लेने में

जो उत्सुक होती है, इसी से उसको देख कर मुझे भय उत्पन्न होता है, और यदि कुछ है तो उसी के द्वारा ही कुमार को क्लेश होगा, उसी कारण से वह कुमार को मातृभाव से देखती है । जो हो, तीन वर्ष पर्य्यन्त उसकी गोद में किसी प्रकार बालक को न देना चाहिये, और एक रक्षाकवच सर्व्वदा कुमार के कण्ठ देश में रखना होगा । तीन बर्ष यदि निर्विघ्न कटजावै, तो कोई भय नही है ।" मंगलाचार्य्य ने फिर कहा कि "एक बात और भी है । कि लक्ष्मी देवी को कोई सन्तान नहीं है, इसकारण सौत का सन्तान देख मन में क्रोध करके कदापि कोई अनिष्ट कामना करै अतएव वह पथ भी रोकना उचित है । कमलादेवी को सब बात समझा कर कह दो कि लक्ष्मी देवी को यह शिशु सन्तान समर्पण कर देवै। यह बालक आज से उनका दत्तक पुत्र होजावै । जिसमें कमलादेवी का सन्तान कह के कभी कोई न व्यक्ति पुकारै, बस अपना पुत्र होने से लक्ष्मी देवी को हिंसा अथवा द्वेष होने का कोई कारण न रहैगा'। मंगलाचार्य्य ने जो जो कहा, महाराज ने ठीक वैसा ही किया,। नवकुमार का किरणसिंह नाम रक्खा गया। लक्ष्मी देवी उनको पुत्ररूप से पाकर अतिशय आह्लादित हुई। वयो वृद्ध के संग संग कुमार का सौन्दर्य्य बढ़ने लगा । पगली उनको अपना पुत्र जानकर अतिशय

स्नेह करती किन्तु उसके गोद में देने का निषेध था अतएव नितान्त बिनती करने पर भी कोई उसके गोद में देने का साहस न करता था । इस कारण पगली अत्यन्त दुःखित और समय २ पर क्रुद्ध होती थी। किन्तु क्या करै, स्वामी सौतिनो के बश,—उसकी कोई सामर्थ्य न थी।

क्रमशः बालक ने तीसरे बर्ष में पदार्पण किया! इतने दिवस में कुमार को एक बार भी गोद में न पाने से पुनः सन्तान प्राप्ति की आशा से पगली क्रमशः निराश होनेलगी। अब यदि मेरी सौत एक दिन के लिये भी मेरे सन्तान को मेरे गोद में देवै, तो मैं फिर बालक को सौतिन को दूंगी, यही अपने मन में स्थिर करके पगली ने एक परिचारिका से कहा कि "तुम सौतिन से जाकर कहो कि मैं अपना पुत्र उसको देनें को प्रस्तुत हूं। अब वह एक बार भी मेरे गोद में किरण को देगी कि नहीं इस समय किरणसिंह दासी के गोद में थे और वहां और कोई न था। परिचारिका उसके बात पर हँसकर बोली कि 'नहीं वह इसबात के होने पर भी नहीं देंगी"। पगली ऐसा उत्तर मिलने की आशा न करती थी। वह समझती थी, कि ऐसी बात स्वीकार करने से वह अपने पुत्र को अपने गोद में लेने पावेगी। इस समय परिचारिका के बात से आश्चर्य और हताश्वास होकर उसने कातर स्वर से उसके निकट चण-

काल के लिये कुमार की याचना की। परन्तु परिचारिका उस्मे सम्मत न हुई। पगली ने कहा "हमारे बच्चे को एक बेर भी न दोगी ? क्या दुर्भाग्य है ! स्वामी सौतिन के बश, उन्हीं के कहने से मेरे सन्तान को मुझे देना नहीं चाहती! मैंने उन्हीं के स्वीकार करने से अपना बालक सौतिन को दिया था। अब एक बार भी मेरे गोद में न दोगी?"। पगली बालक के मुख की ओर एकटक दृष्टि करके रोने लगी। तिसपर भी परिचारिका ने उसके गोद में कुमार को न दिया। किसी प्रकार बालक को गोद में न प्राप्त होने से क्रमशः पगली अत्यन्त क्रुद्ध होगयी । और अति दुःखित होकर बकते २ चली गई । और बोली "अच्छा रहो, मैं एक दिन अपने बालक को कैसे नहीं ले जाऊंगी तुम देखोगी। एक बार हमारे गोद में नहीं दिया ! भगवान मेरे बालक को मुझे देगा" । परिचारिका ने पगली की बात नहीं समझा । पगली ने उसी दिन से राजभवन परित्याग कर दिया। और कोई न था। वह एक सामान्य स्त्री थी, और बिच्छिप्त थी, चली गई, किसी ने उसका अनुसन्धान भी न किया।

दूसरा परिच्छेद ।

कुमार किरणसिंह की अवस्था का तीसरा वर्ष पूर्ण होगया । अब वे गोद ही में न रहकर उद्यान में कभी २ परिचारिकायों के संग फिरते, कभी दौड़ते, कभी फूल ले-कर छींटते, इसी भांति नाना प्रकार की क्रीड़ा कौतुक करते थे. फिर मध्य २ में आकर दासियों की गोद में बैठते और अर्द्ध स्वर से तोतला कर अनेक बातें करते थे ।

पगली के राजभवन त्यागने के थोड़ेही दिन उपरान्त एक दिन किरणसिंह परिचारिका की अंगुली पकड़ कर उद्यान में भ्रमण करते थे दासी उनको मनमोदक बातें सुनाकर सुमन दे उनका मन संतुष्ट करती थी । कुमार ने कहा "क्योंरि वह पगली क्यों नहीं आई ?" दासी ने कहा "क्यों, वह पगली आकर क्या करेगी ?" कुमार ने कहा, मैं ऐसेही दौड़ २ कर उसके गोद में जाऊंगा" ।

दासी ने कहा 'हम लोग क्यों जाने देंगे ?" ।

कुमार बोले 'वाह ! जाने क्यों नहीं देगी ! मैं दौड़कर उसके गोद में चला जाउंगा, वह मुझको नित चाहती रही । दासी ने कहा 'वह पगली है यदि तुमको पकड़ कर मारे तो ?"

कुमार बोले "वह मुझको मारेगी क्यों ? मुझको तो कोई नहीं मारता, मैं उसके गोद में दौड़ कर जाऊंगा ?"

परिचारिका ने कहा 'तुम उसके गोद में कैसे जाओगे? हम लोग तो जाने नहीं देंगे।" बालकगण को जिस वस्तु को निषेध किया जाता है, उसके निमित्त वह उस समय और भी व्यग्र होते हैं। परिचारिका के बात पर वह हठ करके बोले 'नां, मैं जाऊंगा।' दासी उनके भुलवाने के इच्छा से बोली कि "वह तो यहां नहीं है तुम कैसे जाओगे?'

कुमार ने कहा "नां मैं जाऊंगा" दासी उनको मना करने की चेष्टा से बोली "छिः वह देखो कैसा फूल फूला है।" किरण पगली की कथा भूल गये व्यग्र होकर पूछने लगे, "कहां?"।

दासी बोली 'वही जो, उस पुष्कर के किनारे है। देखो वही तो है।" किरण ने फिर पूछा 'कहां?।

दासी ने कहा "देखो वही न है उस वृक्ष की ओट में पड़गया है वही दीखपड़ता है'। किरण ने कहा कि 'उस फूल को मैं लूंगा, मैं जाऊंगा। यह कहकर कुमार उसी ओर चले। दासी उनको पकड़ कर बोली कि 'ए बच्चा! वह पुष्कर के किनारे फूला है, तुम कैसे ला सकोगे? गिरपड़ोगे।" कुमार ने उसका हाथ छोड़ाकर भागने के निमित्त बल प्रकाश किया, किन्तु मुक्त न होने से कहा कि "मैं वह फूल लूंगा, नहीं पाऊंगा तो माता से कह दूंगा।" दासी पुष्करणी के तीर जाकर कण्टकमय केवड़े के फूल

को तोड़ने में बिषम कष्ट देख कहने लगी, कि "लो बाबू यह जो अनेक प्रकार के सुमन इसी जगह फूले हैं तोड़ देती हूं।"

किरण ने कहा 'नहीं, मैं यह फूल न लूंगा मैं तो वही फूल लूंगा'।

दासी बोली 'अच्छा तो मैं उस द्वार पर जाकर एक पहरी को बुला लाती हूं, वही वहां जाकर फूल तोड़ लावैगा।

किरण बोले 'ना पहरी नहीं देगा, तुही ला दे!' दासी किरण के हाथ से किसी भांति निस्तार न पाकर निर्वश कठिन कष्ट स्वीकार करने में बाध्य हो बोली कि 'अच्छा आवो, उस पुष्कर के निकट चलकर तुमको उस पहरी के निकट रख कर मैं फूल तोड़ लाती हूं।"

चित्तोर का राजगृह ऐसे दुर्ग के आकार से निर्मित है कि समस्त राजभवन उच्च दीवार से वेष्टित है। उस गढ़ के मध्य २ में भी जो २ स्थान और गृह हैं, वे पुष्प वृक्ष, और पत्थर के चित्र और फौआरों (जलयन्त्र) से सुशोभित हैं। उस उद्यान के मध्य से स्थान २ में गृह तक सुन्दर २ पथ चला गया है। गढ़ के चारो दिसा चार प्रवेश द्वार हैं। प्रतिद्वार बाहर और भीतर पहरीगण सर्वदा पहरे पर नियुक्त रहते हैं। इस चार द्वार के भिन्न गृह-

प्रवेश का अन्य द्वार नहीं है। गढ़ के बाहर चतुर्दिक फिर वृक्ष खंभ से उद्यान वेष्टित हैं। इस उद्यान के चतुर्दिक और दीवार नहीं है। [उच्च२] लोहे के दण्डों से घिरा हुवा है और इसके द्वार भी लोहे के बने हुये हैं। जैसे राजभवन के प्राचीर (१) में चार फाटक हैं, वैसे ही इस उद्यान के भी चार प्रधान प्रवेश द्वार बने हैं। किन्तु उसके अतिरिक्त इसके स्थान २ पर और भी छोटे२ लोहे के द्वार है। चार प्रधान द्वार के भांति इन क्षुद्र क्षुद्र द्वारों पर प्रहरी गणों का आडम्बर नहीं था। प्रति क्षुद्र द्वार पर सर्वदा केवल एक प्रहरी नियुक्त रहता था। किसी आवश्यक कार्य्य वश शीघ्रता के कारण प्रधान प्रवेश द्वार से आने जाने में फेर बिलम्ब समझ कर राजमहल के दास दासी कभी २ इसी पथ से गमनागमन करते थे। उनके भिन्न और किसी चर अचर के आने जाने का यह पथ नहीं था। प्रथम इस उद्यान में प्रवेश करके, फिर गढ़ के द्वार को नांघकर तब राज गृह में प्रवेश किया जाता था। आज इसी उद्यान में राजकुमार किरणसिंह परिचारिका के सहित भ्रमण करते हैं। जिस तालाव के तीर केला फूला था, उसके दक्षिण प्रान्त में उपरोक्त प्रकार का एक छोटा

(१) गढ़-कोट।

द्वार था। परिचारिका ने वहां आकर द्वारपाल से कहा कि मैं उस पुष्कर के तीर फूल तोड़ने जाती हूं. तुम क्षणमात्र कुमार को देखो। भाई, ऐसा दुष्ट बालक तो देखा नहीं. जो हठ पकड़ता है सो किसी भांति से छोड़ना जानताही नहीं।" किरण को प्रहरी के निकट रख कर दासी फूल तोड़ने चली। वृक्ष के निकट पहुंच हाथ फैला कर फूल तोड़ना चाहा कि अँगुली में एक कांटा बिध गया इससे उसने हाथ खींच लिया। चित्त में कुमार पर अत्यंन्त क्रुद्ध हुई किन्तु फूल न लेजाने में निस्तार नहीं देखा तो फिर सावधान होकर फूल तोड़ने की चेष्टा किया। अपने अंचल द्वारा सावधानी से डाली पकड़ कर धीरे २ फूल तोड़ा। किन्तु कांटा चुभने से निस्तार न पाया। फूल लेकर ज्योहीं आने लगी, कि उसका अंचल कांटे में ऐसा अँटक गया कि वह तुर्त्त पुष्करणी में गिरपड़ी। गिरतेही "मैं मरी' मैं मरी" कहकर चीत्कार पूर्व्वक बोल उठी। उसको सुनकर, यह समझ कि दासी जल में निमग्न होती है प्रहरी कुमार को छोड़कर दौड़ा हुआ पुष्करणी के तीर आया, और आधे जल में पैठकर उसे खींच कर तीर पर लाया। भय भीत होकर दासी अधमरी(२) सी होगई

(२) अधमृतक।

थी। तीर पर उठकर सचेत होतेही अनेक प्रकार का क्रोध कुमार पर प्रकाश करने लगी। "कि भाई ऐसा बालक तो देखा नहीं, जो बात पकड़ेगा किसी प्रकार से नहीं छोड़ैगा। राजकुमार ठहरा हमलोगों को कुछ बोलना योग्य भी नही"। प्रहरी ने उसका हाथ पकड़ और खींच कर कहा कि "चुप चुप, तेरी बात यदि कोई सुन ले? तो—राजाओं के प्रति राग करना उचित नहीं, यदि किया भी तो हृदय में रखना चाहिये'। प्रहरी उसको लेकर द्वार देश पर आपहुंवा। किन्तु जिस स्थान पर कुमार को छोड़ गया था, वहां उसे नहीं पाया। एक मात्र भयभीत हो गया; प्रथम तो उसको यह आशंका हुई कि खेलते २ कहीं चला गया, दोनों घबड़ा कर उसको इधर उधर खोजने लगे, किन्तु पाया नहीं। तब समझा, कि किसी कार्य्य बश कोई दास दासी इस पथ से आयी है, और कुमार को अकेला देख कर उठा ले गई है। कुमार के अकेले रहने से दासी के चित्त में अत्यन्त भय उत्पन्न हुआ, कि रानी गण यह सुन कर न जाने कौन सा दंड देगी। और रानियों के तिरस्कार का क्या उत्तर दूंगी, यही बिचारते हुये धीरे२ अन्तःपुर में गई। सन्मुख जाने पर रानियों के बोलने के प्रथही बिलाप कर बोली, कि मेरा कोई दोष नहीं है, मैं प्रहरी के निकट रख कर गई थी। किन्तु—किन्तु—"

कमला देवी आश्चर्यान्वित होकर बोलीं, "कि क्या बकती है! पागल तो नहीं होगई?" उनको देखा कि मेरा तिरस्कार नहीं करती हैं, दासी साहस पाकर बोली कि "मैं शपथ करके यथार्थ कहती हूं कि मैं कुमार को प्रहरी के निकट रख कर गई थी। होतव्यता को क्या करू" कमलादेवी डरकर बोलीं कि 'इस समय क्या दैबी दुर्घटना हुई?। क्या प्रहरी के निकट से कुमार कहीं गिरपड़ा?"

दासी बोली "ना ना, कुमार क्यों गिरैगा, मैं बलिजाऊं! मैं पुष्करणी में डूबकर आज मर चुकी थी"। वे लोग हँस कर बोलीं कि "तो फिर कैसे बँच गई?"

दासी बोली "वही प्रहरी मेरा चीत्कार शब्द सुन कर दौड़ा हुआ गया और मुझ को बाहर खींच लाया। आप लोग बिचार कर देखिये, कि इसमें कुछ मेरा दोष है?"

कमला बोली "कौन कहताहै कि दोषहै, जलमें गिरी थी, प्रहरी खींच कर बाहर लाया, इसमें और दोष क्या?"

दासी बोली "मैं भी तो यही कहती हूं, किइसमें और दोष क्या है? तो भी मैं आप लोगों के तिरस्कार के भय से भीत हुई थी"।

कमला ने कहा "इस से भयभीत क्यों हुई? तू मरते २ बँच गई है, हम लोग सुन कर और प्रसन्न हुईं, भला तिरस्कार क्यों करैंगी?

दासी ने कहा "मैं भी तो वही कहती हूं कि आपलोग माता पिता हैं, आप लोग प्यार नहीं करेंगी, तो दूसरा कौन करेगा ? तो अब कहो कुमार कहां हैं? उन्हीं के हेतु मैं यह फूल लोड़ कर लाई हूं" !

कमला ने कहा 'कुमार कहां है इसको हम लोग क्या जानें ?। तूही न कहती है कि प्रहरी के निकट रख कर गई थी ?

दासी बोली 'मैंने समझा कि आप लोगों ने क्षमा किया, और आप लोगों ने सुन भी लिया कि हम लोगों का कुछ भी दोष नहीं, फिर क्यों ? भला अब तो क्षमा करो" कमला देवी विरक्त और क्रुद्ध हो कर बोलीं कि "मालूम होता है कि – तुम्हीं सभों के दोष से कुमार को कहीं चोट लगी है ? क्या हुआ है खुल कर कहती क्यों नहीं ? और हम लोग तेरा यह 'क्षमा करो' सुनना नहीं चाहते"।

दासी ने कहा 'मैं बलिजाऊं । कुमार को कुछ नहीं हुआ"।

कमला ने कहा "तब क्या ?"

दासी बोली "कुमार को अकेला छोड़ कर प्रहरी मुझ को निकालने गया था यही कहती हूं"।

कमला—"अकेला छोड़कर गया था तो क्या हुआ ?"

दासी--"और कुछ नहीं हुआ; केवल हम्हीं लोगों को धोखा हुआ है"।

कमला--"तुम लोगों को कैसे धोखा हुआ ?"

दासी--"कुमार को अकेला देख कर हम लोगों को धोखा देने के निमित्त कोई ले कर चला आया है"।

कमला--"इसमें तेरे धोखा होने की क्या बात है ?"

दासी--"आप लोगों के निकट लावेगा, और आप लोग मुझ पर क्रोध करेंगी"।

कमला--"क्या ? हम लोगों के निकट तो कुमार को कोई नहीं लाया"।

दासी को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ। उसने समझा कि ये लोग मेरे साथ हास्य करती हैं। वह बोली कि 'अपराध क्षमा करो, फिर कभी कुमार को मैं अकेला नहीं छोड़ूंगी। बतलाओ वह कहां हैं मैं उन को फूल दूंगी"। महिषीगण आश्चर्यान्वित और भीत हो कर बोलीं कि "तूने किस के निकट छोड़ा था ? वह कहां ले गया, हम लोग यहां से कैसे जानेंगी ?" दासी कमलादेवी के चरण पर गिर पड़ी और बोली, कि 'यथेष्ट दंड हो चुका है अब फिर मैं कभी ऐसा कर्म्म नहीं करूंगी। अब कहिये कुमार कहां हैं?' महिषीगण उसके कथनोपकथन पर अधिकतर घबड़ाईं और भीत होने लगीं और दासी

को आज्ञा किया कि यथार्थ घटना जो हुई है उस को स-
विस्तर कह । क्रमशः जो घटना हुई थी उसे दासी ने
निवेदन किया, सुन कर वे लोग भयभीत हो कर गृह के
प्रत्येक दास दासी और पहरीगण से कुमार को पूछने लगीं।
सभों ने कहा कि "मैं नहीं जानता" कुमार के निमित्त
राजभवन में कोलाहल मच गया । वे सब लोग उद्यान
और गृह २ में चतुर्दिक ढूंढ़ने लगे। शंका हुई कि "कुमार
अकेला खेलते २ कहीं चला गया" । परन्तु सब को एक
मात्र भय उत्पन्न हो गया कि कहीं पुष्करिणी इत्यादि में
गिर न पड़ा हो, इसी भय से सब भीत हो गईं । क्रमशः
यह समाचार राजा समरसिंह ने सुना । उन्होंने व्याकुल-
चित्त हो कर स्वयं जनों को साथ लेकर, राजगृह के प्र-
त्येक पुष्करिणी प्रत्येक मंच, प्रत्येक गृह को जा जा कर
अनुसंधान किया । इस आशंका में कि कहीं जल में डूब
गया हो, प्रत्येक पुष्करणी में दो दो तीन तीन बार प्रवेशक
करके अनुसंधान किया; किंतु हाय ! उन लोगों का परि-
श्रम व्यर्थ हुआ। उद्यान, बाटी इत्यादि में खोजते २ सन्ध्या
हो गई, तथापि कुमार का पता न लगा । तब समरसिंह
शोकपूर्ण हृदय से परिचारिका को सन्मुख बुला कर
उससे नाना प्रकार का प्रश्न करने लगे । जब प्रहरी तुझ
को निकालने गया, तो किरण किस स्थान पर रहा, उसके

आने में कितना विलम्ब हुआ इत्यादि अनेक प्रश्न किया उसने जिस प्रकार से पहिले कहा था, उसी भांति फिर इस समय भी वर्णन किया ! समरसिंह जिस समय उससे जिज्ञासा करते थे. वहां अनेक लोग उस समय उपस्थित थे। यह सुन कर कि दासी किरण को प्रहरी के निकट रख कर फूल तोड़ने गई थी, एक मनुष्य ने कहा कि "मिथ्या बात है दासी कुमार को रख कर फूल तोड़ने नहीं गई, बरन प्रहरी फूल तोड़ने गया था। क्योंकि उस समय मैं भी उस पथ से जाता था तो द्वार पर प्रहरी को मैंने नहीं देखा था, द्वार देश में केवल दासी को देखा कि कुमार को गोद में ले कर फिरती थी" दासी आश्चर्य से बोली कि "कब गोद में लिये हुये देखा था? जितने क्षण उद्यान में मैं किरण के निकट रही, तिसके मध्य कुमार एक बार भी मेरे गोद में नहीं बैठा, उस का हाथ पकड़ कर मैं फिराती थी। तुम लोग जो कहते हो शपथ करके कहो, और मैं भी करती हूं। और फूल तोड़ने गई थी कि नहीं, इसका भी प्रहरी को साक्षी दूंगी"। प्रहरी ने दासी के बात की समर्थन करके कहा कि "यह यथार्थ है कि दासी कुमार को मेरे निकट रख कर फूल तोड़ने गई थी। मुझ को बोध होता है कि जब मैं तालाब से उसको निकालने गया हूं, तब किसी अन्य दासी के गोद में कु-

मार को देख कर तुम को इसी दासी का भ्रम हुआ है ! किन्तु सो भी कैसे हुआ ? सभी दासियां तो कहती हैं कि "कुमार को नहीं देखा । उन सभों के बात चीत में अकस्मात दो तीन प्रहरी एक साथही बोल उठे, कि 'तब तो एक बात और हो सकती है, आज पगली राजभवन में आई थी, द्वार शून्य और कुमार को अकेला देख कर यदि वह उसी द्वार से लेगयी हो।'' इस बात पर दासी व्यग्र होकर बोल उठी कि "यही होगा, यही ठीक है । एक दिन पगली मेरे गोद से कुमार को लेने आई थी, मैंने निषेध किया उसको नहीं दिया । उस से वह अति क्रुद्ध होकर कुछ बकती हुई चली गयी । उस समय उसके बात का अर्थ मैंने नहीं समझा, कि क्या कहा अब मैं समझ गयी ।" यही कह कर जो २ बात उससे और पगली से हुई थी सब समरसिंह से सविस्तर कह गयी । इस बार वह समझ गये कि कुमार को पगली लेगयी है । मन में बिचारने लगे कि इसके स्मर्ण न होने से व्यर्थ गृह में और निकट २ के स्थान देखने में वृथा इतना समय नष्ट हुआ, जिन्होंने पगली को गृह में प्रवेश करते देखा था, उनको बुलाया और कहा कि "जो पगली को प्रवेश करते हुए देखा था तो इतनी देर तक क्यों नहीं कहा ?" उन लोगों ने कहा "कि उसको प्रवेश करते हुए देखा था, किंतु हम

लोगों को उससे कोई संदेह न हुआ, क्योंकि पगली कुमार को लेकर भागती, तो द्वार लांघने के समय किसी न किसी प्रहरी की दृष्टि अवश्यही पड़ती, किंतु हमलोगों में से किसी ने उसको गढ़ से बाहर होते नहीं देखा, परंतु औरों से जब सुनते हैं कि एक छोटा सा द्वार शून्य था तब मनमें आता है कि उसी द्वार से पगली भागी होगी हमलोगों में से किसी ने देखा नहीं ।"

समरसिंह ने इस समय व्याकुल होकर पगली के उद्देश में चारो ओर लोगों को भेजना आरम्भ किया और आप भी उसके खोज में चले । यह सुन कर कि कुमार को पगली ले गई, मंगलाचार्य्य मन में कल्पना करने लगे कि "यदि पगली के गोद में उस बालक के देने को निषेध न करते, तो यह दुर्घटना न होती। निषेध करना ही विपरीत हुवा यह उसी परामर्श का फल है ।

तीसरा परिच्छेद ।

पगली किस प्रकार से कुमार को लेकर भाग गई थी, उसको हम इस परिच्छेद में प्रकाश करेंगे।

राजगृह त्यागने के समय से पगली अनेक पथ और बन २ भ्रमण करती और भिचाद्वारा उदरपालन करती थी, किन्तु किरण को न भूली। थोड़े ही दिनोपरान्त उ-

सको फिर किरण के देखने की इच्छा अत्यन्त प्रबल हो गई। परन्तु उसने सौतिनों के वशीभूत स्वामी के भवन में जाना अपमानजनक जान कर, अपने चित्त में यह स्थिर किया कि गढ़ के बाहरही से किरण को देखूंगी। पगली किरण के देखनेके निमित्त उसी दिन राजगृहके निकटस्थ राजपथ में अकेली भ्रमण करती रही। किरण अपनी परिचारिका के संग थे। पगली उन्हें दूरही से स्नेहमय नेत्रों से देखा करती थी। किरण को देखकर उनके निकट आनेके हेतु पगली अत्यन्त व्यग्र हो उठी। उसके चित्त से पूर्व्व का यह ध्यान कि 'सौतिनों का गृह है' जाता रहा। वह राज पथ को त्यागकर राजगृहके सन्मुख चली। द्वारपर पहुचते ही एक प्रहरी ने कहा कि "पगली! तू इतने दिनों पर आज यहां कैसे आई?" "पगली" कहने से वह अत्यन्त क्रुद्ध होती थी। उसी क्रोधमें धीमे२ बकती और कुछ भुनभुनाती हुई वहां से उद्यान में जाकर बोली, कि "इसकी ढिठाई तो देखो! दास होकर रानी को पगली कहता है! भला स्वामी तो सौतिनबश होकर कहतेही हैं अतएव मैं उनसे बुरा नहीं मानती"। किरण और परिचारिका जहां थे, पगली वहीं आई पर उनको पाया नहीं। चलते २ कुछ दूर और आने पर अकस्मात् एक चीत्कार शब्द उसके कान में पड़ा और एक प्रहरी को उसने उसी ओर दौड़ते

देखा । प्रहरी को जाते देख कर किरण भी बन्धनमुक्त अश्व के भांति अकेले इच्छानुसार द्वार देश में इधर उधर स्वतंत्र खेलने लगे। किरण को अकेले देखकर पगली ने आशातीत फल पाया। वह हर्ष में शीघ्रता से उनके निकट आकर उपस्थित हुई। द्वार को शून्य देखकर सहसा उसके हृदय में एक नूतन आशा का संचार हुवा। उसने आज अपने बहुत दिनों की आशा पूर्ण करने का सुयोग देखा। किरण को गोदमें लेकर चुम्बन करती हुई पगली बोली 'आहा! ऐसे बच्चे को मुझे नहीं देते हैं। बच्चा! तू मेरा बेटा, मेरा माणिक्य, मेरा धन, मेरा सर्वस्व है। मेरे सदृश तुझे कोई भी प्यार नहीं करता। आओ तुमको लेकर एक फुलवारी दिखालाऊं, बड़ी सुन्दर फुलवारी है।" किरण बोले पहरी "मेरे हेतु फूल लाने गया है वही फूल ले लूं तो चलूं"।

पगली ने कहा "उस फुलवारी में इस फूल से भी अधिक सुन्दर २ फूल लगे हैं, कैसे २ पच्छी है, मैं तुम को सब देखाउंगी, वहां इससे भी सुन्दर फूल पाओगे!" किरण हर्ष साथ बोले "तब चलूंगा - कहां है?" पगली उनको ले कर द्वार बाहर हो बोली "किन्तु तुम रोना मत नहीं तो वे लोग तुमारा रोना सुनकर तुमको मेरे गोद से छीन लेंगे। मेरे संग फुलवारी देखने तुम को नहीं जाने देंगे" पगली के गोद में मुझ को कोई नहीं देता था, 'किरण'

इस बात को समझते थे, इसी कारण उन्होंने सिर हिला कर कहा कि "ना"। पगली ने कहा "तब तुमको लेकर दौड़ी हुई वह फुलवारी देखने चलती हूं।" पगली अत्यन्त बेग से उसी चण किरण को लेकर भागी। उसने राज-पथ परित्याग कर निर्जन पथ का अनुसरण किया और हांपती हुई नदी तीर की ओर चली। वहां पहुंच उसने देखा कि अनेक नौका चलती हैं। उनमें से एक नौका के मांझी को उसने पुकार कर कहा कि 'मैं तुमारे नौका पर चलूंगी, नौका तीरे लगाओ" इस समय कुमार ने पूछा कि वह फुलवारी, कहां है?"।

पगली बोली "यही नौका करके हमलोग फुलवारी देखने चलते हैं।" कुमार फिर कुछ न बोले।

माझी ने कहा कि "हम लोग बहुत दूर जायंगे"।

पगली बोली "तुम लोग जहां चलोगे वहां चलने में हमको असम्मति नहीं है। शिघ्र आओ, बिलम्ब होने से मेरी सौतिनें आकर मेरे बच्चे को ले लेंगी' माझी ने नौका तीर पर लगायी। पगली को नौका पर बैठा कर, वह चल पड़ा। नौका में बैठ, पगली ने कमर से एक बस्त्र की थैली निकाली, और अपने भिचा संचित धन में से कई एक रुपये मांझी के हाथ में देकर बोली कि 'पहुचने पर और भी दूंगी" कुछ दूर जाकर कुमार ने फिर पूछा 'फुल-

वारी कहां है?" पगली ने फिर उनको तरंग और तीर के उद्यानों को दिखाकर भुलवाने की चेष्टा की ।

क्रमशः संध्या हो गई। पश्चिम की ओर गगन में संध्या का तारा दिखाई देने लगा। संध्या समय के मन्द२ पवन से अल्प २ तरंग उठ कर नौका के नीचे के अंग में आकर टकराने लगीं । तरंग भेद से झप झप शब्द से डांड़ फेंक २ करके खेनेवालों ने उच्चस्वर से गीत आरंभ किया। नौका इससमय बहुत दूर जा रही। कुमार भी 'फुलवारी२' कहते २ थक कर पगली के गोद में सो गये। आज कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा है। चन्द्रमा दिखाई नहीं पड़ता। चांदनी से मानो बिलग हो कर इस समय तरंग माला भी नहीं हँसती ऐसा क्यों? । हाय! जान पड़ता है कि चन्द्रमा की शीतल किरण आज इस पृथ्वी को शीतल करने न आवेगी। पूर्व्व दिशा गगन में देखो ! चन्द्रमा के स्थान पर मेघ ने आकर अधिकार किया है । क्रमशः देखतेही २ चतुर्दिक मेघ व्याप्त होगया । पवन का वेग कुछ बढ़ने लगा और उसके संग तरंग भी उठने लगी । क्षणकाल के उपरान्तही पवन की गति अस्थिर हो गई, कभी दक्षिण कभी पश्चिम और कभी दूसरे ओर से बायु चलने लगती थी । उसके संग मध्य २ में मेघ का गर्ज्जन, बज्र का कड़ २ शब्द होने लगा । मांझियों को फिर कुछ देखने अथवा सुने का

उपाय न रहा। बायू के प्रबल वेग और उच्चतरंग के उठने से नौका में जल प्रवेश करने लगा। सब मांझी व्यग्र हो कर नौका को तीर पर लाने की चेष्टा करने लगे। बिद्युत की ज्योति और किंचित अनुमान से वे लोग नौका को तीर की ओर ले चले। कुछ दूर नौका आगे बढ़ी कि एक ही तरंग से उन लोगों का सब परिश्रम व्यर्थ हो गया। अति वृष्टि और आंधी के शब्द से कुमार की निद्रा भंग हो गई। वे माता की गोद में अपने को न देख और क्षुधा से पिड़ित होकर उच्चःस्वर से रोदन करने लगे। पगली ने उनको भुलवाने की इच्छा की। क्रमशः रोते २ शांत होकर वे फिर सो गये।

इधर मांझी लोग यह कुलक्षण देख कर अत्यन्त भय भीत हुये और फिर नौका तीरे लगाने की चेष्टा करने लगे किन्तु पुनः एक तरंग ने आकर बाधा किया। बारम्बार इसी प्रकार बाधा पाकर अंत में वे लोग निराश होकर उच्चस्वर से ईश्वर का नाम लेने लगे। देखते ही देखते फिर एक तरंग आई। फिर दूसरी फिर तीसरी—तले उपर दो तीन लहरें ऐसी प्रबल उठीं कि नौका अचानचक उलट गई। नौकारोही सब जल में डूब गये। पगली के डूबने के समय कुमार उस्के गोद से गिरकर दूर जापड़े। मल्लाह प्रभृति जो तैर सकते थे पार जाने के हेतु हाथ पैर मारने लगे। अन्ध-

कार के कारण कोई किसी की सहायता न कर सक्ता था।

इधर राजगृह के लोग पगली के अनुसंधान में चले कि थोड़े ही देर में संध्या आरम्भ होगई। उसके संगही आंधी आई और राशि की राशि धूलिकण उड़ २ कर उनलोगों के मुख और नेत्रों में प्रवेश करने लगी। उस धूलि और भयंकर अन्धकार में निकट की बस्तु भी देखना उन लोगों को दुष्कर हो गया। क्रमशः आंधी के संग वृष्टि भी आरंभ हुई और वृक्ष सब टूट २ कर मरमरा कर गिरने लगे।

जो लोग चितौर के बाहर स्थान २ पर खोजनेगये थे वे अत्यन्त कष्ट से नगर में लौट आये। वहां पुराने २ अट्टालिकायों के जीर्ण भागों के गिरने का शब्द 'धड़ २ पड़ २ धम २' उन लोगों के कर्णगोचर होने लगा। किसी अट्टालिका का जीर्ण अंश किसी के अंग पर गिरते २ बच जाता था। भूमि पर गिरे हुये वृक्ष से ठोकर लगकर किसी को गुरुतर आघात हुवा, कोई घोर अन्धकार में पथ भूल गया इसी प्रकार राजकुमार के अनुसंधान में कष्ट भोगने के कारण बिशेष खोज करने में वे लोग असमर्थ हो अतिकष्ट से राजभवन को फिर आये। आने के समय सबको परस्पर यह आशा होने लगी, कि दूसरे पथ से कोई व्यक्ति कुमार को अबलों राजगृह में ले गया होगा।

किन्तु सब लोगों के फिर आने पर भी उसी झड़ वृष्टि

अन्धकार और कुसमय मे हतभाग्य समरसिंह निज प्राणमुकुल खो कर, वातक्षुभित सागर में वायुग्रस्त नौका की भांति उन्मत्त होकर इधर उधर फिरने लगे। प्रत्येक वायु शब्द को सुनकर वे अपने पुत्र का रोदन अनुमान करते थे। अन्धकार में दूर के छोटे २ वृक्ष देख कर उन को अपने पुत्र ही का भ्रम होता था। ज्यों २ निराश होते त्यों २ और भी अधिक उन्मत्त होते जाते थे। हा विधातः! आज तुमारी मनोकामना पूर्ण हुई। अदृष्ट! तुमने राजा की चढ़ी बढ़ी योग्यता का परिहास करके आज अपना कठोर लेख सार्थक किया। तुमने समरसिंह के गोद से उनका सन्तान ले लिया और आज हतभाग्य राजा के वर्त्तमान आनन्द और भविष्यत आशा को नष्ट कर दिया।

फिरते २ वे कुछ देर में नदी के तीर पर गये। देखा कि वही प्रशान्त मृदुल शब्द करनेवाली नदी इस समय लोकसंहारिणी मूर्ति धारण कर क्रोध से भयंकर तर्ज्जन गर्ज्जन करती है। उस के मध्य में एक भी नौका नहीं है। तीर पर भी खाली नौका बाँध २ कर देशीय नाविकगण इस कुसमय में अपने २ गृह पर गये हैं। केवल तीरस्थ व्यापारियों के नौका के लोग रह गये। सकल मनुष्य कुसमय देख कर सावधान हो गये थे। जो लोग सचेत न थे वे इस क्षण उसका फल भोग रहे थे। उन्होंने

एक महाजनी नौका के निकट आकर मांझी से पूछा कि तुमने इस नदी के तीर से एक स्त्री को एक सुन्दर बालक गोद में लिये हुये जाते देखा है ?" मांझी उनका उन्मत्त बेष देख कर बोला कि "यह पागल है क्या ? हम लोग नदी पर रहते हैं, दूर से कितनी स्त्रियों के गोद में बालक देखा करते हैं. परन्तु यह तो नहीं देखते कि बालक सु-न्दर है, कि नहीं, और उसका बयस कितना है अथवा स्त्री कैसी है" समरसिंह ने उससे और दो एक प्रश्न किये किन्तु उसमें भी उसी प्रकार का निरर्थक उत्तर पाकर उसे छोड़ एक दूसरी नौका के निकट जा उसके माझी से भी उसी प्रकार पूछा । उसने कहा कि "हमलोग अपनी २ नौका में व्यस्त रहते हैं, तीर होकर कौन किस को गोद में लेकर कब कहां जाता है, इस के देखने का सावकाश हमलोगों को नहीं रहता" । वहां से वे और एक तीसरे माझी के निकट आये । वह माझी बोला कि 'महाशय ! हमलोग विदेशी हैं, अन्न के चिन्ता में अपने देश से यहां आये हैं, हमलोगों से ऐसी ऐसी बात पूछना व्यर्थ है क्योंकि हमलोग कुछ नहीं बतला सकते' । समरसिंह ने इसी प्र-कार उन बिदेशीयों के निकट भी कुछ अनुसन्धान न पाया । और स्वदेशी माझियों को भी वहां न देखा कि उनसे कुमार की बात पूछें ।

वे यही पूछते थे कि "पगली तीर से हो कर कुमार को ले गई है कि नहीं? किन्तु हाय! उन्होंने यह नहीं जाना कि अभी एक ही क्षण पूर्व इसी नदी से उन का फिरण गया है।

समरसिंह के मन में यह बात कभी न आई थी कि पगली कुमार को लेकर चित्तौर नगर त्याग चली जायगी।

किसी प्रकार कुमार के प्राप्त न होने पर राजा भी शान्त क्लान्त होकर गृह लौट आने को बाध्य हुये। मायाविनी आशा ने उनसे कहा कि "क्यों व्यर्थ इस समय यहां घूमते फिरते हो? तुमारे हृदयमणि को इस समय दूसरे ओर से दूसरा मनुष्य गृह पर फेर ले गया है। कुमार इस समय निज माता की गोद में सो कर कितनी बात चीत करते हैं। राजभवन में चतुर्दिक अह्लाद सूचक हास्य मँच गया है, और तुम यहां घूमते फिरते हो। जाओ शीघ्र जाओ, राजगृह में जातेही से कुमार को देखोगे"। आशा की बात में राजा उसी समय राजभवन को चले। स्थिर सागर जैसे प्रबल वायु के बेग से भयानक हो जाता है, आज वही गंभीर राजमूर्ति को उसी रूप शोकोन्मत्त देखकर किसका पाषाण हृदय व्यथित न होता होगा? वे पथ में आते हुये 'कुमार कुमार' शब्द से मार्ग और घाटों पर पुकारने लगे। कुमार ने उनका उत्तर न दिया और

गृह में आने पर भी कुमार को न पाया। देखा कि उनकी माता का गोद शून्य है। उनकी माता कंपितहृदय, और सजलनयन से उन्हीं की प्रतीक्षा करती हैं। इसी आशा से कि 'वे कुमार को लेकर फिर आवेंगी' रानीगण प्रति-शब्द पर उन्हीं के आगमन की बाट जोहतीं थीं। राजा गृह पर आये, आशा ने भी उनको त्याग कर दिया। वे हताश होकर गिर पड़े।

राजा के निराश और अकेले फिर आने से गृह में और भी हाहाकार मच गया। उस रात्रि किसी को भी निद्रा न आई। अब कौन किस प्रान्त में कुमार को खोज-ने जायगा, इसी प्रबन्ध बिचार में सारीरात बीत गई और प्रभात हो गया। किसी ने कहा कि "पगली किसी पर्वत के गुहा में है, वहीं लोगों को भेजो" किसी ने कहा कि 'वहां क्यों होगी, पगली पर्व्वत पर जाने में अत्यन्त डरती थी, पर्व्वत पर वह कभी न गई होगी, और कहीं होगी' इसो प्रकार अनेक मनुष्य अनेक बातें कहने लगे। किन्तु क्या आश्चर्य है! कि यह बात किसी के मुख से न नि-कली, कि पगली चित्तौर से भागने के समय नौका के पथ से भी जासकती है। भोरही फिर कुमार के उद्देश में लोग चले। कुछ काल उपरान्त कई एक मनुष्य पगली का मृत देह लेकर राजगृह में फिर आये। समरसिंह के मस्तक

पर मानों बज्राघात होगया। उन्होंने अनुमान किया कि पगली के संग कुमार की भी मृत्यु होगयी होगी। फिर कम्पित स्वर से बोले कि 'यह मृतक शरीर कहां पाया ?" जो लोग शव लाये थे बोले कि "इस मृतक देह को हम लोगों ने खोजते २ नदी के तीर पर देखा था वहीं से लिये आते हैं।"

राजा ने कहा 'तो क्या वहां कुमार को नहीं देखा ?'।

उन लोगों ने कहा 'जी नहीं'।

राजा बोले "तो कुमार क्या हुआ ? और पगली कैसे मरी?' । वे लोग बोले जान पड़ता है कि वह नौका पर बैठ कर, कल्ह उसी घोर वृष्टि और आंधी के समय जाती थी नौका डूब गई है" समरसिंह ने वही सम्भव जान कर रात्रि के आंधी का समस्त संबाद लेने के निमित्त लोगों को भेजा। उन्होंने सब समाचार जान फिर आकर खबर दी कि हमलोग बहुत दूर तक गये थे वहां एक चट्टान पर एक टुटी हुई नौका देख आये हैं। रात्रि के झड़ में उसी जगह नौका टूट गयी है। और मांझी गण से जो पूछा तो उन लोगों ने भी कहा कि "एक स्त्री तीन चार बर्ष का एक बालक गोद में लिये हुये नौका पर सवार होकर जाती थी उसको हमलोगों ने भी देखा था।" उन लोगों ने जिस प्रकार से वर्णन किया, उससे तो वही स्त्री

पगली और बालक कुमार मालूम होते हैं इसमें कोई सन्देह नहीं है। पगली डूबकर क्रमशः प्रवाह से इस ओर आकर प्रगट हुई है, किन्तु कुमार के विषय में कुछ नहीं कह कसते कि क्या हुवा"।

समरसिंह ने उन लोगों की बात सुनकर, कुमार की क्या दशा हुई इसका अनुमान कर लिया। उनकी पुनः प्राप्ति की आशा फिर समरसिंह को कुछ भी न रही। यद्यपि वे पूर्व्व ही से निराश होगये थे तथापि हम नहीं कह सकते कि उनको बिन्दुमात्र भी आशा न रही, आशाही मनुष्य का प्रधान जीवनोपाय है, आशा ही के आधार पर संसार चलता है। जिस समय हम कहें कि 'अब आशा नहीं है' अनुसन्धान करके देखा गया है, कि उस समय भी हृदय के एक स्थान में कण मात्र आशा गुप्त रहती है। हम अल्प काल भी आशा को त्यागना नहीं चाहते। नितान्त बाध्य होने पर शेष अवस्था में हमलोग आशा को त्याग करते हैं।

प्रथम तो कभी २ समरसिंह के मन में यह बात आती थी कि कुमार जीवित हैं और अब भी हम उन्हें पा सकते हैं किन्तु इस बार सम्पूर्ण निराश हो गये।

उसी दिन संध्या समय समरसिंह चित्तौराधिष्ठात्री चतुर्भुजा देवी के मन्दिर में अकेले खड़े होकर क्या करते थे? वे नेत्र बंद करके हाथ जोड़ एकाग्रचित्त से देवी की

उपासना में लीन थे । कष्ट के उपरान्त नैराश्य होने से उनके मुखमंडल से स्वर्गीय भाव लक्षित होता है । उन्होंने हृदय को अनेक प्रकार से संयत कर लिया था । इस समय उनके सीस पर मुकुट शोभित न था, निकटही एक आसन पर रक्खा था, अंग में राजकीय वस्त्राभूषण भी न थे, आज समरसिंह समान्य वेष में देवी की आराधना करने आये हैं । उपासना समाप्त होने पर भक्ति भाव से उन्होंने साष्टांग प्रणाम किया और उठ कर आसन पर से मुकुट हाथ में ले देवी को सम्बोधन कर बोले कि "हे देवी चतुर्भुजे ! आज मैं तुमारे पदसरोज पर यह मुकुट परित्याग करता हूं, आज से फिर कभी मुकुट सीस पर धारण न करूंगा, राजकीय वेष भूषण से सज्जित न होऊंगा; आज से इस मस्तक पर केवल जटाभार वहन करूंगा, आज से किसी को भी राजा के नाम से अपने को संबोधन करने न दूंगा, । भगवति । मेरे मन का जो कुछ वृथा अहंकार है उसे मैं आज तुमारे सन्मुख विसर्ज्जन करता हूं; किन्तु जिसने मेरे इस अहंकार को शान्ति किया है, जिसने इस बहुयत्नसंचित आशा को निर्मूल किया है, उसको इस समय भी नहीं भूल सकूंगा । हे देवि ! तुमारी ही इच्छा पूर्ण हो, तुमारी ही आज्ञा पालन करने में हृदय समर्थ हो ।" यही कहकर महाराज ने देवी के चरण पर

मुकुट फेंक दिया और प्रणाम करके मन्दिर से चले आये।

उसी दिन से इनका नाम योगीन्द्र हुवा; और इसी योगीन्द्र नाम से वे इस इतिहास में विख्यात हैं।

—***—

चौथा परिच्छेद।

यमुना नदी की एक शाखा अलवर नगर के प्रान्त से हो कर बहती हुई जाती है। पूर्वोक्त घटना के सात वर्ष उपरान्त सम्बत १२३८ बिक्रमीय ११०३ शाके में उसी नदी पर एक नौका जाती थी। उस समय निशा वितीत हुई और प्रभात हो चला। पूर्व्वदिशा में तरुण उषा की छटा देखाई देती थी। पक्षी गण मन के उल्लास से मधुर स्वर से गा रहे थे। प्रभात का त्रिबिध समीर मंद २ आकर धीरे २ तरुलता को आलिंगन करता और उसके कोमल चुम्ब-न से निद्रित कुसुम कलियां चटक २ कर नेत्र खोल रहीं थीं।

रात्रि व्यतीत देखकर नौका के मध्य से एक मनुष्य ने कहा कि "नौका तीरे लगाओ, मैं अब उतरूंगा।" नौका तरंग से डोलती हुई धीरे २ तीरे आने लगी। तुर्त एक प्रौढ़-वयस्क पुरुष एक बालिका को गोद में लेकर नौका से उतरे। पुरुष की अवस्था अनुमान से चालीस वर्ष होगी। इनके केश और श्मश्रु अधिकांश पक गये हैं, मुख पर

कालिमा पड़ गयी है। हँसी का चिन्ह मात्र भी लक्षित नहीं होता। उनके मुख से स्पष्ट प्रगट होता है कि इनके हृदय में घोर अन्धकार है और जान पड़ता है कि युवा अवस्था का सुख इन्होंने सभी त्याग कर दिया है। उनका परिधान गेरूआ वस्त्र है। किन्तु परिधान के अनाभ्यास लक्षित होने से बोध होता है कि वह उनका नूतन व्यवहार है। बालिका चार पांच बर्ष की होगी, उसके लंबित छुटे हुये केशदाम दोनों कपोल ढाके बक्षदेश में पड़े हुये हैं। केश के मध्य से सुकुमार चंचल नेत्र बुद्धि की ज्योति से प्रकाश हैं और शैशव का कोमल मधुर हास्य बिम्ब अधर से लग रहा है। रूप के संग बुद्धि के सौन्दर्य्य से उसके मुख मंडल की गुरुता बढ़ गयी है। बालिका का परिधान पिता के भांति हीन नहीं है। उसके बस्त्राभूषण देख कर बोध होता है कि वह किसी धनाढ्य की कन्या है। पुरुष ने उतर कर एक सन्दूक से जो वे हाथ में लिये थे कुछ मुद्रा निकाल कर माझी को दिया। मुद्रा के संग ही एक टुकड़ा कागज का उनके हाथ में आगया। सन्दूक में से उन्होंने एक २ करके और भी दो तीन टुकड़े कागज के बाहर निकाल पहिले कागज के संग एकत्र कर नदी के जल में फेक दिये। कागज बह चला, वे कन्या को लेकर नदी तट पर बैठ गये। क्षणेक उपरान्त बालिका बोली कि 'पिता

गृह पर चलोगी न ?"। पिता गंभीर स्वर से बोले 'शैल ! तुमारे पिता का कोई गृह नहीं है"। बालिका बोली "तब हम लोग कहां रहेंगी ?"।

पिता ने कहा "बन में"।

बालिका बोली "तो चलो हम लोग बन में चलैं ! बाबा ! बन कैसा है ?" बालिका को इस दुःख की अवस्था में भी सुखी देख कर उनके उसी सूखे हुये अधर पर हंसी का रेख दीखपड़ा। वे उसके बात का उत्तर न देकर अश्रु-पूर्ण लोचन से उसका मुख चुंबन कर फिर चिन्ता में मग्न होगये। चणेक पर फिर बालिका ने अंगुली से दिखाकर कहा "देखो देखो ! बाबा, वह जल में कौन खड़ा होकर हम लोगों की ओर देखता है।' वे उसी ओर देखने लगे, एक मनुष्य सन्यासी प्रातःकाल की क्रिया कर उन लोगों की ओर दृष्टि किये हुये जल से निकला आता था। सन्यासी ने उन दोनों की सब बातें सुनी थीं। वे क्रमशः उन लोगों के निकट ही आ गये। सन्यासी को देख बालिका के पिता ने उठ कर प्रणाम किया। वे आशीर्वाद देकर बोले 'मेरे संग आओ।' बालिका के पिताने अकस्मात् इस बात से आश्चर्यान्वित हो कर कारण पूछा, सन्यासी ने कहा "इस समय कारण मत पूछो फेर कहूंगा।" बालिका के पिता को इस बात से अधिकतर आश्चर्य्य हुआ किन्तु वे कन्या और अपने

पथ के सहारे उसी सन्दूक को लेकर सन्यासी के पीछे २ चलने लगे।

वहां से चार पांच कोस दूर अलवर के सिवानों के बाहर छोटी २ पर्वतश्रेणियां सन्निवेशित हैं। उनमें से एक क्षुद्र पर्वत के ऊपर सन्यासी की कुटी थी। इसी कुटी में सन्यासी उनलोगों को अपने संग ले आये। पहाड़ी असभ्य मनुष्यों के अतिरिक्त इस पर्वत पर सचराचर और कोई दीख न पड़ता था। केवल कभी २ कोई अजमेर से दिल्ली जाने के समय इसी पर्वत से जाता। कारण यह था कि इस जात्रा को दूसरे सुगम पथ रहने पर भी इस पर्वत के पथ से शीघ्र पहुचने के कारण, किसी विशेष प्रयोजन होने से लोग कष्ट कर के भी इसी मार्ग से जाते थे; इस पर्वत पर हम लोगों को फिर भी आना होगा अतएव हमने ऊपर इतना वर्णन कर दिया है।

सन्यासी को आते देख एक प्रायः दश वर्ष का बालक हँसते २ 'पिता पिता' कहता हुवा उनके निकट आकर बोला 'पिता जी आप तो इस कुटी को त्याग कर कहीं न जाते थे, आज इतनी रात्रि रहते ही नदी स्नान करने गये तौभी इतना बिलम्ब करके आये। फिर मैं आपको अकेले जाने न दूंगा – ये लोग कौन हैं?" सन्यासी बोले "अच्छा मैं फिर अकेले कहीं न जाऊंगा, अब से तुमको संग लेकर

जाया करूंगा, ये लोग मेरे अतिथि हैं, इस समय यहीं रहेंगे"। अतिथि सुन कर बालक को अतिशय आह्लाद हुवा और शीघ्र ही अतिथि सेवा के उद्योग में चले गये। कुटी में आकर बालिका के पिता ने पूछा कि "कि आप जिस कारण हमे लिवालाये हैं कहिये" सन्यासी ने कहा कि "कहता हूं! प्रथम तुम मेरे प्रश्न का उत्तर दो। तुम कहां से यहां आते हो?'

बालिका के पिता ने कहा कि "क्षमा करो ! मुझे यह बतलाने की इच्छा नहीं है"।

सन्यासी ने कहा "उसे मैं जानता हूं केवल परीक्षा के निमित्त मैंने इस बात को पूछा था, तो तुम छद्म वेश में देश त्याग कर यहां आये हो?"

बालिका के पिता बोले 'आपने किस प्रकार जाना?'

सन्यासी ने कहा तुमसे कन्या से जो बात चीत होती थी उसे सुनकर मुझको इसी प्रकार का अनुमान हुवा है। मेरी भी एक दिन यही दशा हुई थी। पथ २ छद्मवेष में मैं फिरता था, किन्तु उस समय भी अपना देश त्याग नहीं किया। अस्तु सब जाने दो--तुम को किस निमित्त मैं यहां ले आया सो कहता हूं, तुम छद्म वेश में रहने की इच्छा करते हो?"।

पिता बोले 'हां'।

सन्यासी ने कहा "यह कुटी अति निर्जन है, इस स्थान पर निःशंकचित्त से तुम बास कर सकते हो, इसी निमित्त तुम लोगों को मैं इस स्थान पर ले आया हूं' । बालिका के पिता ग्लानि करके बोले 'मैं समझता हूं, कि हमलोगों को आश्रयहीन देख कर आप की दया हुई है, इसी हेतु अपने कुटी में हम लोगों को आप आश्रय देते हैं, किन्तु यहां रहने की मेरी सम्मति नही है, इसमें आप लोगों को असुभीता होगा।"

सन्यासी ने समझा कि बालिका के पिता किसी के अनुग्रह के इच्छुक नहीं हैं, बोले कि "हम लोगों के निमित्त तुम चिन्ता मत करो । हम लोगों को कोई असुभीता नहीं होगा। तुमारे मंन का भाव मैं यथार्थ बूझता हूं। तुम किसी के निकट अनुगृहित होना नहीं चाहते, किन्तु दूसरों के साथ मेरी तुलना मत करो ! मैं सन्यासी हूं, तुमारे पित्र तुल्य ! मैं तुमारे निकट अनुग्रह की प्रार्थना करता हूं, तुम नहीं करते हो। बाञ्छा पूर्ण नहीं करने से मेरे मन में कष्ट होगा" । बालिका के पिता सन्यासी और योगी लोगों की अतिशय भक्ति और श्रद्धा करते थे। इस भय से कि कुटी में न रहने से कदाचित् सन्यासी को क्रोध हो, वे उनके आज्ञोल्लंघन करने में समर्थ न हो कर उस स्थान पर रहने में सम्मत हुये। उन लोगों को आहारादि से स-

न्तुष्ट करके वह बालक, बालिका को संग ले अपने खेल की सामग्री देखाने लगे । दोनों में परस्पर अनेक प्रकार की बातचीत होने लगी । बालिका बोली "तुम लोगों के गृह के नीचे नदी नहीं है क्यों ? हम लोगों का गृह तो ऐसा नहीं था" ।

बालक बोला –"तो तुम लोगों का गृह कैसा रहा भइ ?"

बालिका ने कहा –"हम लोगों का गृह नदी के तीर पर था । हम लोग गृह पर से नदीजल का कैसा उथला उथली करते, हिलोरा मारते कैसा सुन्दर देखते थे । बाबा उस गृह को नौका कहते थे, उस गृह में मैं सर्वत्र कैसा घूमती फिरती थी" ।

बालक ने पूछा –"तुम कभी हम लोगों जैसे गृह में नहीं रही हो ?"

बालिका बोली –"नां"

बालक ने पूछा –"किन्तु ऐसा गृह कभी देखा है ?"

बालिका बोली –"देखा क्यों नहीं? इससे भी अधिक बड़े २ गृह देखे हैं, हम लोग गृह पर बैठे २ नदी पार इस प्रकार के अनेक गृह देखते थे" ।

बालक ने पूछा –"तो उस गृह को देखने के हेतु जाने की तुमारी इच्छा नहीं होती ?"

बालिका बोली "इच्छा तो होती थी, और मैं बाबा से कहती थी—कि बाबा वह सब मैं देखने जाऊंगी"।

बालक ने पूछा—"वहां रहने की तुमारी इच्छा होती है?"

बालिका—"क्यों नहीं"।

बालक—"तो तुम वह गृह छोड़ कर क्यों आई?"

बालिका—'बाबा चले आये इसी कारण मैं भी चली आई"। बालक उत्साह भंग हो कर बोला कि "तो तुम हमारे कुटी में रहने की इच्छा नहीं करती हो?"

बालिका ने कहा—'बाबा जहां रहते हैं मुझ को भी वहीं रहना भला लगता है"।

बालक ने कहा—'तो तुमारे बाबा यदि जांयगे तो तुम भी चली जाओगी'।

बालिका बोली—"हां"

बालक ने कहा—"अच्छा, आओ अब मैं तुम्हें अपना हरिण दिखाऊं'। यह कह कर दिलीप शैलबाला का हाथ पकड़ कर कुटी से बाहर हुये। कुटी से बाहर होते ही बालिका, निकट में २ मोरों को देख कर बोल उठी "देखो देखो! कैसा सुन्दर पक्षी है! मैं जाती हूं—इन में से एक को पकड़ूंगी"। बालिका मोर पकड़ने को दौड़ी, मोर भी तुरत भागा। दिलीप बोले 'मैं मोर देता हूं, तुम

दौड़ो मत'। किन्तु बालिका ने उनकी बात न सुनी। दिलीप भी उसके साथ चले। कुछ दूर जाकर पर्वतपथ में चलने का अभ्यास न होने के कारण शिलाखण्ड से ठोकर खाकर शैलबाला गिरने लगी। दिलीप ने तत्काल ही उसी अर्द्ध-पतित अवस्था में गिरते २ शैलबाला को पकड़ लिया और पूछा कि 'कहीं चोट तो नहीं लगी?' बालिका ने कहा "नां" इतना कह शिलाखण्ड पर बारम्बार पदाघात करने लगी। दिलीप हँसे और नाम ले कर मयूर को पुकारने लगे, मयूर आया। शैलबाला आश्चर्यान्वित और दुःखित होकर बोली 'तुम्हारे निकट तो आया। परन्तु मेरे निकट से क्यों भागा, मैं नहीं लूंगी'। दिलीप दुःखित होकर बोले कि "तुम अपरिचित हो, तुम्हें वह पहचानता नहीं, इसी से भागा था, अब लो, फिर नहीं भागेगा'। दिलीप के मुख पर बिषाद का चिन्ह देख कर बालिका बोली कि "अच्छा मैं लूंगी'। दिलीप ने मयूर पकड़ लिया, बालिका उसको लेने गई कि उसके गात पर हाथ देते मात्र वह भागने की चेष्टा से तुरंत पंख झाड़ कर चला, बालिका भय से हाथ खींचकर बोली कि 'मैं अब नहीं लूंगी' दिलीप किंचित रुष्ट होगये। वे मयूर के गात्र पर धीरे २ हाथ रखकर बोले कि "तू भागा क्यों? मैं भी तुझको फिर कभी नहीं लूंगा।" उस समय उन्होंने मयूर को दूर फेंक

दिया, वह जाकर दूसरे स्थान पर बैठ गया। दिलीप बोले कि "हमारी और २ वस्तुओं को देखना हो तो आओ" उनके हरिण अश्व प्रभृति जहां थे, दिलीप शैलवाला को संग लेकर उसी स्थान पर आये। अश्व देखकर शैलवाला बोली "इतने बड़े अश्व से तुम कैसे खेलते हो?"

दिलीप ने कहा "मैं उसके ऊपर चढ़ता हूं" शैलवाला आश्चर्य से बोली 'चढ़ो! अच्छा चढ़ो तो देखें' दिलीप ने अश्व पर चढ़कर उसे दौड़ाया। शैलवाला आनन्दमग्न होकर करताली बजाने लगी। वह आनन्द प्रकाश करती हुई वहां से दौड कर अपने पिता के निकट कुटी में आई और बोली "देखो देखो! दिलीप कैसा घोड़े पर चढ़ता है तुम क्यों नहीं चढ़ते। मैं चढूंगी बाबा! वह कुटी से हो कर फिर दलीप के निकट आई, उस समय दलीप बाग ढीली कर धीरे २ शैलवाला के निकट आये और बोले "तुम चढ़ोगी? यह घोड़ा तुमसे कुछ नहीं बोलेगा।" बालिका व्यग्र होकर बोली 'हां मैं भी चढूंगी, मुझको चढ़ा न दो।" दिलीप ने उतर कर उसको अश्व के पीठ पर चढ़ा दिया और बोले "मैं तुम को पकड़े रहता हूं, तुम धीरे २ घोड़ा चलाओ; नहीं तो तुम गिर पड़ोगी" दिलीप ने एक हाथ से शैलवाला को धरा और दूसरे से घोड़े की बाग पकड़ कर उसे कुटी के द्वार पर ले आये वहां

पहुंचने पर बालिका बोल उठी "देखो देखो बाबा ! मैं कैसी दिलीप के नाईं घोड़े पर चढ़ी हूं !" उसकी बात सुन सन्यासी और बालिका के पिता दोनों हँसने लगे।

इसी प्रकार बालिका के पिता तीन चार वर्ष लों इसी कुटी में रहे।

— *** —

पांचवां परिच्छेद।

आज सन्ध्या के समय गगनमंडल मेघ छिप गया है और अन्धकार से पृथ्वी आच्छादित हो रही है। क्षणे २ पर बिज्जुछटा छमक रही है। बोध होता है कि इस समय अत्यन्त वृष्टि होगी।

किन्तु दीपज्योति की सहायता से इस समय भी कुटी में अन्धकार नहीं है ! बालक और बालिका प्रदीप के सन्मुख बैठ कर क्रीड़ा करते हैं। सन्यासी और बालिका के पिता द्वार खोले हुए आकाश की ओर देख कर वार्तालाप करते थे।

सन्यासी बोले "देखते हो कैसी कारी घटा है, इस समय अत्यन्त वृष्टि होगी" बालिका के पिता बोले 'हां' वृष्टि होने पर तो घटा चली जायगी, किन्तु हमलोगों के दुःख का अन्धकार तो किसी प्रकार से नहीं मिट सक्ता।

सन्यासी ने कहा 'ऐसी चिन्ता मत करो । दुःख भी इसी मेघ की भांति चंचल है, तुम क्या समझते हो कि तुमारा दुःख अनन्त है ? ऐसा मत बिचारो, इस लोक में सुखी न हुए तो परलोक में अवश्य होगे, अभी एक बारही निराश मत हो" ।

परस्पर यही बातचीत होरही थी कि बूंदों का टपटप शब्द आरंभ हुआ, क्रमशः छहर २ वृष्टि होने लगी । मेघ के गर्जन और दामिनी की कड़कड़ाहट से पृथ्वी कांपने लगी । विज्जुछटा चमक २ कर आकाश के एक प्रांत से दूसरे प्रांत में दौड़ने लगी । वह अन्धकारमय पृथ्वी, मेघावृत आकाश, और अविश्रान्त वृष्टिधारा अति भयंकर बोध होने लगी । जब कुटी में वृष्टिधारा प्रवेश करने लगी सन्यासी ने द्वार बन्द कर लिया । कुछ समय के उपरान्त सहसा कुटी के द्वार पर शब्द होने लगा । सन्यासी ने कुटी के अन्दरही से पूछा 'कौन है ?' उत्तर मिला कि 'मैं पथिक हूं, वृष्टि के कारण अधिक चलनेकी शक्ति नहीं है, रात्रि हो जाने से यहां आश्रय की प्रार्थना करता हूं' सन्यासी ने द्वार खोल दिया और बाहर जाकर एक वृद्ध पुरुष को कुटी के भीतर ले आये । उसका सर्वाङ्ग जल से भींग गया था, हाथ पांव इत्यादि ठिठुर कर शीतल हो गये और शीत से ओष्ठ नीलवर्ण होकर कांपते थे । वृद्धावस्था

में अल्प शीत से भी अत्यन्त कष्ट होता है। सन्यासी ने उस वृद्ध को सूखा वस्त्र पहिनने को दिया जिसे धारण कर वह अग्नि के निकट बैठ कर हाथ पांव सेंकने लगा।

बालिका के पिता उसे प्रवेश करते ही देख कर चौंक उठे। वे वस्त्र द्वारा अपने नेत्र और नासिका के अतिरिक्त समस्त मुख को भली भांति ढांक कर कुटी में एक ओर जा बैठ रहे। हाथ पैर सेंकते २ उस वृद्ध पुरुष ने सन्यासी के संग बार्तालाप प्रारंभ किया। सन्यासी बोले 'इस कुसमय में तुम कहां जाते है ?

आगन्तुक ने कहा 'मैं दिल्ली जाता हूं। मेरे प्रभु चन्द्र-पति वहीं हैं, इसी कारण मैं उनके निकट जा रहा हूं।'

सन्यासी बोले, भला दूसरे सुगम मार्गों के रहते तुम इस पथ से क्यों जाते हो ?'

आगन्तुक ने कहा "शीघ्रता के निमित्त इस पथ से जाताहूं ?"

सन्यासी बोले 'शीघ्र जाने की क्या आवश्यकता है ?'

आगन्तुक ने कहा 'दु ख की बात क्या कहें, प्रभु का बिवाह उपस्थित है।' सन्यासी आश्चर्यवत् होकर बोले 'बिवाह होगा तो यह सुख का विषय है, दुःख क्यों कहते हो"।

आगन्तुक ने कहा 'उसे आप किसी प्रकार नहीं समझ सकते ? वे कहीं से एक कन्या बिवाह कर लावेंगे, दो दिन के अनन्तर वह हमलोगों पर प्रभुत्व करने लगेगी

और प्राचीन भृत्य समझ कर किंचितमात्र भी संकुचित न होगी। क्या यह हमलोगों के सुख का विषय है?' आगंतुक के दुःख का कारण सुन कर सन्यासी हंसने लगे । आगंतुक उत्साह भंग हो कर बोला कि 'आप हंसेंगे नहीं तो और क्या ? मान तो हमलोगों का जायगा न, आप का क्या होगा, हमलोगों का दुःख आप क्या समझियेगा ?' सन्यासी हास्य को छिपाकर बोले कि जब 'तुमारे प्रभु का गृह अजमेर है, तो दिल्ली में क्यों विवाह होता है ?'

आगंतुक ने कहा "दिल्लीश्वर की ऐसाही इच्छा है। हमलोगों के प्रभु उनके परमबन्धु हैं, इसी कारण दिल्लीश्वर स्वयम् कन्या ठहरा कर बड़े धूमधाम से अपने ही निकट विवाह किया चाहते हैं । सुनते हैं कि कन्या द्वादश वर्ष की परम सुन्दरी है, और हमारे प्रभु उसे देखतेही मोहित हो गये हैं, इस बार हम लोगों की रक्षा नहीं अब तो हमारी मान मर्य्यादा सब गई" ।

सन्यासी ने पूछा "किस प्रकार का धूम धाम होगा?'

आगन्तुक ने कहा कि "अनेक राजाओं को निमंत्रण दिया गया है, वे सब आ भी गये हैं। केवल जयचन्द्र नहीं आये । समरसिंह तो परिवार सहित आ पहुंचे हैं, किन्तु कमलादेवी के न आने से राजमहिषी अत्यंत दुःखित हुई हैं। कमलादेवी के संग महिषी का अतिशय प्रेम है।"

सन्यासी ने पूछा "वह क्यों न आईं ?"।

आगन्तुक ने कहा "हाय! जिस क्षण से उनके पुत्र किरणसिंह जलनिमग्न हुये, तब से वे किसी आमोद प्रमोद में कहीं नहीं जातीं, वे मानो जीवन्मृतक हो रही हैं।"

सन्यासी ने पूछा 'क्या, समरसिंह के कोई पुत्र जलनिमग्न भी होगये? यह दुर्घटना कुमार पर कैसे हुई?' इसपर वह आगन्तुक पुरुष किरण के जलनिमग्न होने का वृत्तान्त कहने लगा, और सन्यासी भी चुप चाप सुनने लगे। शेष होने पर वे बोले कि 'अब उस कथा से क्या प्रयोजन, सब स्मरण होने से अत्यन्त कष्ट होता है। अब एक सु-संवाद सुनो। हमारे प्रभु को महाराज इस बार "कवि" की उपाधि प्रदान करेंगे"

सन्यासी ने पूछा "क्या तुमारे प्रभु कवि हैं?"

आगन्तुक बोला "कवि! आप इतने निकट रह कर क्या यह बात नहीं जानते? दूर २ के देशों में उनका नाम 'कवि' प्रख्यात है। और वे इस समय अद्वितीय कवि प्रसिद्ध हैं।'

सन्यासी ने कहा "मैं नहीं जानता था।"

आगन्तुक बोले "इस बार प्रत्येक क्षुद्र मनुष्य भी उन्हें कवि जान लेगा अब फिर कोई चन्द्रपति न कहेगा, अब

से लेकर उनका नाम कविचन्द्र होगा।' सन्यासी इस वार्ता को छोड़ कर बोले 'अच्छा, यह तो कहो कि जब और सब राजा आये हैं, तो जयचन्द क्यों नहीं आये?' सुना है कि जयचंद और दिलीश्वर का परस्पर कोई सम्बन्ध भी है।

आगन्तुक ने कहा "और कारण क्या? स्वर्गबासी दिल्लीश्वर ने उन को राज्य नहीं दिया, पृथ्वीराज को दे गये, उसी समय से जयचन्द्र द्वेष में भस्म हो रहे हैं। एक बात औरभी सुनी है कि जयचन्द्र पृथ्वीराज से कुछ द्वेष रखते हैं और उनके संग मन्दकार्य्य करने को प्रस्तुत हैं, जयचन्द्र के पितृव्य ने जयचन्द्र को न जानैं कौन उपदेश दिया था कि उसी अवधि से उन दोनों में परस्पर विवाद चला आता है"। कथा कहते २ आगन्तुक की दृष्टि बालिका के पिता पर जा पड़ी। उसने पूछा "ये कौन बैठे हैं?"। सन्यासी बोले "ये मेरे शिष्य हैं"।

आगन्तुक ने पूछा ये बालक बलिका दोनों किसके हैं?"

सन्यासी ने कहा यह पुत्र मेरा, और वह उन की कन्या है"।

आगन्तुक हँसकर बोला कि 'वाह! अच्छा जोड़ मिला है?" इस समय बाहर से कोई ऐसा शब्द होने लगा, जिस से वे लोग किसी प्रकार निश्चिन्त न बैठ सके। सन्यासी ने द्वार खोल शब्द का कारण देख फिर झट कपाट बन्द कर

दिया। बालिका के पिता के अतिरिक्त और सब पूछने लगे "क्या है?" सन्यासी ने कहा कि "हम लोगों के द्वार पर एक व्याघ्र आया है।" व्याघ्र का नाम सुनतेही दिलीप का ध्यान अपने पाले हुये हरिण और घोड़े पर जा पड़ा। वे बोल उठे "बाबा यदि बाघ मेरे अश्वशाला में प्रवेश करे तो? और किसी पथिक को भी अकेला पाकर कदाचित् बध करे तो क्या होगा!। चलो हम लोग उसको मार आवें"। सन्यासी उनसे सम्मत हुये देखा कि चौदह वर्ष के दिलीप आनन्द-चित्त से तलवार लेकर व्याघ्र को मारने चले। बालिका 'दिलीप दिलीप' करके रोनेलगी। यह कह कर दिलीप कुटी से बाहर हुये कि 'मैं अभी आता हूं कुछ भय नहीं' दिलीप और सन्यासी के संग आगन्तुक पुरुष भी गया। और कोई दिन होता तो बालिका के पिता भी उनलोगों के संगजाते परन्तु आज वे चिन्ता में मग्न हैं ये सब बातें उनके कान में न पड़ीं। सोचते २ वे मन ही मन बोले कि "कल प्रातःकाल हम को पहिचान लेगा! क्या लज्जा की बात है, मैं तेजसिंह हूं, और इसी कुटी में—भाग कर कपटवेश से कालयापन करता हूं! क्या लज्जा की बात है। कलह मैं परिचित व्यक्ति को किस प्रकार यह मुख दिखलाऊंगा' और यदि यह कन्या न होती, तो मैं कदापि इस भांति न रहता, उसी दिन प्राण त्याग करता, अब क्या होगा। क्या

मुझे पहिचानेगा? सो तो कभी न होगा आज रात्रि ही में कन्या को लेकर मैं यहां से भाग जाऊंगा"। कन्या के रोने से उनकी चिन्ता भंग हो गई। वे बोले 'क्या हुआ पुत्रि?' कन्या कातरस्वर से बोली 'बाबा दिलीप बाघ मारने गया है' यह सुनकर वे व्यस्त हो उनकी सहायता के निमित्त उठे। इधर सन्यासी ने कुटो से बाहर निकलते ही देखा कि व्याघ्र कुटी के द्वार से कुछ दूर खड़ा हो कर मन्द २ गरज रहा है। दिलीप उसे देख कर सन्यासी और आगन्तुक को पीछे रख आगे बढ़ कर खड़े होगये। आगन्तुक ने सन्यासी से कहा "चलो महाशय! हम लोग आगे चलें, देखते नहीं—बालक किस अभिप्राय से जाता है?" सन्यासी बोले "हम लोगों के इतने निकट रहते बालक के अग्रसर होने पर भी उसको बिपत्ति की कोई आशंका नहीं। वृथा उसके उत्साह में बाधा देना और साहस का नाश करना उचित नहीं"। मनुष्य को देखते ही व्याघ्र अहार के लोभ में जिह्वा चाटता हुआ द्रुत बेग से उन लोगों पर झपटा तुर्तही दिलीप उसके शरीर पर तलवार आघात कर कुछ दूर हट गये। व्याघ्र चोट खातेही दूसरों को परित्याग कर फिर उन पर आक्रमण करने को लपका। ज्योंही उसने मुख फैला कर उन्हें पकड़ने की इच्छा की तुर्त दिलीप ने अत्यन्त निपुणतापूर्वक उसके खुले हुये मुख में तलवार

प्रवेश कर दी । इस प्रकार घायल और रक्तारक्त कलेवर से क्रोधान्ध हो व्याघ्र तलवार से मुह खींच कुछ दूर हट गया और एक स्थान पर स्थिर भाव से खड़ा हो भयंकर गर्ज्जना करने लगा । अब फिर बाघ के आक्रमण का कोई अभिप्राय न देख पड़ा । थोड़ीही देर उच्चःस्वर से गर्जन कर फिर एक बेर तड़पा, अब तो सन्यासी और आगन्तुक दोनों दिलीप के निमित्त भयभीत हुये । उन लोगों ने जो तलवार हाथ में लिया था उसको दृढ़ता से पकड़ा, दिलीप ने व्याघ्र को तड़पते देख उसके लक्ष स्थान से दूसरे स्थान पर जाने की चेष्टा की, कि वृष्टि से मिट्टी चिकनी होने के कारण बिछिला कर भूमि पर गिर पड़े । व्याघ्र ने ज्योंही उन्हें हर्ष पूर्व्वक पकड़ना चाहा त्योंही पीछे से सन्यासी ने व्याघ्र पर कृपाणाघात किया; दिलीप को परित्याग कर व्याघ्र क्रोध से पीछे फिर देखने लगा । तब तक दिलीप ने अवकाश पाकर भूमि से उठ बलपूर्व्वक व्याघ्र के पिछिले चरण में तलवार मारी जिससे वह पदछिन्न होकर गिर पड़ा । व्याघ्र फिर उनकी ओर फिरा । इस बार दिलीप ने उसके कन्धे पर आघात किया । व्याघ्र व्यथा से अधीर हो कर तुर्त भूमि पर लेट गया और उसको फिर उठने की शक्ति न रही । थोड़े ही काल के अनन्तर उसकी मृत्यु हो गई ।

बालिका के पिता कुटी से बाहर न हुये थे कि दि-

लीप रक्तारक्त तलवार हाथ में लिये कुटी में फिर आये। उनको देख बालिका सकल दुःख भूल गई और हँसती हुई दिलीप के सम्मुख आई। इस प्रकार अल्पवयस्क बालक का असीम साहस देख कर आगन्तुक को अतिशय आ-श्चर्य्य हुआ।

रात्रि अधिक हो गई थी। अहार करने के अनन्तर उन सब लोगों ने शयन किया। प्रातःकाल जब उन्यासी उठे तो बालिका और उसके पिता न देख पड़े।

—***—

छठवां परिच्छेद।

और भी चारवर्ष व्यतीत होगये, समय ने नाना घटना वहन कर चौथे पद का चिन्ह छोड़ा, तदंन्तर शीत ग्रीष्म वर्षा ने भी चार वार पृथ्वी पर अधिकार किया, और चार वार पृथ्वी सूर्य्य की परिक्रमा कर आई। इस समय बहता हुवा कालप्रवाह ११११२ शाके का आ गया। इसी सम्बत में कन्नोजाधिपति महाराज जयचन्द्र और दिल्लीश्वर पृथ्वी-राज के बीच एक संग्राम उपस्थित हुवा। यद्यपि इस युद्ध से हम लोगों को कुछ विशेष सम्बन्ध नहीं है, तथापि इस कारण से कि कदापि कोई पूछ बैठे हम उसे संक्षेपतः आगे प्रकाश करते हैं--

इसी सम्बत में महाराज जयचन्द्र ने चक्रबर्त्ती राजा की पदबी ग्रहण करने की इच्छा से अश्वमेध यज्ञ किया। इसमें और सब राजा उनको अग्रगण्य स्वीकार कर यज्ञ-सभा में उपस्थित हुये, केवल दिल्ली और अजमेराधिपति पृथ्वीराज और चित्तोराधीश्वर समरसिंह उसको अस्वीकार करके वहां न गये। इस कारण जयचन्द्र ने पृथ्वीराज के अपमान के हेतु उनकी एक प्रतिमा बनवाकर द्वारपाल के स्थान पर अपने द्वार देश में रखवा दिया। केवल यही एक कारण न था कि जयचन्द्र ने पृथ्वीराज का अपमान किया। इसके होने से तो समरसिंह भी उसके भागी होते परन्तु एक दूसरे कारण बश पृथ्वीराज के ऊपर जयचन्द्र को द्वेष उत्पन्न हुवा था, वह यह है कि—

जयचन्द्र और पृथ्वी राज दोनों स्वर्गबासी दिल्लीश्वर के नाती हैं। जयचन्द्र जेष्ठा और पृथ्वीराज कनिष्टा कन्या के पुत्र हैं किन्तु पृथ्वीराज में अनेक सद्‌गुण रहे इस कारण दिल्लीश्वर इन्हीं को अधिक प्यार करते थे और उनको कोई पुत्र भी न था अतएव मृत्यु काल में जयचन्द्र को राज्य न देकर पृथ्वीराजही को अधिकारी कर गये पृथ्वी-राज अजमेर में पिता का राज्य और दिल्ली में नाना के राज्य के अधिकारी हुये। जयचन्द्र इसी कारण अपने मन में पृथ्वीराज को यथेष्ट घृणा करने लगे किन्तु कोई

अवसर ऐसा न पाया कि इसको प्रगट करते, इस समय सुयोग जानकर प्रकाश किया।

पृथ्वीराज ने जयचन्द्र के बिरोध से क्रुद्ध हो कर सैन्य-दल सहित कन्नौज पर चढ़ाई की। युद्ध में पृथ्वीराज की जय हुई किंतु उनके प्रधान २ २०८ सेनापतियों में से केवल ६४ मनुष्य बँच कर आये, इसी से अनुमान हो सकता है कि सामान्य सैन्य कितने मरे। इसी युद्ध में, जय होने के दिन जब सब कोई अपने २ शिविर में फिर आये, तब एक मनुष्य अस्त्रधारी युवा पुरुष ससी रणक्षेत्र से हो कर जाते थे। युवा पृथ्वीराज के परमबंधु कविचन्द्र हैं। इतिहास में उनका नाम 'कवि' कर के विख्यात है। कविचन्द्र कवि होने पर भी बीरों में गिने जाते थे। इनका बय क्रम ३४ वर्ष का, मुखारबिन्द सुन्दर और प्रफुल्ल, गठन, बलिष्ट, बीर नाम से उपयुक्त है, उसी बलिष्ट शरीर में युद्धोपयोगी अस्त्र शस्त्र अत्यन्त शोभायमान था। उनका मस्तक शिरस्त्राण, और शरीर कवच से ढका हुआ था उनके पीठ पर ढाल, बांयें हाथ में बर्छा, और कमरबन्द के बाम भाग में तलवार शोभित हो रही थी। बोध होता है कि यह किसी कारण बश और लोगों के संग एकत्र न जा सके, इस समय अकेले शिविर में फिरे आते थे। सहसा किसी बालिका के कण्ठ का रोदन शब्द उन के कान में पड़ा।

उन्होंने देखा कि, एक बालिका एक मृत पुरुष के गले से लिपट कर "पिता पिता" कर रो रही है। उन्होंने समझा कि इसी युद्ध में उसके पिता की मृत्यु हुई है। और यह भी बिचारने लगे कि "यदि ऐसा ही हुवा तो, बालिका की माता कौन और कहां है कि उसके संग नहीं आई केवल उसी को अकेली क्यों आने दिया ? क्या उसके और कोई नहीं है ?। क्या इस बालिका का संसार में पिताही एक मात्र अवलम्ब था, यदि कोई होताही तो इस बालिका को अकेले इस घोर भयंकर स्थान में क्यों आने देता ? यदि और कोई नहीं है तो इसकी अब कौन रक्षा करेगा ? ऐसे अवसर में यह सुकुमार कुसुम कलिका किसका अवलम्ब कर के जीव धारण करेगी ? क्या सत्य ही वह आज से अनाथा होगई ? और यदि हुई, तो हमी लोग उसके मूल हैं क्योंकि हमी लोगों ने आज उसके पिता को युद्ध में बध करके इस बालिका को चिरदुःखिनी बनाया"। चन्द्रपति स्वभावतः दयालु हैं, यही सब सोचते २ उनका हृदय दया से पूर्ण होगया। उसकी अवस्था जानने के हेतु वे उत्साहित होकर उसके निकट आये। घोड़े की टाप का शब्द सुन कर बालिका ने मस्तक उठाया। इस मृतक लोथों को ढेर के मध्य एक जिवित मनुष्य को देखकर उनका उदासीन मुखमंडल भी कैसे कुछ प्रफुल्लित हो गया। दूर

से वे उसको पांच ५।६ वर्ष की अनुमान करते थे, पर देखा तो उससे अधिक वय क्रम है। इनको बोध हुआ कि यह अनखिली गुलाब कली किसी समय में सुगन्ध बिस्तार करेगी। कबि चन्द्र ने पूछा "तुम किसके हेतु रोती हो? ये तुमारे कौन हैं?"

बालिका ने उत्तर दिया कि "ये मेरे पिता हैं।"

शैलबाला के पिता सन्यासी की कुटी परित्याग कर प्रथम दो तीन बर्ष कन्या को लेकर देश देशान्तर भ्रमण करते फिरते थे। इस युद्ध के कुछ पहिले वे कनौज के एक पर्व्वत पर आकर बास करने लगे, मानो मृत्युही के निमित्त यहां आये थे। आज वे रणक्षेत्र में मृत्यु शय्या पर शयन कर रहे हैं, वक्षःस्थल में खड्ग बिध जाने से प्राण त्याग किया है। बांहु और दूसरे २ अङ्गों में भी आघात के चिन्ह हैं। समस्त शरीर रक्तारक्त है, इस समय सब सूख गया है बगल में एक किनारे रक्त से भरी तलवार पड़ी है। एक तलवार के अतरिक्त कोई दूसरा अस्त्र निकट में नहीं है। युगल कर समभाव से वक्षःस्थल पर पड़े हुये हैं। उनके दोनों नेत्र अर्द्ध मुद्रित, ओष्ठाधर किंचित खुले हुये, और विषादांकित मुख जैसे गंभीर दुःख में कातर हो कर ईश्वर के निकट प्रार्थना करता हो। मानो मरने को समय भी निश्चिंत न रह सके हों। अथवा किसी गंभीर

दुःख की चिन्ता करते २ प्राण त्याग किया हो। जैसे मरने के समय कातरचित्त होकर ईश्वर को पुकार रहे थे, इस समय भी मानो ठीक वैसेही कर रहे हैं। उसी कातरता के ऊपर, शान्तभाव आकर इस समय मुखश्री की शोभा और भी वृद्धि किये है उनका परिधान गेरुआ वस्त्र है. समरभूमि में आने को समय भी उन्होंने वह वस्त्र त्याग न किया।

युद्ध के समय उनका गेरुआ पहिरावा देखकर कविचन्द्र को आश्चर्य हुवा। क्षणेक उपरान्त वे बोले "तुम बालिका हो कर अकेली इस भयंकर स्थान में किस प्रकार आई कुछ भय नहीं मालूम हुवा क्या?"

बालिका बोली "भय क्यों मालूम होगा?" क्या प्रेम भय से बली नहीं है?"

कविचन्द्र बालिका के मुख से इस प्रकार का उत्तर सुन कर आश्चर्यान्वित हो बोले 'तुम बालिका हो और इस भयंकर स्थान में आने जाने से अनेक विपत्ति की सम्भावना है, तुमने जब इच्छा की तो तुमारी माता ने तुमारे संग किसी और को यहां आने को नहीं भेजा, अकेली तुम को कैसे आने दिया?"

बालिका बोली—"हमारे माता अथवा और कोई नहीं है।"

कवि ने पूछा "क्या तुमारे और कोई भी नहीं ?" क्षणकाल चुप रह कर फिर पूछने लगे "तुम कहां रहती हो ?" बालिका ने अंगुली से दिखा कर कहा कि "उसी पर्व्वत पर"। कविचन्द्र बोले "इतनी दूर पर अति शीघ्र तुमारे पिता के मृत्यु का समाचार किसने दिया ?"

बालिका बोली 'किसी ने नहीं, मैंने स्वयं उस पर्व्वत पर से पिता को अश्व के पीठ से गिरते देखा था । किन्तु दुर्भाग्यवश मेरे उतरने में इतना बिलम्ब हुवा, कि मैं आकर पिता को जिवित न देखने पाई। हाय ! यदि वे कह कर आते तो उनके उतरने के थोड़ेही देर पर मैं भी पर्व्वत से उतरना आरम्भ करती।" इतना कह कर बालिका और भी रोने लगी।

कवि ने पूछा "वे युद्ध में आये, तो क्या तुमसे नहीं कह आये ?"

बालिका ने कहा "नहीं।"

कवि ने पूछा "तब उनके युद्ध में आने का तुमको क्यों सन्देह हुआ? तुमने यह कैसे जाना कि जहां युद्ध होगा वे वहीं होंगे ?"

बालिका ने उत्तर दिया कि युद्ध में आने की तो कोई बात नहीं कहा, परन्तु इतना कहा था कि आज युद्ध होगा और कई एक दिन से उनका भाव परिवर्त्तन होगया था,

प्रायः मुझको देख कर रोते और पूछने पर कारण न बतलाते थे। उसी से मैं अनुमान करती थी कि वे मेरे लिये किसी बिपद् की आशंका करके रोते हैं। कल्ह मुझे एक छोटा सन्दूक दे कर बोले, कि वत्से ! मैं वृद्ध हूं, तुझे इस असहाय अवस्था में छोड़कर यदि मेरी मृत्यु पहिले हुई तो तेरी दशा क्या होगी ? और यही होगा, मैं अब अधिक दिन न बचूंगा। इस सन्दूक में तेरे हेतु जो कुछ द्रव्य मैं छोड़ जाता हूं, उसी से जितने दिन किसी सत् पुरुष का आश्रय न पाना, आत्मरक्षा करना। तू बालिका है, देख किसी दुष्ट मनुष्य के बात में आकर उसका सहवास न करना। जितने दिन विवाह न हो किसी भद्र पुरुष के आश्रय में रहना, और जिसके आश्रय मे रहे, उसका असद् अभिप्राय देखने पर तत्काल वह गृह परित्याग करना।" इतना कह कर वे भी रोने लगे और मैं भी रो पड़ी। आज प्रातःकाल उठने पर उनको मैंने न पाया। मन में महा भय उत्पन्न हुआ, स्मरण आया कि आज युद्ध होगा। तुर्त्त पर्व्वत शिखर से उठकर देखने आई। देखा कि जिस्की मैं आशंका करती वही बात हुई।" बालिका और कुछ न कह सकी, उसका श्वास बन्द हो गया। कविचन्द्र बोले "यदि तुमारे पिता को तुमारे निमित्त इतना भय था तो वे युद्ध में क्यों आये ?"

बालिका ने कहा "वे देश में रहकर, देशहितार्थ युद्ध में न आना अधर्म्म मानते थे। क्या वे मेरे निमित्त अधर्म्म करते ?"

कविचन्द्र ने बालिका के मुख से इस प्रकार की बातें सुन कर, उसको उच्चवंश की कन्या जाना । इसी कारण वे उत्साहित होकर उसका विशेष परिचय पूछने लगे । बालिका और कुछ न कह सकी, उसने केवल पिता का नाम बतला दिया। इससे उनको कुछ बोध न हुआ अतएव संतुष्ट न हो के उसका नाम पूछा, सुना कि "शैलबाला।" कविचन्द्र ने पूछा तो अब तुम कहां और किस प्रकार रहोगी ?"

बालिका बोली "यदि कोई और उपाय न जान पड़ेगा, तो मैं भी पिता का अनुसरण करूंगी।"

कवि ने कहा "मेरे संग चलोगी ?" बालिका कुछ सोच कर बोली 'कहां ?" वे बोले 'मेरे गृह पर ?"

बालिका ने पूछा 'वहां कौन है ?"

चन्द्र बोले 'वहां एक युवती तुमसे कुछ बड़ी है, वह तुमको अपनी भगिनी की नाईं प्यार करेगी।"

बालिका ने कहा "तो चलूंगी । मुझको और एक मनुष्य बहिन के भांति मानते और प्यार करते थे, वैसे ही प्रेमी पाने की फिर भी इच्छा करती हूं।

चन्द्र ने पूछा 'वे कौन थे ?

बालिका बोली 'वह एक बालक थे । हम लोगों ने उनकी कुटी में कुछ दिन बास किया था ।"

चन्द्र ने पूछा "उनका गृह कहां है ?"

बालिका बोली ' बहुत दूर है। उस देश का नाम मैं नहीं ज.नती, तब मैं छोटी थी । हम लोग कुछ दिन वहां रहकर चले आये । दिलीप ने कहा था कि 'मुझ से बिना कहे कहीं मत जाना" "किन्तु आने के समय वे न जान सके ।" यह कथा कहते २ उसके मुख पर एक और प्रकार का दुःख व्यञ्जक भाव छा गया। कविचन्द्र ने समझ लिया कि ' उस बालक का नाम दिलीप था । बालिका उसको प्यार करती थी । वे और बात चीत छोड़ उसको संग ले पृथ्वीराज के शिविर में आये, चलती समय बालिका अपने पिता के निमित बहुत रोई । कविचन्द्र ने यथासाध्य समझा बुझाकर उसको संतोष दिया । मार्ग में आती समय कविचन्द्र ने बालिका की अवस्था पूछी। वह बोली "पिता कहते थे कि यह बारहवां वर्ष व्यतीत हुवा है।" वार्तालाप करते २ दोनों शिविर में पहुंचे । उन्हें देख पृथ्वी राज ने पूछा "कवि जी तुमारे आने में इतना बिलम्ब क्यों हुवा ?" कविचन्द्र ने बालिका को दिखलाकर उसका सविस्तर वृतान्त कह सुनाया । पृथ्वीराज बोले "कल मैं

निज देश जाने की इच्छा करता हूं इसमें तुमारी क्या अनुमति है? कबिचन्द्र बोले कि "अब इस युद्ध में हम लोगों ने जय पाया है, अब जहां इच्छा हो जाइये।"

पृथ्वीराज ने कहा "तब चलने के हेतु समस्त उद्योग करने को कह दो। तुमारे परामर्श बिना इस समय तक मुझ को निश्चय नहीं था कि जाऊंगा वा नहीं। दूसरे दिन और सकल मनुष्यों ने कनौज परित्याग कर दिल्ली की यात्रा की, केवल चन्द्रपति दिल्ली नहीं गये, किन्तु अजमेर को गमन किया। पृथ्वीराज ने अजमेर होते हुये दिल्ली में आकर बास किया तौ भी चन्द्रपति अजमेर ही में रहे कारण यह कि जन्मस्थान उनको बहुत प्रिय था। वे केवल युद्ध अथवा किसी अन्य प्रयोजन से दिल्ली आते थे। कार्य्य समाप्त होने पर पुनः लौट जाया करते थे। चन्द्रपति ने घर पहुंचते ही शैलबाला को अपने स्त्री के हाथ समर्पण किया। उनके स्त्री का नाम प्रभावती था, वह उसे पाकर अतिशय अह्लादित हुई। गुलाब नामक चन्द्र-पति की एक भगिनी थी, वह उस समय गृह पर न थी, किन्तु राजकन्या के संग दिल्ली में बास करती थी। इस कारण प्रभावती को अकेले रहना पड़ता था, आज भ-गिनी पा कर उस के संग बार्तालाप करने लगी।

—✽✽✽—

सातवां परिच्छेद ।

अजमेरप्रान्तवाहिनी, मानस नदी धीरे २ तटस्थ लता वृक्षों को स्पर्श करती लहराती हुई वेग से बह रही है। उसके तीर पर एक उद्यान अति सुन्दर रमणीय है, चाँदनी में शैलबाला और प्रभावती बैठकर नदी की शोभा देख रही हैं। चन्द्रिका-धौत तरंगमाला नाचती हुई बालू की रेती पर ढुलकी पड़ती है। सन्ध्यासमीर से कम्पित भाऊ वृक्ष का मृदु मधुरनिनाद नदीकल्लोल के साथ मिल जाता है। माता की गोद में शिशुसन्तान की भांति, नदी के गर्भ में नौकाराजि, हिलती डोलती और तरंगमाला के संग क्रीड़ा कर रही है। जहां वे दोनों चाँदनी में बैठी थीं, उन के निकटवर्ती एक भाऊ वृक्ष की लम्बी लता आकर उस चाँदनी को स्पर्श करती है। शैलबाला उसी जगह से हाथ बढ़ा कर उसका फूल पत्र सहित तोड़ रही थी। शैलबाला अब वह बालिका नहीं है। शैलबाला अब उस दिलीप की बाल्यसखी नहीं और तेजसिंह की नयनानन्दवर्धक कुटी निवासिनी नवजात कुसुम-लतिका भी नहीं, अथवा रणक्षेत्र की रोदन करनेवाली बालिका भी नहीं है। हम लोगों ने जिस समय उसको शोकातुर बालिका देखा था तब से और दो तीन वर्ष व्यतीत हो गये हैं। अब वह मुद्रित गुलाबकलिका

अर्द्ध बिकसित होकर अति मनोहर हो गई है। शैलबाला फूल लेकर प्रभावती का शृङ्गार करने बैठी। प्रभावती का बयस २० वर्ष है, इसका सौन्दर्य्य शैलबाला की भांति अर्द्ध बिकसित गुलाब पुष्प के समान नहीं है किन्तु चन्द्रमा के भांति अति मधुर है। इसको तेज नहीं परन्तु उज्वल कह सकते हैं; इसे जितना देखो, उतनाही अधिक देखने की इच्छा होती है. किसी प्रकार नेत्र थकित नहीं होते। बालिका होने के कारण शैलबाला सर्व्वदा हास्यमयी और प्रभावती किंचित् गम्भीर है। दोनों को एकत्र देखने पर किस को अधिक सुन्दरी कहा जाय यह ठीक २ कहना अत्यन्त कठिन है। शैलबाला अबलों शृङ्गार करती थी, अभी तक शृङ्गार शेष नहीं हुआ। उसने पहिले एक एक धरके सब फूलों को चोटी में चारो ओर गूंध दिया। फूल तो समाप्त हो गये, किन्तु उसके रुचि के अनुसार सजावट न हुई, बोली कि "अभी तक भली भांति नहीं हुआ, जैसे कहीं २ खाली दीख पड़ता है"– और फूल लेकर प्रभावती का मस्तक समस्त भूषित कर दिया। अब भी रुचि के अनुसार नहीं हुआ। इस बार और फूल लेकर गूंधने बैठी। फूलों का बिबिध भांति का अलंकार बना कर प्रभावती के गले, हाथ और लिलाट में पहिरा कर एक दृष्टि से देखने लगी। अब इस बेर रुचि के अनुसार हुआ। इस गुरु-

तर कठिन कार्य्य के शेष होने पर वह वार्त्तालाप करने का अवकाश पाकर बोली "इस बेर उत्तम हुआ है" मैं आजलों इस प्रकार से किसी दिन भी भूषित न कर सकीं थी" उसकी बात सुन कर प्रभावती बोली "तेरी बातों पर तो हँसी आती है क्या प्रतिदिन मुझ को इसी प्रकार से सजना पड़ेगा, और जब मैं शृङ्गार नहीं करना चाहती तब तू रो देती है। अच्छा आज मैं तेरा शृङ्गार करूंगी"। शैलबाला हँस कर बोली 'मैं किसके निमित्त शृङ्गार करूं ? कौन देखैगा ?'

प्रभा॰—"क्यों मैं ?"

शैल॰—"ना, सो तो होगा नहीं, मैं तुम को आभूषित करूंगी, और देखूंगी ?"

प्रभा॰—"न भइ, तू ऐसा क्यों कहती है कि अपना शृङ्गार नहीं करूंगी और मेरा शृङ्गार करैगी बोल तो ?"

शैल॰—"बोलूं ? ना, नहीं बोलूंगी"।

प्रभा॰—तुझे मेरे सिर की सौगंद बतला"।

शैलबाला—यथार्थ बात के गोपन करने की चेष्टा कर बोली "बतलाऊं ? अच्छा कहती हूं, इतने दिन हुये और मेरा विवाह नहीं हुआ इसी से मन में दुःख है"।

प्रभा॰—तेरे संग बात करना भी एक आपत्ति है"।

शैल०—"क्यों रुष्ट हो गई? क्या अच्छा अब सत्य २ कहती हूं, मैंने पहिले कई एक बेर कहा था, क्या सब भूल गई?"

प्रभा०—"हां सब भूल गई हूं, फिर कह?"

शैल०—"बाल्यावस्था में मुझे दिलीप फूलों के अलंकारों से इसी प्रकार अलंकृत करके देखते थे, अब होते तो मैं भी उन को सज्जित करती सो अब उन को तो सज्जित कर नहीं सकती तुम्हीं को सज कर देखती हूं"।

प्रभा०—"ओः अब समझी—मानो मैं ही तुमारी दिलीप हूं। हां समझ गई कि उनको तू नहीं भूलेगी। बाल्यावस्था का भाव क्या इतना मन में रहता है? भई यह बात तो तूने मुझ से पहिले कभी नहीं कही?"

शैल०—"क्या मैंने नहीं कहा था कि वे मुझ को सज्जित करते थे?"

प्रभा०—"हां, सच है इतना तो कहा था?"

शैल०—"तो और सब अनुमान से नहीं बूझ सकीं?" मैं होती तो और कहने की आवश्यकता न होती?"

प्रभा०—तेरे संग क्या मेरी तुलना हो सकती है? जो हो, किंतु वह दिलीप न जानें कहां का कौन है, उस को मन में मत रख और वह न जानें कहां गया इतने दिन तक है कि नहीं फिर उसका क्या पता? यदि वह आवे

तौभी मैं उसके संग तेरा विवाह नहीं करूंगी। तुझ ऐसी सुन्दरी का विवाह किसी राजा महाराजा से संग हो तो उचित है। तू बालिका है, प्रीति किसको कहते हैं नहीं जानती इसी से उसी बाल्यसखा दिलीप का प्रेम तेरे मन में है। जब यथार्थ प्रीति होगी तो अपनी भूल समझ सकेगी" शैलबाला दीर्घ निःश्वास परित्याग कर बोली — "उनके संग मुझे विवाह देने की तुमारी इच्छा नहीं है इसी से ऐसी बात कहती हो और जिस कारण से नहीं है सो भी मैं जानती हूं। वे अज्ञात कुलशील हैं। किन्तु जो वेही अज्ञात कुलशील हैं, तो क्या मैं भी इस विषय में उनके तुल्य नहीं हूं? इस कारण यदि उनको सुपात्री नहीं मिलेगी, तो मुझ को भी सुपात्र मिलने की आशा नहीं है"। प्रभावती ने शैलबाला की बातों को समझ लिया और दुःखित हो कर बोली "अच्छा भद्र यह तो कह कि तू क्या अपने जन्म का वृत्तांत कुछ भी नहीं जानती?"

शैल० — "कै बेर पूछोगी? जब से मैं आई बराबर वही बात मुझ से पूछा करती हो"। शैलबाला उन सब बातों के उड़ा देने की की चेष्टा कर बोली कि "अब वह सब बार्ता जाने दो। क्या कुछ और कहोगी? मेरी इच्छा होती है कि तुमारे नाम पर एक छन्दोबद्ध कविता करूं"।

प्रभा० — "इस समय कविता करने का प्रयोजन नहीं है, कुछ गाओ"।

शैल०—"रुचि के अनुसार तो कोई गीत स्मरण नहीं आती"।

प्रभा०—"वह गीत गाओ।" शैलबाला बोली "कौन?"

प्रभा०—"स्मरण नहीं होती ? अरे वही जो मेरे निकट प्रायः गाया करती हो?" शैलबाला ने कहा कि "बहुत अच्छा" और गाना प्रारम्भ किया।

गीत काफी ताल।

सखी मैं तो भई हूं बावरी मर्म न जानो जाय॥
टोना कियो किधौं बांकी चितवन गई हिय मांहि समाय।
मन्द हँसनि लखि मनमोहन की घर आंगन न सोहाय॥
याको भेद कहा है सजनी तू किन देहि बताय।
कितिक उपाय करी हम तबहूं रहि २ जिय घबराय॥

शैलबाला ने धीरे २ आरम्भ करके सप्तम सुर तक चढ़ा दिया। उसके सु मधुर और पूर्ण स्वर से, उद्यान, नदी, वृक्ष, पत्र, सब मधुमय हो गये। नौकाराजि हिल २ और झूम २ कर उसके संग ताल देने लगीं। तरंगमाला उछल उछल कर उस ताल के संग नाचने लगी मर्मर शब्द से वृक्ष के सब पत्र शैलबाला के गाने में सुर भरने लगे। उसके पुरस्कार में पवन धीरे २ कुसुम गन्ध ले कर उद्यान में उड़ाने लगा। चन्द्रमा ने हँसते हुये मानो और अधिक किरण का विस्तार किया। क्रमशः शैलबाला का गान शेष

हुआ। गान समाप्त होते ही सब के सब जैसे दुःख में अधीर होकर शोभाहीन हो गये। प्रभावती ने कहा "सखी तेरा गान अति प्रिय और मधुर लगा और भी कुछ गा"।

शैल०—"मैं अब और न गाऊंगी, इस बार तुम्हारे नाम की एक कविता बनाती हूं। हां, एक तो बना लिया है। प्रभावती ने कहा "जा जी मत जला"। शैलबाला ने इस बात पर ध्यान न दिया। वह उसका चिबुक पकड़ कर बोली;—

"सुमन हार जेहि कंठ में अति अपूर्व छबि देत।
तेहि रमणी को तुच्छ नर सहजै मन हर लेत"॥

प्रभा०—"तुम को तो भइ रात दिन कविताही सूझी रहती है"।

शैल०—"जिसका स्वामी ऐसा कवि, उसको कविता से अरुचि क्यों? मैं जानती हूं, कि जो सदा सागर में रहता है, और बड़े २ तरंगों के संग जिसका मन खेलता रहता है, क्या उसका मन नदी नाले की ओर ढुलैगा? हां जैसे न ढुलैगा वैसेही अच्छा भी नहीं मालूम होगा। नहीं, यह भी उपमा ठीक नहीं है। जो रात दिन कोकिला का मधुर स्वर सुना करता है उस को काग की बोली क्या कभी प्रिय जान पड़ती है? किन्तु छिः! ऐसे

बड़े कवि के निकट रह कर भी तुम स्वयं कवि न हो सकीं?"

प्रभा०—'मैं तो नहीं हुई, भला तुम्हीं कवि के निकट रह कर कवि हो गई, सोई धन्य है। कवियों के निकट रहते २ तुमारे मुख से तो कविता के अतिरिक्त और कुछ निकलताही नहीं"।

शैल०—"और भी कई एक कवित्त बनाऊंगी, अभी हुआ क्या है? देखो न एक ओर यही कविता करती हूं" शैलबाला बात करती थी, किन्तु दृष्टि उसकी दूसरे ओर थी। शैलबाला को देख कर कि क्या देख रही है, प्रभावती ने भी उसी ओर मुख फेर लिया। देखती क्या है कि कविचन्द्र आते हैं। उनको देख प्रभावती बोली "अपनी कविता इस चण रहने दो। देखो उनके सन्मुख भी यह सब बात मत कहना, यदि कहोगी तो मैं तुमारे दिलीप की कथा कह दूंगी"।

शैलबाला बोली 'वह देखो तुमारे प्राणनाथ इधर ही आ रहे हैं। क्या वे चण भर भी अकेले रह सकते हैं?

गीत।

देखो सखी आवत कंत तिहारो।
चन्द्र प्रभा बिनु रहत न कबहूं यह जिय मांह बिचारो॥
रवि कर सों जस चन्द उदित ह्वै गगन करत उँजियारो।
तैसोई चन्द पाय तो शोभा जगत होत विस्तारो।

प्रभावती ने क्रोध से शैलबाला का हाथ चिबुक से हटा दिया।

शैलबाला को इस से और भी अधिक आनन्द प्राप्त हुआ, हँसती २ बोली;—तो लजाती क्यों हो? भला प्रभा बिना चन्द की शोभा हो सकती है?"

प्रभावती ने हाथ से उसका मुख बन्द कर दिया शैलबाला उसका हाथ छोड़ाही रही थी कि इसी में चन्द्र-पति उन लोगों के निकट आगये। उन लोगों ने देखा कि और दिनों की भांति चन्द्रपति के मुखपर हँसी नहीं है। उनका बदन अति विषण्ण है, इस प्रकार चिन्तायुत देख उनलोगों का आमोद आह्लाद जाता रहा। शैलबाला बोली कि "आज निष्कलंक चन्द्र मे कलंक क्यों है?" प्रभावती स्वामी की ओर देख कर बोली "शैलबाला को तो हरदम ठट्ठा करने का अभ्यास पड़ गया है। तुमारा मुख देख कर मुझे बड़ी चिन्ता हो गई है। शंका होती है कि जैसे कोई अमंगल वृत्तान्त कहने आये हो?" चन्द्रपति बोले कि "सचमुच में अमंगल वृत्तान्त सुनाने आया हूं?"

प्रभावती ने व्यस्त हो पूछा "क्या?"

चन्द्र।—"कल मैं दिल्ली जाऊंगा।"

प्रभा।—"क्यों?"

चन्द्र—'महाराज ने लिखा है कि, यवन लोग फिर दिल्ली आक्रमण करने आये हैं। शैलबाला बोलो "क्यों?

अभी तो उस दिन वे आप लोगों से युद्ध में हार गये थे। मुझे जिस वर्ष आप लाये, उसके छै मास अनन्तर उन लोगों से युद्ध हुआ था ?"

चन्द्र—"उस पराजय का अपमान वे सब अब तक न भूल सके, इस बेर अधिक सैन्य संग्रह कर उसके प्रतिशोध देने की आशा से आये हैं।" शैलबाला बोली "कौन बदला लेगा सो देखा जायगा। उस बेर आपने दया कर छोड़ दिया इसी से उनलोगों को इतना अहंकार हो गया है। उन्हें उचित था कि कृतज्ञ होते, न कि उलटा फिर उपद्रव करने आये।"

चन्द्रपति 'बोले मैं कलही जाऊंगा। अब कुछ भी बिलम्ब नहीं कर सकता।" प्रभावती इस क्षण तक मौन हो रोती रही, कष्ट से अश्रुजल निवारण कर बोली 'नाथ! तुम स्वदेश रक्षा के अर्थ जाते हो, अतएव मैं कदापि इसमें बाधा न करूंगी। ईश्वर करे उस बेर की भांति कृतकार्य्य हो कर फिर आओ। तुमारे संग और कौन जायगा ?"

चन्द्र—"वृद्ध अनाथ को ले जाऊंगा।" इतनी बातें कर वे लोग उद्यान से गृह की ओर चले। पृथ्वी मे सर्वदा सुख दुःख स्थिर नहीं रहता। देखो, अभी एक घड़ी पूर्व्व वे सब कैसे हास्यामोद में रत थीं। दुःख ने आकर प्रबल प्रचंड वायु की भांति उसको उड़ा दिया। उद्यान में आने

की समय जैसे हँसती हुई आई थी, जाने के समय वैसेही रोती हुई गयीं। मार्ग मे चलते २ शैलबाला ने प्रभावती से पूछा उस बार तो युद्ध में चन्द्रपति के जाने की समय तुम इस प्रकार कातर नहीं हुई थीं, इस बार ऐसी क्यों दीख पड़ती हो?" प्रभावती बोली "न जानें क्यों, इस बार की सी अमंगल भावना और कभी न हुई थी।"

---***---

आठवां परिच्छेद।

अब हम दिल्ली राजान्तःपुर में जहां राजकन्या उषावती, मन्त्रीपुत्र के संग बातचीत कर रही है प्रवेश करते हैं।

दोपहर रात गई है, अन्धकार छाया हुआ है, धरती निःशब्द है, और वृक्षों के पत्रों पर जुगुनू की ज्योति से विकाश हो रहा है, लगातार झिल्ली का झनकार मानो उस सूनसान को छेड़ रहा है। सब के सब निद्रित, कोई जाग्रत नहीं है। उस समय दिल्ली के राजान्तःपुर में एक कोठे पर केवल दो मनुष्य आसन पर बैठे हैं। आधीरात के समय जहां और कोई भी जाग्रत नहीं है, सभी सो गये हैं, वहां इस कोठे पर एक युवती कन्या अकेली पर-पुरुष के संग क्यों है?

राजकन्या हाथ पर कपोल रखे स्वर्णजटित पलंग पर बैठी है, विजयसिंह नीचे किमखाब की शय्या पर बैठा हुआ है। राजकन्या सोलह वर्ष की युवती और परम सुन्दरी है, इस प्रकार की रूपवती रमणी बिरलीही होगी। उसका रूप पूर्णिमा की चन्द्रिका की भांति हँस रहा है चांदनी जिस वस्तु पर पड़ती है वह हँसती है, वस्तुतः वह खिल जाती है, वैसेही उसके रूपराशि की ज्योति जिस पर पड़े वह दीप्तमान हो जावे। उसके अप्सराविनिन्दत मस्तक से, निविड़ कृष्णवर्ण केशराशि कंधे से होता हुआ आकर वक्षस्थल पर पड़ा हुआ है। उसके ऊपर रंगीन चादर ओढ़ने से ऐसी छबि है मानो चांदनी मेघ के संग लिपट रही है। उन छोटे २ दोनों कानों में कर्णफूल झूम २ कर शोभा दे रहे हैं. अलकगुच्छ, भ्रमर की भांति मधु लोभ से बद्ध हो कर मानो उसके संग खेल रहे हैं। रूप के ज्योति से वस्त्र चमक रहा है, समस्त गृह मानो हँस रहा है, किन्तु वह नहीं हँसती। यद्यपि उसके मुख से विरक्तिबोधक भाव प्रकाश होता था, तौ भी उसके मुख की कान्ति से चतुर्दिक प्रकाशमय हो रहा था। चन्द्र में कलंक है तो क्या उससे उज्वलता नहीं है? किन्तु यह कलंक क्या स्थायी है? क्या फिर दूर नहीं होगा? जिसकी शोभा पाकर समस्त वस्तु इतने शोभित हुये हैं, यदि वह हँसती तो न जानें कितनी शोभा होती?

वे दोनों चुपचाप हैं, किसी के मुख से कुछ बात नहीं निकलती, कुछ देर पर उषावती ने बात करना आरम्भ किया; मानो वीणा बज उठी। जहां तक वह स्वर गया तहां तक मानो अमृत की दृष्टि हो गई। उनने कहा "क्या कहने आये हो कहो! देखते नहीं कि हम लोग किस अवस्था में बैठे हैं? यदि कोई आ जावे तो क्या समझैगा? देर होने में विपद की आशंका है, शीघ्र कह कर प्रस्थान करो"। विजयसिंह ने कहा "सुना है कि यवन फिर आते हैं?"। यदि सकल वस्तु पर विचार किया जावे तो विजयसिंह को सुशील कह सकते हैं। उस की दृष्टि अन्तरभेदी होने पर भी प्रकाश में उसको अति नम्र और सद्व्यक्ति कहा जा सकता है, किन्तु जो लोग सूक्ष्मदर्शी हैं वे देख कर समझ सकते हैं कि उसका सब गुण कृत्रिम है, वास्तविक में वह सत् पुरुष नहीं है। इसी से वह अपने मुख की सरलता दिखा कर अनेक सीधे मनुष्यों को भुलवा सकता है। राजकन्या उस्की बात सुन कर बोली "तुम यदि यही कहने के निमित्त आये थे तो जावो। मैं इसके पूर्व्व ही उसे सुन चुकी हूं"। विजय ने कहा "नां, मैं केवल यही बात कहने नहीं आया कुछ और भी है"। उषावती ने पूछा "और क्या?"

विजय०—"यदि इस बार महाराज पृथ्वीराज परा-

जित हों तो तुम क्या करोगी ?" उषावती सक्रोध बोली "क्या ? पिता परास्त होंगे ! क्या तुम नहीं जानते कि जयचन्द्र को पराभव करके जब पिता आये तो उसी बची बचाई अल्पसंख्यक सेना से उसी वर्ष में यवनदल को कैसे मेषपालों (१) की भांति दिल्ली से बाहर कर दिया था ?"

विजयसिंह ने किंचित लज्जित हो कर कहा कि "ईश्वर करे वैसाही हो, किन्तु यदि विपरीत घटना हो तो क्या करोगी ?"

उषा०—"सो इस समय कैसे कहूं ? जो दशा पिता जी की होगी सोही मेरी भी समझो"।

विजय०—"तुम स्त्री जाति हो तिस पर राजकन्या, किस प्रकार कष्ट सहन करोगी ?"

उषा०—"तुम कापुरुष हो इसी से ऐसी बातें कहते हो। और बार यवन लोग युद्ध के समय किस प्रकार भागे थे? स्मरण करके देखो मैं यद्यपि पुरुष नहीं हूं तथापि तुमारी अपेक्षा साहसी हूं। ऐसा अपने मन में मत बिचारो कि मैं कष्ट स्वीकार न कर सकूंगी। यदि अभी कोई आ कर कहे कि 'तुमारे मृत्यु होने से देश की रक्षा होगी' तो देखो कि मैं तुर्त मर सकती हूं कि नहीं? तुमारे सदृश

(१) भेड़ के चरवाहे।

मैं स्वदेश की अपेक्षा प्राण को अधिक मूल्यवान नहीं जानती"। विजयसिंह के हृदय में यह बात तीक्ष्ण बाण की नाईं बिध गई। उसके रणक्षेत्र से भागने का हाल और कोई नहीं जानता। केवल राजकन्या के निकट उन्होंने उसको प्रगट किया था, किन्तु जिस लोभ की आशा से कहा था वह फल न देखा, पर विपरीतही देख पड़ा। वे इस समय मन ही मन क्रुद्ध हुये किंतु प्रकाश्य में उस्को छिपाकर बोले कि "तुम मुझ से सर्वदा वह बात कह कर मेरे मन को कष्ट देती हो किंतु तुम जो कहती हो वह सत्य नहीं है। मैं स्वदेश की अपेक्षा प्राण को प्रिय नहीं जानता किंतु तुम को प्रिय समझ कर मरने की इच्छा नहीं करता, तुमारे ही वास्ते मैंने रणक्षेत्र से पलायन किया था। मरने पर तुमारा यह मुखचन्द्र न देख सकूंगा यही समझ कर मैं भागा था। यह जानबूझ कर भी कि भागने से कापुरुष बोध होकर सब के निकट घृणास्पद होना होगा, मैंने केवल तुमार ही निमित्त पलायन किया था। मैंने तुमारे ही चरण के नीचे प्राणाधिक् क्षत्रिय तेज बिसर्ज्जन किया था। अब तुमारे मुख से यह निर्दय वाक्य सुनना पड़ा? यदि मैं यह जानता कि तुम मुझ से इस प्रकार घृणा करोगी तो मृत्यु को सुखकर जान निःशंक प्राण दे देता"। "उषावती यह बात सुन अपनी उक्त प्रकार की

बातों को अन्याय विवेचना कर बोली "अच्छा, यदि मेरी बातों से वास्तव में तुम को कष्ट होता है तो मैं और कुछ न कहूंगी । किंतु तुमने जो कहा सो मिथ्या नहीं, तुम कापुरुष के भांति भागने की अपेक्षा यदि रणक्षेत्र में मर जाते तो मैं तुम को अधिक प्यार करती ,मेरे कोई भ्राता नहीं है, तुमारे मृत्यु होने पर तुम को बीर भ्राता जान कर मैं तुमारे निमित्त रोदन करती, रोने में भी मुझ को आह्लाद होता । उस समय मैं यह कह सकती कि मेरे भ्राता ने देशरक्षा करके युद्ध में प्राणत्याग किया है । जो हो, मैंने जो भूल कर इतनी बात कह तुम्हें लज्जित किया इससे इसबार बोध होता है कि तुम युद्ध में अपना वीरत्व दिखलाओगे ?"

विजय०—"यदि मैं तुमारे मुखार्बिन्द से सुनूं कि इस बार वीरत्व दिखाने में तुमारे प्रेम का पुरष्कार पाऊंगा तो मैं प्राण देने में अब प्रस्तुत हूं । हम लोग बाल्यावस्था से एकत्र रह आये हैं, परन्तु कभी भी तुमने मुझ को प्यार से नहीं पुकारा । किंतु मैं तुमारे निमित्त सर्वस्व देने को प्रस्तुत हूं" ।

उषा०—तुम मेरे ऊपर यह मिथ्या दोषारोपण करते हो, कि मैं तुम को प्यार नहीं करती । मैंने तुम से कई बार कहा कि मैं तुम को ज्येष्ठ भ्राता की भांति प्यार करती हूं । और इस समय भी वही कहती हूं" ।

विजय०—"तुमारे प्रेम करने की सीमा क्या चिरकाल तक समानही रहेगी? फिर मुझ को वृथा क्यों कष्ट देती हो ? इस बार यदि युद्ध में वीरत्व प्रकाश करूं, तब तो तुम मेरी हो जाओगी न ?"

उषा०—'मैं कई बार तुम से कह चुकी हूं कि यह बात जिह्वा पर मत लाना। मैं कदापि तुमको उस प्रकार प्यार न करूंगी"।

विजय०—"क्यों ? तो क्या तुम किसी और को प्यार करती हो ?"

उषा०—"इसके जानने की तुम को क्या आवश्यकता है ?"

"विजय०—इस के जानने से प्रेम की बातें कह कर फिर तुम को विरक्त न करूंगा"। विजयसिंह रुद्धश्वास हो कर स्तंभित भाव से उसके उत्तर की प्रतीक्षा करने लगे। उषावती अनिच्छा पूर्व्वक धीर और गंभीर स्वर से बोली "हां मैं प्यार करती हूं"। इसी एक बात से विजय की इतने दिनों की आशा मानो सब विलुप्त हो गयी। कंपित स्वर से बोले "किस को ?"। उषावती के बदन मंडल में इस प्रश्न से एक मात्र विरक्ति भाव का प्रकाश बोध हुवा कि मानो वह मन ही मन यह कहती है कि तुम को इस बात के पूछने का अधिकार नहीं है" सच है

किसी को अधिकार नहीं है, अपने प्रीति की सामग्री अपनी है। मन में विचार किया कि "बोलूंगी नही।"

विजय ने सुना था कि, चितौराधिपति समरसिंह के पुत्र युवराज कल्याण के संग राजकन्या के विवाह का संबन्ध होता है, इसी के सुनने से उन्होने अतिशय व्याकुल हो कर राजकन्या के संग साक्षात प्रार्थना किया था। आज इस चेष्टा से वे आये थे कि राजकन्या की परीक्षा लें कि कल्याण के प्रति वह अनुरागिणी हैं कि नहीं, और इस जानने पर ऐसा यत्न करें कि वह किसी प्रकार से उनके संग विवाह करने में सम्मत न होवे। किन्तु अपने अन्तिम प्रश्न में राजकन्या को निरुत्तर देख वे और अधिक उत्तर की पतीक्षा न कर सके। आपही बोल उठे क्या "युवराज इन्द्रसिंह अथवा रणवीरसिंह में से कोई तुमारा प्रणयपात्र है?" उषावती पूर्ववत् मौन रही उस को निरुत्तर देख विजय अधीर हो बोले "क्या मेरे निकट उस बात के कहने मे भी तुम्हे इतनी बाधा है?" उषावती विरक्त होकर बोली "नहीं वे लोग मेरे प्रणयपात्र नहीं हैं। अब अधिक कुछ पूछ कर मुझे विरक्त मत करो इन सब विषयों का उत्तर मैं न दूंगी। यदि और कोई दूसरी बात न हो तो जाव?" इसको निश्चय जानने के हेतु से कि वह कौन प्रणय पात्र है, उन्होंने राजकन्या को सुना कर अपने

मन में मृदुस्वर से कहा 'वे लोग नहीं हैं तो और कौन है ? रणवीरसिंह नहीं इन्द्रसिंह भी नहीं तो और इसके उपयुक्त प्रणयपात्र यहां अब कौन है ? एक युवराज कल्याण? । तो क्या उसी को राजकन्या ने प्रेमपात्र बनाया है?' कल्याण का नाम सुनतेही राजकन्या घबडाकर देखने लगी उसके मुख का भाव बदल गया । बदन मंडल किंचित रक्त हो गया । दृष्टि नीची कर ली, इस्से लज्जा का चिन्ह प्रकाश हुवा। मन का भाव गोपन करने के निमित्त वह चद्दर से बदन ढांक चुपचाप खेलने लगी । उसको सिर से थोड़ा सरका दिया फिर खींच कर घूंघट काढ़ लिया। विजयसिंह यथार्थ भाव बूझ गये। उनके हृदय में जो आशा का अंकुर जमा था, वह सूख गया । फिर वे वहां न ठहरे, शीघ्र उस गृह से बाहर होकर द्रुतवेग से एकबारगी आकर अपने गृह पर उपस्थित हुये। राजकन्या विजय की यह क्रिया देख ज्ञान शून्य हो गयी। कुछ देर उपरान्त जब विस्मय कम हुवा उसने अपने प्रियसखी गुलाब को पुकारा । गुलाब का बदन अति उदास नेत्र रक्तवर्ण, बोध होता है जैसे इसके पहिले रोती हो। किन्तु राजकन्या ने अन्यमना होने से उसपर ध्यान न दिया। वह बोली "तुम मंत्री पुत्र को गुप्त-द्वार से यहां ले कर आई थीं, किन्तु जाने के समय उसने तुमारी अपेक्षा न किया और चले गये, मैं पहिले उसके

संग साचात करने में किसी प्रकार सम्मत नहीं हुई। अत्यन्त अनुरोध करने से अन्त में सम्मत हुई। जिस अभिप्राय से वह आना चाहते थे उसके जानने से मैं कभी सम्मत न होती इस समय उस को किसी ने देखा कि नहीं, अब गुप्तद्वार बन्द कर आओ।"

इतना कह कर राजकन्या शयनागार को चली गई।

नवां परिच्छेद।

पृथ्वी में सचराचर दो प्रकार का प्रणय देखने में आता है। एक का नाम अकृत्रिम, और दूसरे का नाम स्वार्थपर प्रेम है। जिस व्यक्ति का प्रेम, प्रणयी जनके निकट प्रेमका प्रतिदान न पाने और सहस्रश: निष्ठुरता का उपहार पाने परभी हृदय में अचल रहे उसी का प्रेम अकृत्रिमहै। जो व्यक्ति प्रणयी जन के सुखसाधन के हेतु आत्मसुखाभिलाष विसर्ज्जन कर सके उसी का प्रेम अकृत्रिम है। किन्तु इस प्रकार के उच्च प्रणयी बिरले होते हैं और परस्पर का प्रणय यदि अटल हो तो वह भी अकृत्रिम है। इस प्रकार का अकृत्रिम प्रणय उतना विरल नहीं है, और जिस व्यक्ति का यत्नसंचित प्रेम भी चण भंगुर द्रव्य की भाँति किसी एक बात में भंग हो जाय अथवा जो आत्म सुख के हेतु प्रेम करै, उसका प्रेम, प्रेम

नाम के योग्य नहीं है। वह जब सुनता है कि उसके प्रेम-
पात्र का प्रेम किसी दूसरे पर लगा है, उस समय उसका
प्रेम घृणा रूप में परिणत हो जाता है । उस समय वह
बिचारता है कि वह अपने हेतु प्रीत करता था, कुछ मेरे
निमित्त नहीं। ऐसे प्रेम का नाम स्वार्थपर प्रेम है ।

बिजय का प्रेम इसी दूसरे श्रेणी मे है। उन्होंने जब
सुनलिया कि राजकुमारी मुझसे कभी प्रेम न करेगी क्यों
कि वह दूसरे पर आसक्त है, तुर्त उनके हृदय पर घृणा
और हिंसाने अधिकार करलिया। केवल यही नहीं कि
वे राजकन्या के लाभ से वंचित हुये। उनकी एक औरभी
बहुत दिनों की आशा उसी के संग लुप्त हो गयी। उन्होंने
यह आशा की थी कि यदि मैं राजकन्या का प्रेम प्राप्त कर
सकूं तो भविष्यत राजा भी हो सकूंगा क्योंकि पृथ्वीराज के
कोई पुत्र न था। जब यह देखा कि वह आशा वृथा है,
मेरा स्थान तो कल्याणसिंह ग्रहण करेंगे तो वे अपने मनमें
उसका दोषी राजकन्या और कल्याण को ठहराने लगे।
हिंसा और क्रोध में शरीर जल उठा, और अपने मनमें
कहा कि 'यह तो कभी न होगा मरूंगा किंवा मारूंगा।
यही चिन्ता करते २ विजय अपने गृह पर आकर उप-
स्थित हुये। देखा कि उनका भृत्य उनके निमित्त अपेक्षा
करता है। भृत्य विजय को देखते ही बोला "मन्त्री महा-

श्रय, आप के निमित्त चिरकाल से प्रतीक्षा कर रहे हैं। यह सुन विजय अपने गृह से पिता के गृहपर आये। उनके पिता अस्सी वर्ष के वृद्ध थे दाढ़ी मोंछ सम्पूर्ण श्वेतवर्ण, मुख अति गंभीर और उससे दुगुण प्रकाश होता था, उस असामयिक वृद्ध को देखते मात्र भक्ति उत्पन्न होती है। इनको देख करमन में प्रतीत होता है कि युवावस्था में ये एक सुन्दर पुरुष रहे होंगे। विजय के मुखाकृति से यद्यपि उनके मुख की आकृति अनेक प्रकार से मिलती थी, तथापि उनका सद्गुण सब विजय में न दीख पड़ता था।

विजयने गृह में प्रवेश करते ही देखा कि मन्त्री और अमरसिंह एक दीप की ज्योति के सन्मुख बैठे कुछ लिख रहेहैं, पासही अनेक कागजपत्र रक्खे हैं। इन्होंने लिखना बन्द नहीं किया, इंगितद्वारा उनको बैठने की आज्ञा दी। जो लिखते थे उसे समाप्त कर बोले 'मैं सन्ध्या काल से तुमारे हेतु प्रतीक्षा कर रहा हूं, तुमारे संग हमें कुछ विशेष बात चीत करना है।' विजय यह सुन आश्चर्यान्वित हो बोले 'मैं घर पर ज्योंही आया आपका बुलाना सुन तुर्त्त यहीं चला आता हूं, आप की क्या आज्ञा है? कहिये कि सुन कर परितृप्त होऊं।" मंत्री ने कहा 'किसी कार्य्यवश कल्ह ही तुमको विदेश यात्रा करना होगा, सब कुछ प्रस्तुत है, अब रात्रि में तुम तय्यार होजाव।" विजय को सहसा

दूसरे ही दिन अपना जाना सुन और भी अधिक आश्चर्य्य हुवा। अमरसिंह कई एक पत्र दिखला कर बोले 'येही सब अति प्रयोजनीय हैं, इन्हीं, सबों को निर्दिष्ट स्थानों में लेजाने के लिये एक बिश्वासी और उपयुक्त पुरुष आवश्यक है। आगामि युद्धोपलक्ष में सन्धिबद्ध और छोटे २ भूमि-कर देनेवाले राजाओं के निकट सहायता की प्रार्थना इस का उद्देश्य है। मुसलमान लोग इस देश में आये हैं, यह जान बूझकर भी हम लोगों ने इतने दिनों तक कोई बिशेष तय्यारी नहीं की। कारण यह है, कि हम लोगों ने मन में यह बिचार किया था कि यदि उसबार का अपमान भूल गये, और साहस करके वे सब इस बार युद्ध करने के निमित फिर आवें, तो हम लोग अपनी ही सैन्य द्वारा उन सभों को पराजय कर सकेंगे, तथा अन्य राजाओं की सहायता लेने की कोई आवश्यकता नहीं देखा। किन्तु अब देखते हैं, कि शत्रु को बलहीन समझ तय्यारी में त्रुटि करना कदापि उचित नहीं है। अति सामान्य युद्ध होने में भी असावधानी न करना चाहिये। बिशेषतः मुसलमानों के संग युद्ध जैसा सहज है सो प्रगट है। यदि कोई क्षत्रिय उन सबों के संग योग देवे, तो निस्सन्देह सहज न होगा। फिर उसवार जिस समय कन्नौजाधिपति को पराजय करके हम लोग आये, वही अल्पावशिष्ट सेना

लेकर यवनों से जयलाभ किया था, तो इसबार उनसभों के पराजित करने में हम लोगों की समस्त सेना को युद्ध क्षेत्र में जाने का प्रयोजन पड़ेगा या नहीं इस में भी सन्देह है। किन्तु जयचन्द्र से हम लोगों की शत्रुता है। हम लोगों को इस प्रकार की आशंका होती है कि वह देश की मर्य्यादा भूल कर इन सभों के संग योग दे सकते हैं इसी कारण चतुर्दिक विवेचना करके तुमको भेजते हैं। हमारे चारो ओर शत्रुवों के चर उपस्थित हैं एक पग भी निर्भय आगे बढ़ने के योग्य नहीं है। इसी कारण सामान्य दूत द्वारा इसे भेजने में साहस नहीं होता। सामान्य दूत विपद में पड़ने पर कला कौशल अथवा बल द्वारा शत्रु के हाथ से बचना न जानेगा। और यदि शत्रुगण इसे किसी प्रकार पा जांयगे तो हम लोगों का कार्य्य सिद्ध न होगा। इस कार्य्यनिर्वाह के निमित्त साहस इत्यादि जिन सर्व्वगुणों की आवश्यकता है, वह सब तुम्ही में पाये जाते हैं। इसी कारण महाराज से कहकर तुम्हें इस कार्य्य में नियुक्त किया है। इसमें अनेक विपत्ति संभावना देखने पर भी सावधानी के साथ कार्य्य निर्वाह करना। यद्यपि तुम मेरे प्राणों के अपेक्षा भी प्रिय हो, तथापि स्वदेश रक्षा निमित्त तुम्ही को भेजता हूं। देश कल्याणार्थ इस वृद्धावस्था में एक मात्र पुत्र को भी त्यागना हमने स्वीकार

किया है। यदि मैं वृद्ध होने से असमर्थ न होगया होता तो मुझ को स्वयं जानेमे इतनाकष्ट न होता ' — बोलतेर उनके दोनों नेत्र जल से पूर्ण हो गये परन्तु पुत्र को विदा कर ही दिया। जब लौं वह पथ में दीख पड़ते थे, तबलौं एकटक देखतेही रहे,। जब दूरजाने से अदृश्य होगये तब उस ओर से चक्षु फेर किया। फिर मन्द चिन्ताने आकर उनके चित्तपर अधिकार किया। सोचने लगे कि 'जिस कार्य्यके लिये विजयको भेजा है उसमें मृत्यु होनेकी अधिक संभावना है। यह गया तो सब कुछ बिदा हुवा। इस वृद्धावस्था में अपना और कोई नहीं, यही एक मात्र पुत्र है, उसको भी मैं इस बार खो बैठा। यदि पुत्र फिर कर न आया, तो किसका मुख देख जीवनधारण करूँगा? ऐसी दुर्घटना होने से मेरी क्या दशा होगी?" फिर विचारा कि "यदि भाग्य से स्वछन्द फिर आया, तो यह सकल चिन्ता वृथा है परमात्मा ऐसाही करें, यदि ऐसा होगा तो उसको भविष्यत में ऐसे विपदजनक कार्य्यमें फिरकभी न भेजूंगा। स्वछन्द फिरआने का मन मे ध्यानही करने से उनका हृदय आह्लाद से पूर्ण हो गया। किन्तु वह क्षणिक था फिर मन्द आशंका होना कुछ आश्चर्य्य नहीं है। यह तो मनुष्य का स्वभावसिद्ध धर्म है। वे जिस समय इस प्रकार चिन्ता कर रहे थे, उस समय विजय क्या कर रहे थे,? उ-

न्होंने यह विचार करके कि निद्रा में सकल कुचिन्ता दूर हो जायगी पहिले शयन किया। किन्तु निद्रा किसी प्रकार न आई। पिता की महत्वयुक्त मुखश्री देख कर जिस विषय को क्षण काल के निमित्त भूल गए थे, वह मन में फिर उद्दीप्त हुआ। विजय उस चिन्ता से निवृत्ति पाने के हेतु जितनीही निद्रा आने की चेष्टा करने लगे, उतनीही राजकन्या के संग की वातचीत स्मरण होने से डाह में उनका शरीर दग्ध होने लगा। शय्या कंटक के समान होगई। वे शय्या त्याग कर गृह में चारो ओर टहलने लगे। और यह उपाय सोचने लगे कि राजकन्या और उसके प्रियपात्र कल्याण को किस प्रकार दंड दूं। क्षण पर्य्यन्त चित्तस्थिर होने पर उनको स्मरण हुवा, कि मै जब राजकन्या के गृह से बाहर हुआ था तो उस समय द्वारदेश पर किसी को खड़े देखाथा। मनमें अनवस्थिता के कारण उस समय उस्को भली भांति न पहिचाना, विचारने लगे कि "वह कौन था? गुलाब तो न थी? वह वहां खड़ी क्या करती थी? क्या वह हम लोगों की बातचीत सुनती थी? वही होगी। वह अपने मन में क्या कहती थी सो तो स्पष्ट स्मरण नहीं होता। इतनाहीं स्मरण है कि केवल पुरुषजाति की निन्दा करती थी, किन्तु उस्के निन्दा करने का कारण भी है, क्योंकि मैं जानता हूं कि वह

मेरे प्रति दृढ़ अनुरागिणी है, और उसको जानकर भी मैं उसके प्रेम में सम्पूर्ण उदासीन हूं किन्तु इस बार उसके प्रति प्रेम प्रगट करके अपना एक मुख्य उद्देश्य उसके द्वारा सिद्ध कर लूंगा ।" इस समय बिजय के हृदय मे नूतन आशा का संचार हुआ वे फिर गृह में न ठहरे, हिताहित विवेचनाशून्य हो कर द्रुतवेग से राजभवन के सन्मुख चले गढ़ लांघ कर उद्यान में प्रवेश किया । विजय यह उत्तम प्रकार से जानते थे कि राजगृह के किस किस स्थान में प्रहरी नियुक्त हैं, और किस पथ से जाने से निर्विघ्न जा सकेंगे । उसी के अनुसार सावधानी से चले और अन्धकार होने के कारण प्रहरी लोगों में से किसी ने उन्हें देखा न गुलाब का गृह किस स्थानपर है उस्को भी विजय जानते थे उद्यान में पहुंचकर उसी ओर चले । गुलाब जिस गृह में बास करती थी वह दोमंजिला था । उसी के नीचे उद्यान में खड़े हो सोचने लगे कि ऊपर किस प्रकार चलूं जिस समय गृह से बाहर हुये थे. उस समय यह सब बातें ध्यान में न आई थीं । बिजय के दुर्बुद्धि में स्थिरता न रही । वे इस समय बिचारने लगे कि हम किस प्रकार कृतकार्य्य होंगे, अचानक पांव की आहट सुन पड़ी और एक मनुष्य देखपड़ा । विजय उसे प्रहरी समझ कर मन में भयभीत हो एक वृक्ष की ओट में खड़े हो गये । उस व्यक्ति के नि-

कट आने पर जान पड़ा कि कोई स्त्री है। रमणी और भी आगे बढ़ी, बिजय ने गुलाब को पहिचाना । गुलाब भी निन्द्रा न आने से बिरक्त हो शय्यात्याग उद्यान में आई थी और बिचार किया था, कि रात्रि के शीतल वायु से शरीर शीतल होने पर चिन्ता जाती रहेगी, किन्तु कृतकार्य्य न हुई। विजय जिस हेतु आये थे, बिना कष्ट उसको पाकर अतिशय आह्लादित हो उसके सन्मुख चले। एक पुरुष को अकस्मात् सन्मुख आते देखकर गुलाब ने भयभीत हो चिल्लाने का उद्योग किया। किन्तु उसका अनुमान करतेही बिजय बोले "क्या करती हो? तुम्हारे चिल्लाने से मैं चोर समझ कर पकड़ा जाऊंगा।" इस स्वर के सुनतेही गुलाब ने पहिचान लिया यद्यपि वह यह न जानती थी कि बिजय उसी के हेतु आये हैं, तौभी उनको देखकर उसे आह्लाद हुवा। किन्तु वह उस भाव के छिपा कर बोली 'यह क्या, इतनी रात्रि में तुम यहां क्योंकर आये?"

बिजय ने कहा "तुमारे निमित्त।"

गुलाब दुखव्यंजक मुसकराहट से बोली "यह ठट्ठा करने का समय नहीं।"

बिजय—"मैं ठट्ठा नहीं करता' सत्य कहता हूं।"

गुलाब—"मुझ से तुमारा ऐसा कौन प्रयोजन है जो तुम प्रातःकाल न कर सकते थे और इसरात्रि में आये हो?'

विजय—"मैं कल प्रातःकाल यहां न रहूंगा।"

गुलाब—"क्यों? अच्छा क्या प्रयोजन है कहो?"

विजय—"यह स्थान वार्त्तालाप करने के योग्य नहीं है, किंचित और दूर चलो।" कुछ दूर जाकर बोले "मैं तुमसे एक बात पूछने आया हूं, बतलाओगी?" गुलाब इस पर कुछ क्रुद्ध होकर बोली "जानती हूं, राजकन्या की बात'। उसके मुख से तो सब स्पष्ट तुमने सुनाही था फिर पूछने क्या आये? उसका प्रेम कल्याण पर है। उसके पाने की आशा त्याग दो।" विजय ने देखा कि मेरा अनुमान सत्य है कि राजकन्या ने कल्याणही को प्यार किया। गुलाब के निकट विजय के आने का अनेक कारण था। उसमें से एक इस विषय के जानने की भी इच्छा थी कि राजकन्या यथार्थ कल्याण के प्रति अनुरागिनी है कि नहीं यह इच्छा बिना परिश्रम पूर्ण हुई। तब वे बोले 'नहीं, राजकन्या की बात नहीं। तुमारी बात है।" गुलाब आश्चर्य से बोली "क्या! मेरी बात! मेरी बात क्या?"

विजय "हां तुमारी बात, आज तुम उस समय जो कहती थीं, क्या वह क्या सत्य है?'

गुलाब—'कब! मैं क्या कहती थी?"

विजय—'वही जब मैं राजकन्या के गृह से आता था, तब तुम कहती थी न कि कोई एक जन मेरी प्रणयनी

हुआ चाहती है—वह कौन है? क्या वह तुम्ही हो?" गुलाव समझ गयी कि मेरी सकल कथा प्रकाश होगयी है, लज्जित होकर सिर नीचा कर लिया, क्षणेक विचार कर बोली "जब सब सुनही लिया है तो फिर क्या पूछते हो?"

बिजय—"तो क्या मैं जो अनुमान करता हूं, वही ठीक है? क्या तुम मुझको यथार्थ प्यार करती हो?,

गुलाब—"मैं प्यार करती हूं कि नहीं, इसके जानने से तुम को क्या लाभ? तुम तो मुझको प्यार नहीं करोगे न? तुमारा हृदय तो दूसरी ओर है।'

विजय—"नहीं, मैं तुमको अवश्य प्यार करूंगा" इतना सुन गुलाब का मुख हर्ष से खिल उठा, किन्तु क्षणमात्र ही पर फिर मलीन हो गया। सूर्य्योदय के संग ही मेघ का संचार हुआ, दीपक जल कर बुझ गया। वह बोली 'जो व्यक्ति अभी थोड़ही देर पूर्व राजकन्या के हेतु पागल हुआ था, वह कैसे अल्पही क्षण में दूसरे को हृदय देगा? और यदि देभी तो वह भी क्षणकाल के निमित्त है। तुम आज मुझे प्यार करोगे, कल्ह वेही बातें कह दूसरे से मन तुष्ट करोगे।"

विजय—"क्या तुम भी मेरा प्रणय ग्रहण न करोगी? मेरा कैसा दुर्भाग्य है। मेरे निमित्त जिसको इतनी लालसा रही वह भी मेरा प्रेम जानकर मेरे प्रति निर्दय हुई। राज

कन्या ने मुझसे प्रेम नहीं, किया फिर, एक ओर जो मेरे प्रति अनुरागिणी भी है, उसे यदि इतना जान कर भी मैं प्यार नहीं करूंगा तो कैसे रहूंगा ? तुम से प्रेम प्रगट किया तो क्या तुमारे निकट दोषी हुआ ।" सरल हृदया गुलाब ने विजय की चातुरी न समझा । उसे भी अपनी भांति सरलचित्त जान कर, उनने जो कहा था उसका बिश्वास कर लिया । वह अबोध बाला आज धूर्त्तता के फन्दे में फंस गयी, बोली कि तुमने जो कहा मैं बिश्वास करती हूं; मैंने जाना कि अब मेरे सौभाग्य का सूर्य्य उदय हुआ। आज से मैं तुमारी मोल की दासी होकर रहूंगी । यदि मेरी बातों से कुछ कष्ट हुआ हो तो, क्षमा कीजियेगा।" इतनी देर में कहीं जाकर विजय की मनोकामना सिद्ध हुई। वे हर्ष में अधीर हो उठे, और गुलाब ने धोखा खाया । उसने समझा, कि मेरे ही निमित्त बिजय को इतना हर्ष हुआ है । किन्तु उस समय एक प्रहरी के पांव की आहट सुनकर दोनों का हर्ष भंग हो गया । गुलाब बोली "तुम जाव, प्रहरी देख लेगा तो सर्व्वनाश ही होजायगा।" बिजय ने कहा "इस समय तो मैं जाता हूं । कार्य्य सिद्ध करके फिर आऊंगा, तो भेंट होगी।" इतना कहकर बिजय चले गये । प्रहरी निकट आया, गुलाब को देखकर कुछ नहीं बोला, वह जानता

था कि ग्रीष्म काल में गुलाब कभी कभी रात्रि को इस उद्यान में टहलने के निमित्त आया करती है ।

घर पहुंचने पर विजय इस बार पहिले की अपेक्षा शान्त होकर सोये । उनके स्थिर होने का कारण क्या है? क्या गुलाब के पाने से उसके हृदय से डाह की आग बुझ गयी? नहीं, नहीं, अब वे बदला ले सकेंगे इसी आशा से पहिले की अपेक्षा स्थिर हुये हैं। बिजय एक घड़ी भी न सोये थे कि भोर हो गया। रात्रि में सोने के समय खिड़कियों का किवाड़ बन्द न किया था उसी से गृह में प्रकाश हो गया, और उनकी निद्रा भंग हो उठी। देखा कि पूर्व्व दिशा उज्वल हो रही है, और मंद २ प्रभात का पवन सनसनाता हुवा उनके अंग को स्पर्श करता है। उस शीतल समीर और नूतन आशा से शरीर और मन पहिले से फुर्तीला होगया । बिलंब होने के कारण उठतेही विजय ने पिता से साक्षात् भी न किया, तुर्त्त अश्वारूढ़ हो गम्यस्थान को चल दिये।

—※※※—

दसवां परिच्छेद।

सन्यासी और दिलीपसिंह के निकट हम लोगों को गये बहुत दिन होगये। आज एकबार उस कुटी में चलकर देखना चाहिये कि वे लोग क्या करते हैं, किन्तु चन्द्र-

मा के उदय न होने से पृथ्वी शोभाविहीन है । रजनी गंभीर और निःशब्द है; पृथ्वी अन्धकारमय हो रही है। इस सुनसान में कभी २ केवल उलूक के कठोर कंठ का शब्द और झिल्ली का झनकार सुनाई पड़ता है । उसके भिन्न इस समय और कोई शब्द कान में नहीं आता, सारी पृथ्वी नींद में बेसुध है। किन्तु इस गंभीर रात्रि में भी कुटीरबासी लोग नहीं सोये। वे लोग दीपक के उजिआले में दिखलाई पड़ते हैं, कुटी के एक प्रान्त में सन्यासी शय्या पर बीमार सोये हैं, निकट में दिलीप बैठा है। दिलीप के हाथ के निकट रोगी के औषध इत्यादि प्रयोजनीय द्रव्य सकल मिट्टी के पात्र में प्रस्तुत हैं। रोगी का ज्वर छूटगया है, परन्तु वह शरीर के ज्वाला से छटपटा रहा है, और बीच २ में दिलीप से जल मांग रहा है। दिलीप इस समय बाइस बर्ष का युवा पुरुष है । उसकी मुखश्री पूर्व्ववत कोमल और सुन्दर है। संसार की कठोरता इस समय भी इस युवा में लक्षित नहीं होती आज दिलीप का हृदय बिषाद से पूर्ण, और मुख मलिन है। सन्यासी के पीड़ित होने से एक क्षण भी इसके मन में सुख नहीं है । दिलीप इस क्षण रो रहा है और रोगी को देखता हुवा बीच २ में एक २ बार दीपक उत्तेजित करता जाता है । सन्यासी ने कहा "जल," दिलीप उसके मुंह में पानी देकर बोले अब

औषध खाने का समय होगया है, थोड़ासा खालो।" यह औषध सन्यासी ने स्वयं बनाया था। वह अपने रोग की आपही चिकित्सा करते थे। सन्यासी बोले "नहीं, अब नहीं खाऊंगा। औषध अब कुछ नहीं कर सकतो और थोड़ा जल।" दिलीप थोड़ा और जल मुख में देकर फिर बोले "पिता जी, आप ऐसी बातें क्यों कहते हैं? आप के भिन्न इस अनाथ सन्तान का और कोई नहीं है, यह क्या आप नहीं जानते?

सन्यासी—"मैं तुमारा पिता नहीं हूं। मुझे पिता कह कर संबोधन मत करो। इतने दिन तुमको लेकर मैंने सन्तान का साध पूर्ण किया है, किन्तु मरने की समय तुमारा भ्रम नहीं रखना चाहता।"

दिलीप—"आज आप एक बेरही ज्ञानशून्य हो गये हैं, पुत्र को भी आज पराया कहते हैं"

सन्यासी "नहीं,—मैं ज्ञानशून्य नहीं हूं। आज तुमसे सब खोलकर कहूंगा, तो फिर तुम ऐसी बात नहीं कहोगे। अब अधिक बात नहीं कर सकता, थोड़ा और जल दो।"

दिलीप जल मुख में देकर बोले "पिता जी धैर्य्य धरो, बातें करने का प्रयोजन नहीं है, आप बहुत थकित हो रहे हैं।"

सन्यासी –"जल पीने से मेरी श्रान्ति दूर हुई अब

बोल सकता हूं सुनो। तुम बीच २ में बात कह कर बाधा करोगे, तो और बिलम्ब हो जायगा तो फिर मुझको बोलने की शक्ति न रहेगी । जो कहता हूं उसे चुपचाप सुनते जाव ! चित्तौर नगरी मेरी जन्मभूमि है, मैं एक धनाढ्य बाणिक्सन्तान हूं। पिता बाणिज्य कर्म कर के बहुत धन संचय कर मर गये। मैं उनके मरने पर उनके समस्त बिषय का अधिकारी हुवा, और मै भी बाणिज्य करने लगा। परन्तु मेरे हाथ से वह कार्य्य वैसा उत्तम न चला; लाभ के बदले घाटा होने लगा। क्रमशः पिता की जो कुछ धन संपत्ति थी सो सब इसी के संग चली गयी। मैं पूर्णतया निर्धनी हो गया। महाजनों ने घर द्वार सब बिक्रय करा के अपना २ ऋण चुका लिया फिर मैं बहुत कष्ट में पड़ गया। जल, जल और नहीं बोल सकता।" दिलीप मुख में जल देकर बोले "अब मत बोलिये। आप मेरे पिता नहीं हैं मैं बिश्वास करता हूं।"

सन्यासी—"नहीं, मुझको बोलना पड़ेगा। तुम बिश्वास नहीं करते, मुझको रोकने के निमित्त ऐसी बात कहते हो।" जल पीकर उन्होंने फिर कहना प्रारम्भ किया। प्रति मुहूर्त उनका जीवन शेष होने लगा । बात करना उनके पक्ष में क्रमशः कष्टकर हो चला। तथापि वे बोलने लगे—"तद्पश्चात उसी दुःख के समय में एक और दुःख

उपस्थित हुवा । मेरा जो एक मात्र पुत्र था वह भी संग छोड़ सुरलोक को सिधारा । गृहिणी ने उसके शोक में प्राण त्याग किया । मैं उन्मत्तप्राय होकर सन्यासी के वेष में नगर २ बन २ घूमने लगा ।" सन्यासी का जीवन वृत्तान्त सुनते २ दिलीप के नैत्रों में जल भर आया । उन्होंने सन्यासी के मुख में फिर जल दिया । सन्यासी ने कहा एक दिन रात के समय आंधी पानी आने के अनन्तर मैं नदी के तीर अकेला भ्रमण करता था, देखा कि तीर पर एक स्थान में एक मृत बालक पड़ा हुआ है। मृतक जानकर संकुचित न हुवा, मैंने उसे गोद में लेलिया, देखा तो उसे कुछ कुछ स्वास आता था जीवन का अन्त नहीं हुवा था । उस्से अतिशय आह्लादित हो कर उस क्षण से उसको सज्ञान करने की चेष्टा की । क्रमशः उसमें मै कृतकार्य्य हुवा। बालक को जीवन प्राप्त हुवा। तुम वही बालक दिलीपसिंह हो । जल ।" जलपान करके सन्यासी फिर कहने लगे "जो वस्त्र पहिने हुये तुम जल में निमग्न हुये थे, उसको मैंने यत्न से रख छोड़ा है। तुमारे वंश को सप्रमाण करने में वह काम आवैगा । तदनन्तर तुमको पाकर मुझे फिर संसार के प्रति ममता उत्पन्न हुई मैं उस स्थान से आकर यहां रहता था, आज सदा के लिये जाता हूं ।" सन्यासी इतना कहते २ अत्यंत क्लान्त होगये।

फिर कुछ भी न बोल सके। दिलीप बोले "आप मेरे जन्म दाता न भी हों तौभी मेरे पिता हैं। मैं इस वृत्तान्त के सुनने के पूर्व जैसे आप को अपना पिता जानता था अब भी वैसाही समझूंगा", हर्ष से सन्यासी के चक्षु में जल भर आया, और बोले 'वत्स, मैंने एक अति अन्याय किया है। अपने सुख के निमित्त तुमारे यथार्थ पिता को तुमसे बंचित किया है।" दिलीप बोले 'आप तो मेरे यथार्थ पिता को नहीं जानते थे कि वे कौन हैं?"

सन्यासी—"जानता नहीं था किन्तु जानने का उपाय था, तुमारे कंठ के कवच में तुमारा नाम अंकित था। उसी नाम से तुमारे पिता का अनुसंधान कर सकता था। किन्तु तुमको मुझे किसी को भी देने की इच्छा न थी इसी से नहीं किया। तुमारे पिता को देने से तुम यहां की अपेक्षा अत्यन्त सुखी रहते।" दिलीप बोले "आपने यह किस प्रकार जाना?"

सन्यासी—"तुमारे पिता का कुछ पता एक बेर मैंने पाया था। जल, जल।" दिलीप ने मुख में जल दिया। सन्यासी का इस बार सम्पूर्ण ज्वर छूट गया। उनकी मृत्यु सन्निकट आगयी, वे अब कुछ न कह सके। कष्ट से धीरे२ बोले 'और आओ—निकट"—दिलीप समझ गये और मुख के निकट कान ले गये। सन्यासी ने कष्ट से कहा

स्वर्ण कवच में—तुमारा यथार्थ नाम है ." उनको इसबार ऊर्द्ध स्वास आने लगा। किंचित् जलपान कर फिर बोले तुम —चित्तौर—" सन्यासी का वाक्य बन्द होगया। कण्ठ-श्वास आरम्भ हो गया। जो कहते थे उसको समाप्त न कर सके। उनके नेत्रों से अश्रुजल गिरने लगा। श्वास वेग से चलने लगा। थोड़े ही कालानन्तर उनकी मृत्यु हो गई। दिलीप ने देखा कि मैं मुरदे के निकट बैठा हूं। प्रथम मन में किंचित ह्रास हुवा, कि अकेला किस प्रकार उनका संस्कार करूंगा, उन्हें यही चिन्ता हुई। दिलीप ने सन्यासी के मृतक शरीर को वस्त्र द्वारा भलीभांति छिपा दिया, मुर्दे के दग्ध कर्म के निमित्त एक चिता बनाने की चिन्ता में कुटी के बाहर निकले। पर्वत पर एक योग्य स्थान में चिता की तय्यारी कर वहां ले जाने के निमित्त कुटी में फिर आये, शवको उठाने लगे। अत्यन्त भार बोध हुवा, इस कारण उठा न सके पुनः उठाने की चेष्टा की। बारंबार चेष्टा करके थकित हो रह गये। किसी प्रकार कृतकार्य्य न हुये। अन्त में निराश होकर मृतक के निकट एक शय्या प्रस्तुत कर उसी पर सो रहे। मन के कष्ट से समस्त रात्री निद्रा न आई। प्रातःकाल गंभीर निद्रा आ गई और सो गये। निद्रा भंग होते देखा कि सब वस्तु जहां की तहां पड़ी हैं, उन्होंने उठकर फिर मृतक के उठाने की चेष्टा की

परन्तु इस बार भी पहिले की भांति चेष्टा निष्फल हुई। बिचार किया कि अब सहायता के लिये निकटवर्त्ती ग्रामों में जाना उचित है।

—***—

ग्यारहवां परिच्छेद।

दो पहर का समय है, सूर्य्य के ताप से पथ चलना दुसाध्य हो रहा है। जो लोग कभी नहीं चलते थे, वेही लोग आज सूर्य्य के किरण को तुच्छ करके पंथ में चलते हैं। ऐसी समय में उसी पर्बत के पथ से हो कर कविचन्द्र और उनका सेवक दोनों घोड़े पर सवार दिल्ली को जाते थे धूप से उन लोगों का समस्त शरीर पसीने २ होगया है, देखने ही से जान पड़ता है कि पथ के कष्ट से अत्यन्त थक गये हैं। वे लोग चट्टान पर बैठ श्रान्ति दूर करने के निमित्त घोड़े से उतर पड़े, अनाथ ने देखा कि इसी सुयोग से सन्यासी का दर्शन हो सकता है, बोले "थोड़ही दूर पर एक कुटी हैं, वहां जाने से आप भली भांति विश्राम कर सकते है।" कविचन्द्र ने पूछा 'वह किस ओर है! अनाथ ने जिस ओर बतलाया, उसी ओर चल पड़े कुछ दूर जाने पर कुटी देख पड़ी, तब वे उसी कुटी पर आये। कुटी का द्वार खुला हुवा पाया, घोड़े की बागडोर सेवक के हाथ में

ने कुटी में प्रवेश किया । देखा कि एक मनुष्य कपड़े से ढंका हुवा सो रहा है । उसको कुटी का स्वामी जानकर उससे आश्रयप्रार्थना करने के हेतु उसकी निद्रा भंग करने की चेष्टा की। गृह स्वामी के अज्ञात और उसके बिना अनुमति के कुटी में ठहरना उनको अनुचित बोध हुवा। वे बोले कि "मैं पथिक हूं, आपकी कुटी में क्षणकाल श्रम दूर करने के लिये विश्राम करने आया हूं।"

उनके बात से कुटी के स्वामी की निद्रा भंग न हुई। वे और उच्चःस्वर से बोले, तथापि उसके निद्रा भंग होने का कोई लक्षण नही देखा : फिर बोले "महाशय। एक पथिक श्रान्त होकर आपकी कुटी में विश्राम की प्रार्थना करता है शीघ्र उठिये।" कुछ उत्तर न पाया। उनके स्वर से कुटी गूंज उठी, तौभी कुटी के स्वामी की निद्रा भंग न हुई। उनके स्वर से गृह के स्वामी का एक अंग भी न हिला। पूर्ववत् स्थिर ही रहा। कविचन्द्र मन में कुछ विचारने लगे कि यह कैसी निद्रा है! कहीं चिरकालिक निद्रा तो नहीं? धीरे २ उसके मुख से वस्त्र हटादिया। मुख और नेत्र की चेष्टा देख कर मन मे कहने लगे कि देखो मैं इतने काल तक मृतक के निद्राभंग की चेष्टा करता था। इतनेही में घोड़े को उत्तम स्थान पर बांध अनाथ भी कुटी मे आया। द्वार पर पांव रखतेही चन्द्रपति ने उसको कुटी से बाहर

चलने की आज्ञा दिया, और आप भी बाहर चले आये। उसको आश्चर्य्य हुआ। कविचन्द्र ने बाहर आकर देखा, कि एक युवा पुरुष रोता हुआ उसी कुटी की ओर चला आता है। दिलीप संन्यासी के संस्कार निमित्त सहायता प्रार्थना करने के लिये निकटवर्त्ती ग्रामों में जाते थे। कुछ दूर जाकर पीछे फिर कर देखते क्या हैं कि कुटी के द्वार पर घोड़ा और मनुष्य उपस्थित हैं। कुटी के पास मनुष्य देखने पर फिर ग्राम में जाने का प्रयोजन न देख फिर आये! दिलीप को देख कर अनाथ बोल उठा "यह क्या वही बालक है, अब इतना बड़ा हो गया? यदि इसे यहां न देख कर मैं किसो दूसरे स्थान में देखता तो पहिचान भी न सकता"। दिलीप भी अनाथ को देख कर पहिले न पहिचान सके। निकट आने पर अनाथ ने पूछा संन्यासी कहां है? और उनका शिष्य किधर है?" दिलीप को देख कर कविचन्द्र बोले—"क्या आप ही इस कुटी के स्वामी हैं? यदि हैं तो हम लोगों का अपराध क्षमा कीजियेगा। हम लोग पथिक हैं धूप के ताप से व्याकुल हो कर यहां आये हैं"। दिलीप ने कविचन्द्र के बात पर ध्यान न दिया, अनाथ से बोले "हा! आज वह दिन नहीं है कि जब तुमने हम तीन चार मनुष्यों को एकत्र सुख पूर्व्वक कालयापन करते देखा था—अब वह दिन नहीं है,

पिता जी के शिष्य उस कन्या को लेकर बहुत दिन हुये कि इस कुटी से चले गये। कल पिता जी ने भी स्वर्गलोक की यात्रा की। अब अकेले हम्हीं इस कुटी में हैं। इस समय हमारी कुटी शून्य है। यही कहते२ उनका पुराना शोक नवीन हो आया, दोनों नेत्र जल से परिपूर्ण हो गये। कुछ काल बातचीत करने पर वे तीनों मनुष्य संन्यासी को कंधे पर लेकर दाहकर्म्म करने के निमित्त ले गये। क्रिया समाप्त कर फिर आये और कुटी में विश्राम किया। युवा के सम्बन्ध में कविचन्द्र के मन में कितनी बातें उपजने लगीं। वे विचारने लगे कि ऐसा सुन्दर पुरुष राजभवन में न रह कर कुटीस्वामी क्यों हैं? यह अवश्य किसी भद्र-कुलोत्पन्न होंगे, यहां छद्म बेष में हैं। मैं अपरिचित हूं, विशेष मित्रत्व न होने से परिचय पाने की सम्भावना नहीं है तो फिर पूछने में क्या हानि है? कविचन्द्र अपनी चेष्टा छिपा न सके बोले "आप को देखने से बोध होता है कि आप दूसरे बेष में हैं। यह स्थान यथार्थ आप का निवास-स्थान नहीं है आप कितने दिनों से यहां बास करते हैं?"

दिलीप—"मैं बाल्यावस्था से यहीं रहता हूं"।

चन्द्र०—"तो क्या आपका जन्म इसी स्थान पर हुआ था?"

दिलीप—"जी नहीं मेरा जन्म तो यहां नहीं हुआ

था, किन्तु मैं यह भी नहीं जानता कि मेरा जन्मस्थान कहां है"।

चन्द्र—"क्यों अपने पिता सन्यासी से आपने कुछ सुना नहीं ?"।

दिलीप—"जी उनके मुख से जो सुना उससे मालूम हुवा कि वे मेरे पिता न थे। असहाय अवस्था में मुझको पाया यहां लाकर सन्तानतुल्य मेरा पालन किया इससे अधिक और कुछ मैंने नहीं समझा।" कबिचन्द्र आश्चर्य्य से बोले "तो सन्यासी आप के यथार्थ पिता नहीं थे ?"।

दिलीप—"जी नहीं ?"

चन्द्र—"तो आप के यथार्थ पिता कौन हैं ?"

दिलीप—"इसको तो मैं नहीं जानता और जानने का कोई उपाय भी नहीं है। पिता मृत्यु की समय कहने लगे थे किन्तु जीवन शेष होने के कारण मुझ से और कुछ न कह सके।" दिलीप के बात चीत से कबिचन्द्र को उनके अधिक परिचय की आशा मालूम न हुई। कुछ देर उपरान्त कबि चन्द्र बोले "सन्यासी के मृत्यु होजाने से आप यहां अकेले पड़ गये ?" दिलीप ने कहा "जी हां"।

चन्द्र—यद्यपि कहते हुये मुझे संकोच मालूम होता है किन्तु कहता हूं कि यदि और कोई यहां नहीं रहता तो फिर आप किसके हेतु रहेंगे ?" दिलीप ने कहा "इसे

तो मैंने भी कईबेर बिचार किया है, किन्तु कहां जाऊं? कबि चन्द्र सहर्ष बोले "यदि आपकी इच्छा हो, तो मैं अपने संग दिल्ली ले चलूं" युवा उनसे सम्मत होकर बोले "वहां जाकर क्या करना होगा?"

चन्द्र—"आप की जो इच्छा होगी कीजियेगा। यदि युद्ध कर सकैं तो आगामि युद्ध में सेनापति हो सकते हैं।" युवा आगामि युद्ध के व्यापार से कुछ भी अभिज्ञ न थे। कैसे जानते? इसे जानने की इच्छा प्रकाश करने पर कबि चन्द्र ने सबिस्तर कह सुनाया। युवा ने समग्र वृत्तान्त सुन कहा "मैंने अस्त्र शिक्षा तो नहीं पाया है किन्तु अस्त्र धारण करने जानता हूं। जितना जानता हूं उस से तो युद्ध में भय नहीं है।" कबिचन्द्र के संग दिलीप का दिल्ली गमन करना स्थिर होगया। थोड़े देर पर कबिचन्द्र ने पूछा कि आप का नाम क्या है? जन्म का परिचय नहीं पाने से इसको पूछने में भी भूल होती थी।

दिलीप ने उतर दिया—'दिलीपसिंह' सुनतेही कबिचन्द्र को आश्चर्य्य हुआ। मन में बिचारने लगे "यह क्या वही दिलीप सिंह है!" उनका नाम सुनकर जो कबिचन्द्र को आश्चर्य्य हुआ इसका कारण दिलीप ने पूछा किन्तु कबिचन्द्र ने उस समय उत्तर न दिया. कुछ सोंचकर बोले "क्या आपलोगों के इस कुटीमें कोई बालिका अपने पिता के संग बास करती थी।

धन्यवाद।

पाठक महाशयो—आपलोगों को कदाचित्
और देख कर आश्चर्य होगा कि यह अपूर्व ललि
जिसे अब आप पढ़ेंगे बंगभाषा में एक स्त्री
लिखा है। हमारे बंगदेश के भूषण बाबू देवे
ठाकुर की पुत्री श्रीमती स्वर्णकुमारी देवी इस ग्र
रचनेवाली हैं। बंगभाषा की मधुरता तो जगत्प्र
है हम क्या कहें, फिर यह एक रमणीकुलभूषण
लेख ठहरा, इसी से वह सोना और सुगन्ध हो रहा
श्रीमती स्वर्णकुमारी देवी ने कभी किसी स्कूल में न
कभी किसी समाज में शिक्षित न हुईं तिस प
का ऐसा स्वच्छ और चमत्कृत लेख है कि कि
विज्ञ से भी होना दुर्घट है। कहां हैं वे लोग,
फिरते हैं कि हिन्दू अबलाओं में सब मूर्खा हैं
गप्पी जो कहते हैं कि पर्दा System उठा कर
स्वतंत्र भाव से विचरण करने दो क्योंकि
हृदय का विकाश नहीं हो सकता। आवें
ने, और अपनी आखें खोल कर देखें कि जि

भी वह विद्या सीख सकती है कि जिस के
ड़े २ यूनिवर्सिटी उपाधि धारियों को लज्जित
ड़ता है। क्यों न हो यह वही रमणीकुल है जिस
सावित्री, अरुन्धती इत्यादि अनेक धर्म्मधुरन्धरा
दुषी हो चुकी हैं। आज दिन श्रीमती स्वर्णकुमा-
धारे भारतभूमि और रमणीकुल की गौरव-
। हम अत्यन्त अनुगृहीत हृदय से उन्हें धन्य-
हैं कि उन्हों ने इस ग्रन्थ को बंग भाषा से
भाषा में अनुवाद करने की आज्ञा देकर हमे
बाधित किया। आशा है कि हमारे हिन्दी के
गण भी उनके इस उदारहृदयता के लिये उन्हें
द देंगे॥

म इतना कहे बिना नहीं रह सकते कि
गी मित्र बाबू जोगेन्द्रनाथराय वकील ने इस
बाद करने में हमे अच्छी सहायता दी है
हम उनके कृतज्ञ हैं।

अनुवादक
उदितनारायण वर्म्मा
गाजीपुर।

दिलीप व्यग्रहोकर बोले "हां, कुछ दिवस तक वे लोग इसी स्थान में थे, इसको आपने किस प्रकार जाना क्या आप उन लोगों का कोई सम्बाद जानते हैं ? वह बालिका क्या हुई? बाल्यावस्था में हमलोग एकत्र खेला करते थे।

चन्द्र—"बालिका के पिता तो युद्ध में मारे गये।"

दिलीप—तो क्या वह भी मेरेही भांति पितृहीना हो गयी ? अब उसकी क्या दशा है ?"

चन्द्र—"वह स्वच्छन्द है, उसे कोई कष्ट नहीं।"

दिलीप इस बात से संतुष्ट न होकर पूछने लगे "वह अब कहां है ?"

चन्द्र—"अजमेर में।"

दिलीप—"अजमेर में किस के निकट ?"

चन्द्र—"अजमेर के एक भद्र पुरुष ने उसको अनाथिनी देखकर अपने निकट रख छोड़ा है।" दिलीप यह बात सुन चिहुंक उठे। फिर पूछने लगे "क्या उसका विवाह हो गया ?" कविचन्द्र उनके मन का भाव समझ गये और उनके परीक्षार्थ बोले "नहीं उसका विवाह तो अभी नहीं हुवा, किन्तु उसका आश्रयदाता उसके विवाह करने में उद्यत है।" इस बात के सुनतेही दिलीप का मुंख सूख गया। उन्होंने इतने दिवस पर स्पष्टरूप से अपने

मनका भाव समझा । उनको चुप देख कबिचन्द्र ने पूछा "क्यों, उसके विवाह होने से क्या आप असुखी हुये"? दिलीप मन का भाव गोपन कर बोले "आप के मन में ऐसा क्यों बिचार हुआ?"

चन्द्र—"मेरे मन में इससे सम्भव हुवा कि बाल्यावस्था से एकत्र रहने के कारण प्रीति विशेष हो गई होगी, तो इसमें आश्चर्य क्या है?"

दिलीप कुछ लज्जित होकर बोले "यदि आप की बात सत्य है तो प्रीतही होने से क्या हुवा? इतने दिन में जों उसका विवाह होगया है, तो वह पर स्त्री है, अब उसके प्रति अनुराग अधर्म्म है"

चन्द्र—"उसके आश्रयदाता के संग उसके विवह की स्थिरता अभी नहीं है। अज्ञातकुलशीला समझ कर उस के संग बिबाह करने की सम्मति उसके गुरुजनों की नहीं है।"

युवा—"इसके होने से क्या होता है, शैलवाला का तो मत है? वही होना यथेष्ट है।"

चन्द्र—"नहीं, उसकी इच्छा नहीं है" इस बात को सुनकर युवा बहुत ही सुखी हुये। किन्तु कबिचन्द्र ने उस बात को छेड़ने न दिया बोले "तो आप मेरे संग चलेंगे?"

दिलीप—"जी हां चलूंगा।"

चन्द्र—"तो संग में क्या २ लेंगे ? जो लेना हो ले लीलिये. मेरी श्रान्ति दूर हो गई।" दिलीप ने सन्यासी के कहने के अनुसार अपना जलमें का डूबाहुआ वस्त्र निकाल कर बांध लिया और बोले कि "जो लेना था सो ले लिया और तो इहां लेने के योग्य कोई वस्तु नहीं देखता। एक और प्रिय वस्तु मेरी है, उसको भी कुटी से बाहर चलकर संग ले लूंगा।"

कबिचन्द्र बोले—"वह क्या ?"

दिलीप—"भीम"

चन्द्र—"भीम कौन ?"

दिलीप हंसकर बोले "मेरा घोड़ा।"

उसी दिन रात को वे दोनों आदमी और सेवक, पर्वत के नीचे आकर एक पन्थशाला में सो रहे। दूसरे दिन प्रातःकाल कविचन्द्र ने दिलीप से कहा "मैंने दिल्ली जाने का विचार त्याग कर दिया। कल रात को मैंने यह संकल्प किया है कि यहां से गुप्त वेश में जाकर यवन शिविर (छावनी) का पता लूं, कि उन सभों कीक्या अवस्था है, तदपश्चात दिल्ली जाऊंगा। इस में मुझे कुछ दिन बिलम्ब होगा। तुम दिल्ली चले जाओ। यह सुनकर कि तुम कबिचन्द्र के निकट से आते हो पृथ्वीराज तुमे आदर से ग्रहण करेंगे, बरं एक पत्र उनके नाम का लिख कर तुम्हे देता हूं।"

यह कह उन्होंने एक पत्र उनको देकर बिदा किया और अनाथ को भी अपनी इच्छा यवन शिविर में जाने की प्रगट कर अजमेर को फेर दिया।

तीनों आदमियों ने तीन पंथ की यात्रा की।

—❀❀❀—

बारहवां परिच्छेद।

शतद्रू नदी के तीर यवन शिविर पड़ा है। महम्मद गोरी के चारो ओर सभासदलोग बैठे हैं और यह विचार कर रहे हैं कि दिल्ली का आक्रमण किस प्रकार करना होगा।

बेला ढल गई है, अस्ताचल के जानेवाले सूर्य्य देव, तीक्ष्ण कान्ति को बदल निस्तेज स्वर्णमय किरण को बितरण कर रहे हैं। वायु भी अधिक उष्ण नहीं है, क्रमशः शीतल होती जाती है। इस समय श्रान्त क्लान्त मनुष्य-गण अधीरहृदय होकर ग्रीष्म के सन्ध्या काल की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

उन लोगों के परामर्श स्थिर होने पर महम्मदगोरी ने कहा "जो तर्कीब या बंदिश बांधी गई है उससे समझ पड़ता है कि इस मर्तब: हम लोग जरूर फ़तहयाब होंगे आखिरी मर्तब: के जंग से बखूबी ज़ाहिर होगया है कि बामुकाबिल और बाईमान की लड़ाई में इन हिन्दुओं को

शिकस्त देना हर्गिज़ आसान नहीं है, बल्कि जो बंदिश हमलोगों ने बांधी है उस्से इस मर्तब: फतहयाबी की उम्मेद पाई जाती है' सभासद्वर्ग सबके सब महम्मदगोरी के संग एक मत होकर बोल उठे "जी हां हुजूर बजा फर्मांते हैं, हुजूर की बंदिश से बेशक जंग में फतहयाबी होगी" महम्मदगोरी ने कहा "हिन्दू लोग जैसे और इल्म के उस्ताद हैं रियाजी और नजूम वगैरह में वैसी ही महारत और कमाल रखते हैं, वैसेही दुनियवी कारखानों में अकसर निहायत बेवक़ूफ़ देखे जाते हैं। वे मुतलक नहीं जानते कि दगाबाज़ी करने और मौके पर झूठ बोलने से क्या २ फायदे हासिल होते हैं, यहां तक कि अगर उनके जान पर भी नौबत आ जावे तौभी वे झूठ नहीं बोलते खैर इसे तो दर्किनार कीजिये यह बेवकूफी देखिये कि जंग में भी वे सब बाईमान लड़ते हैं, बजुज दगाबाज़ी के अगर कोई शख्स बाईमान लड़ना चाहे तो हर्गिज़ उन पर फतहयाबी हासिल नहीं कर सकता, देखो हजरत सिकन्दर शाह, भी पारस वगैरह मुल्कों को फतह करने पर भी हिंदुओं के राजा पुरु के साथ बाईमान लड़ने की हिम्मत न कर सके। उन्होंने भी लाचार होकर इन्हें साथ दगाबाजी के शिकस्त दी थी, और अगर हम भी फतह पा सकते हैं तो सिर्फ इसी दगाबाजी और बन्दिश की मददसे

सभासद बोले "वल्लाह जाने ताअज्जुब है कि ये बेवकूफ़ हिन्दू लोग जंग के मैदान में भी ईमान की दुम बांधे फिरते हैं। तब तो बेशक फतहयाबी हमे हासिल होगी। हमलोग उनके जैसे बेवकूफ नहीं हैं इसलिये हमलोगोंको खुदा का शुक्रगुज़ार होना मुनासिब है।" महम्मद गोरी ने कहा हमलोगों के साबिक बादशा हो जो बहर के पार हो फकत पचासही बर्ष के अन्दर पश्चिम देश में भी ५० वर्ष के अपना कब्जा कायम कर लिया और क़ुरान शरीफ का सादिक मजहब फैलाया था, पस अगर वे इन बहादुर हिन्दुओं से तीन सौ बरस भी बाईमान जंग करते रहते तो कोई भी बंदिश या उस्तादी हिन्दुस्तान की फतहयाबी में काम न आती, कुछ यह नहीं कि आखिरी मर्तबः फकत हम्ही लोगों ने शिकस्त पाई, नहीं हां हिन्दुओं से जंग शुरू होने के पेश्तर तब से लेकर इतने रोज़ तक फिर कभी हम लोग उन्हें शिकश्त न देसके। इसी लिये कहता हूं कि इन ईमानदार और बेवकूफ हिन्दुओं के मानिन्द हम लोगों को जंग में शिकस्त देना कोई आसान बात नहीं है। बावजूद कि हिन्दू लोग दूसरे बातों में हम से ज्यादातर अक़्लमन्द हैं ताहम हम लोगों की चालाकी को वे हर्गिज़ नहीं पा सकते वे लोग ईमान के इसकदर पाबन्द हैं कि हम लोगों के दगाबाज़ी के साथ

लड़ने पर वे सब हर्गिज ईमान् न छोड़ेंगे इस लिये बहुत ज्यादा मुमकिन है कि इस मर्तबः हम्हीं लोग फतह याब हों। इन्हीं सब आशायों से इसबार हमलोग यहां आये हैं।

इतने में एक प्रहरी ने आकर महम्मदगोरी को सलाम किया और कहने लगा "गरीबपर्वर एक हिन्दु आया है और हुजूर से मुलाकात की अर्ज़ करता हैं हम लोगों ने उसे गोइन्दा समझ कर गिरफ़ार कर लिया।"

महम्मद—"अगर वह गोइन्दा है तो उसे कैद कर रक्खो यहां लाने की कोई ज़रूरत नहीं है।"

प्रहरी—"कैदी कहता है कि मैं गोइन्दा नहीं हूं"

महम्मद—'अगर वह दरहीकत गोइन्दा है तो बतलावेगा क्यों ? फिर चाहे वह गोइन्दा हो या नहो, हमलोगों को अपने मतलब निकालने के लिये हिन्दू की शकल को गिरफ़ार करना ज़ुरुरी है। तुम जाव, उसे नज़रबन्द कर रक्खो।"

इस आज्ञा के सुन्ने पर भी जब प्रहरी न गया तो महम्मद गोरी ने पूछा "और क्या बात ?" प्रहरी ने कहा "कैदी कहता है कि मुझे गिरफ़ार करने से आप लोगों की भलाई की हर्गिज उम्मेद नहीं है।'

महम्मद ग़ोरी ने क्रोध से कहा "क्या। उसके खौफ़

से हम लोग अपनी कारगुज़ारी से बाज़ आयेंगे ? उसे कैद करने से हमारा क्या नुकसान होगा ?"

प्रहरी—"वह कहता है कि आप लोगों को जंग में फतहयाबी हासिल न होगी।"

महम्मद—"जंग से उस्से क्या रिश्ता है ?"

प्रहरी—"वह कहता है कि आप लोगों को जंग में फतहयाबी दिला सकता हूं '

महम्मद गोरी ने पूछा—"क्योंकर।"

प्रहरी—"यह तो उसने नहीं बतलाया कहता था कि हूजूर के रूबरू बयान करूंगा जो कुछ उसने कहा है वह भी बड़े मुश्किलों से सो भी तब, कि जब बखूबी देख लिये कि बगैर बतलाये वह हुजूर को कदम्बो सी हासिल नहीं कर सकता ?"

महम्मद गोरी ने क्षणकाल लों बिचारकर उसे सन्मुख लाने की आज्ञा दी। प्रहरी उस हिन्दू को संग लेकर उनके निकट आया। बोध होता है कि इस हिन्दू को जो बिजय के भिन्न दूसरा कोई नहीं है सब पहिले से जानते थे। महम्मदगोरी ने बिजय को बैठने के लिये कह कर पूछा 'आप का आना यहां किस गर्ज़ से हुआ ?'

बिजय—"आप का उपकार करने आया हूं।"

महम्मद—"आप हिन्दू होकर हम मुसल्मान

लोगों को फायदा पहुंचाने आये हैं यह क्योंकर मुम्किन होसकता है ? आप उपकार किसे कहते हैं कहिये ?"

बिजय—"आप जानते हैं कि दिल्ली को जय करना आपकी दुराशा मात्र है ? गत बार दैवसंयोग से बँच गये, इस बार उसको नहीं पा सकते, वहां जाने पर फिर रक्षा पाना सम्भव नही है।"

महम्मद—"इसको तो हमलोग मंजूर करही कर आये हैं। क्या हम लोगों को खौफ़ दिखलाने के लिये आप यहां आये हैं ?"

बिजय—"जी नहीं जो उस बिपद से आपका उद्धार करसकता है उसे मैं जानता हूं, उसीको कहने आया हूं।"

महम्मद—"वह कौन है ?"

बिजय—"हम।"

महम्मद—"आप ! तो आप कौन है ?" बिजय इस बात से चिन्तित हुये उनको परिचय देने की इच्छा न थी। वे बोले "मुझे जानकर आप क्या करेंगे?। मैं कोई होऊं मेरी सहायता से आप जय लाभ कर सकते हैं।"

महम्मद—"बगैर वा कफ़ीयत हासिल हुये मैं क्यों कर जानूं कि आप में किस कदर ताकत है ? अगर आपही प्रर फतहयाबी या शिकस्त मुकद्दम है तो बगैर पेश्तर शिनाख़ हासिल हुये हम लोग हर्गिज़ आप पर

एतकाद नहीं कर सकते।" विजय ने देखा कि परिचय न देने निस्तार नहीं है, तथापि महम्मद गोरी क्या कहते हैं, यह देखने के निमित्त बोले "किन्तु यदि मैं परिजय न दूं?"

महम्मद—"तो आप हम लोगों के कैदी हैं." विजय का मुखरक्त वर्ण हो गया। क्रोध में आत्म विस्मृत हो सगर्व्व बोले तो मुझे आप जानाही चाहते हैं? मैं दिल्लीश्वर का मंत्रीपुत्र विजय सिंह हूं।" परिचय सुनतेही एक सभासद बोल उठा "ठीक ठीक, वजीर के फर्ज़न्द विजय सिंह येही हुई हैं, मैं इन्हें पहिचानता हूं। जब मैं एलची होकर दिल्ली के दर्बार में गया था, तभी से इनको पहिचानता हूं, मैं पहिचानता तो था मगर नाम अबतक याद न आता था। अब उनकी बातें याद होती हैं." सभासद के कहने से यह प्रमाणित हुआ कि विजय यथार्थ मंत्रीपुत्र हैं। महम्मद गोरी ने भी समझ लिया, कि इसकी सहायता से हम लोगों को जयलाभ की सम्भावना है, इसलिये उन्होंने विजय को संतुष्ट करने की चेष्टा की, स्वभावतः दुर्व्वल के ऊपर प्रभुत्व दिखाने और अनुग्रहप्रार्थी लोगों के प्रति निर्दय व्यवहार करने में यवन लोग जैसे चतुर हैं, फिर वैसही वे लोग क्षमतापन्न मनुष्य के निकट नम्र होने कर स्वार्थसाधन के निमित्त

अति सामान्य व्यक्ति को भी संतुष्ट करने में इतने निपुण हैं कि जिस्से भारतबर्ष के समस्त जाति को ऐसे कौशल में उन लोगों के निकट पराजय मानना चाहिये।

जब यह देखा कि बिजय से उपकार होगा, तो महम्मद गोरी गर्व्वित स्वर छोड़ बिनीत स्वर से बोले "मुआफ़ कीजियेगा मैंने फ़क़त आपकी वाक़फ़ीयत हासिल करने के लिये इस सख़्त कलामों का इस्तियामाल किया था। मैं समझता हूं कि आप हर्गिज़ क़ैद होने से खौफ़ नहीं खाते" बिजय इस बात से मन ही मन हँसे। अब चतुरों से चतुरता। किन्तु बिजयसिंह महम्मद गोरी की कपटता समझ कर भी उनके बिनीतस्वर से संतुष्ट हो गये। किसी प्रकार हो, महम्मदगोरी का जय हुवा। बिजय ने समझा, कि महम्मदगोरी धोखे में आये। महम्मद ने कहा 'अच्छा कहिये आप हमलोगों की मदद क्योंकर कर सकते हैं?"

बिजय—"आप को बोध है, बिचारते नहीं, कि एक विधर्म्मी मनुष्य स्वार्थशून्य होकर आप के मंगल की चेष्टा से यहां आया है?

महम्मद—"नहीं, यह बात दिल में नहीं आती। अगर हमलोगों का फ़ायदा करके आप भी कुछ मुआवज़े की उम्मेद करें, तो मैं समझूं।"

बिजय—"अच्छा तो कहिये यदि आप लोगों को युद्ध में जय लाभ हो तो मैं क्या आशा रक्खूं ?"

महम्मद—"आपही कहिये आप क्या चाहते हैं ?"

बिजय—"सिंहासन ।"

महम्मद—"तो फिर हम लोगों को जंग से क्या फायदा होगा ? क्या आप ख्याल करते हैं कि बहुत से लोगों का खून बहानाही हम लोगों की मुराद है ?"

बिजय—"जी नहीं, प्रथम तो आप लोग युद्ध में जय लाभ करने से पूर्व्व अपमान का बदला दे सकेंगे फिर अनेक ऐश्वर्य्य लेकर अपने देश को पधारेंगे और मेरी सहायता न होने से उसकी कोई आशा आपको नहीं है ।" महम्मद गोरी ने हँस कर कहा "इस मर्तबः हम लोग हिन्दुओं के फौज की बनिस्बत किस कदर ज्यादा फ़ौज लाये है क्या आप नहीं, जानते ? और फिर भी ऐसा कहते हैं ? इतनी फौज़ पर भी बगैर आप के मदद हम जंग में फतहयाबी हासिल न कर सकें यह बात काबिल एतकाद नहीं है ।"

बिजय०—"आप लोगों के पास सहस्रगुण अधिक सेना रहने पर भी मेरी सहायता बिना आपकी जयलाभ की सम्भावना नहीं है । यदि आप मेरी सहायता नहीं लेना चाहते, तो मैं जाता हूं" । यह कह बिजय-

सिंह उठ खड़े हुये। महम्मद ग़ोरी ने कहा "ख़ैर फ़र्ज़ किया कि आप का कहना सच है और अगर हम लोग भी आप से मदद लेने में तयार हों तो क्या तख़ के सिवाय और किसी तौर आप राजी नहीं हो सकते ?"

विजयसिंह ने कहा "नहीं"। सुनतेही महम्मद ग़ोरी का मुख आरक्त हो गया, ललाट और भौंह टेढ़े हो गये, देखा कि नितान्त नरम होने से यहां काम न चलेगा, बोले, "मगर जब आपकी ख़ाहिश पूरी करने में हमलोग राजी न होंगे तो शायद आप की मदद हम्हीं लोगों को करना हो क्योंकि इस वक़ आप हमलोगों के हाथ हैं कुछ हमलोग आप के कब्ज़े में नहीं। अगर आप हमारी मदद नहीं करते तो हम पृथ्वीराज के पास कहला भेजेंगे कि आप हमारी मदद करने आये थे उस हालत में फिर आप अपने मुलक में न जा सकियेगा। अब भी बगैरा ख्याल कर देखिये कि बगैर हमलोगों की मदद किये और किसी तौर आप रिहाई नहीं पासकते।' विजय ने देखा कि सच मुच मैं इनलोगों केहाथ पड़ा हूं, दूसरे की हानि करने चले आपही फन्दे में आ फँसे। क्रोध हिंसा और लोभ के बशीभूत होकर यहां से आगे चलने का ज्ञान न रहा। यदि महम्मदगोरी को हमारा परिचय प्राप्त न हुआ होता तो कुछ साहस भी रहता, अब वह

भी नहीं है। इसके प्रस्ताव से सम्मत न होने पर यह हमारी सब बातें पृथ्वीराज के निकट प्रकाश कर देगा जिस भय से मुझे परिचय देने की इच्छा न थी वही बात आगे आई। तब विजयसिंह ने महा संकट में पड़ कर कहा "अस्तु यह तो नहीं होगा मैं जाता हूं; आप लोगों से तो कुछ भी लाभ की आशा नहीं पाई जाती।'

महम्मदगोरी ने जब देखा कि विजयसिंह किसी प्रकार सम्मत नहीं होते तो कहने लगा "यह तो सच है खैर आप राजा होंगे। अब कहिये कि आप क्योंकर और क्या मदद हमलोगों की कर सकते हैं" ?

विजय। "मैं युद्ध की समय सैन्यदल में रहकर किसी प्रकार उन लोगों को युद्ध से विरत रक्खूंगा, आप उसी सुअवसर में जयलाभ कर सकेंगे।"

महम्मद—"यह तरकीब तो उम्दा नहीं।"

विजय। "तो मैं उपाय स्थिर करके आज से पन्दरह दिन के उपरान्त आप को सूचित करूंगा। इस समय आप के बात का विश्वास क्या ?"

महम्मद—"मैं मंजूर करता हूं"। विजय ने मनमें बिचारा कि "मुसलमान लोग—और मंजूर! किन्तु यहां आने से इन लोगों के हाथ में पड़ा हूं। इस समय इन लोगों की बात पर अविश्वास देखाना युक्ति सिद्ध नहीं

है। ऐसा कर यदि ये लोग मेरा अभिप्राय महाराज के निकट प्रकाश करेंगे तो मैं दोनों ओर से मारा जाऊंगा यह समझ कर विजय ने पूछा तो आपने "अङ्गीकार किया? महम्मदगोरी ने कहा "हां मंजूर है अगर जंग में फतहयाबी हासिल होगी तो आप बेशक आइन्द के लिये राजा होंगे लेकिन अगर आप इस काम में गफलत करेंगे या धोखा देंगे तो मैं बेशक आप को सजा दूंगा और आप की यह धोखेबाजी राजा के रूबरू जाहिर करूंगा। महम्मदगोरी इतना कह कर मनमें बिचारने लगे "कि जब इसने अपने राजा से दगाबाजी की तो मौका पाने पर हमलोगों के साथ भी वैसाही करेहीगा इसलिये इसका एतबार नहीं। फतहयाबी हासिल होने पर राजा होने का ईनाम चाहता है पर यह नहीं समझता कि इसकी जां बख्शीही इसके लिये सबसे भारी ईनाम है, क्या इससे भी बढ़कर कुछ उमेद रखता है।।

विजयसिंह बोले "मैं इस समय राजपुताने से हो कर दिल्ली जाता हूं। आज से पन्द्रह दिवसोपरान्त रात्रि समय दिल्ली के पर्बत पर आप के आदमियों की प्रतीक्षा करूंगा। जो उपाय स्थिर होगा उसे उन्हीं मनुष्यों के द्वारा आप के पास कहला भेजूंगा। क्रमशः आप लोग आगे बढ़ते चलें।"

महम्मदगोरी। "तो क्या राजपुताने के तमाम राजा मदद के लिये आवेंगे ?"

बिजय। "इस समय तो उन लोगों ने लिखा है कि हम आवेंगे, किन्तु बातों से मैंने उन लोगों पर ऐसा भाव प्रगट किया है कि उन लोगों के सहायता का हमे कुछ प्रयोजन नहीं है, परन्तु जितना अधिक सैन्यसंग्रह किया जाय उतनाही उत्तम है, इसीलिये हमलोगों ने आप से साहायता की याचना की है। मेरे इन बातों का जब उन लोगों के मनमें दृढ़ बिश्वास हो गाया तो फिर वे लोग अपना देश त्याग कर वृथा दिल्ली क्यों आवेंगे! आप यदि मेरे प्रस्ताव से सम्मत न होते, तो जैसे वे लोग दिल्ली आते वैसे उन्हें लाने के लिये यत्न करता और पुनः मुझे जाना पड़ता, किन्तु मैं जानता था कि आप मेरी बात से सम्मत होजांयगे, इसी कारण मैं वैसाही प्रबन्ध कर आया हूं।"

मह। "तो क्या सबके सब आया चाहते थे ?"

बिजय। 'जी हां, किन्तु जयचन्द्र और पननराज तो आवेंगे नहीं, और उनलोगों से तो हम लोगों ने सहायता भी नहीं चाहा।'

महम्मद—"जयचन्द्र ने तो हमें कहला भेजा है, कि ऐसा ही करना चाहिये जिसमें पृथ्वीराज की इज्ज़त में

फर्क आवे और पोशीदा तौर से वे भी हमारी मदद करने को तयार हैं।"

विजय—"हां, वे महाराज के शत्रु हैं, इसे हमलोग जानते हैं।" इतना कह विजयसिंह वहां से बिदा होकर चलते हुये।

मन्त्रीवर! देखो, तुमने जिसे अधिक विश्वास पात्र समझा था, उसने कैसे विश्वास घात का कार्य्य किया!

बिजय के चले जाने पर एक सभासद बोला "आप इसे यहां की बादशाहत दिया चाहते हैं, अगर दरहकीकत ऐसा ही हुआ तो फिर हम लोगों को दिल्ली फतह करने से क्या फायदा होगा?'

महम्मदगोरी ने कहा "औव्वल उसकी मदद से हम लोगों को फतहयाबी तो हासिल करने दो, पादशाहत देने की बात तो इसके पीछे न है? इस वक्त वह अपने खातिरखाह समझ लेवे।"

इधर, कबिचन्द्र यवनशिविर के निकट एक छोटे पर्व्वत पर से शिविर की अवस्था देखते थे। हठात् हिन्दू बेशधारी एक मनुष्य को यवनशिबिर में प्रवेश करते देख उनको अत्यन्त आश्चर्य्य हुवा कि यह कौन है? और किस हेतु आया है? यह जानने के निमित्त वे अत्यन्त उत्सुक हुये और शिविर के निकट में गोप्य भाव से दे

खने के लिये कोई स्थान है कि नहीं ढूढने लगे, देखा कि शिविर के पीछे एक बहुत बड़ा बरगद का वृक्ष है। वे धीरे २ पर्व्वत से उतर अनेक कौशल और अतिसाव-धानी से प्रहरी लोगों के हाथ से बँचकर उसी बटवृक्ष पर जाचढ़े। जब उन्होंने विजय को यवनशिविर में प्रवेश करते देखा था, उस समय भी सूर्य्य की थोड़ी ज्योति रही किन्तु उनके उतरते २ सन्ध्या हो गई। अ-न्धकार के कारण छिपकर बटवृक्ष पर चढ़ने में उन्हें और भी सुबिधा हुवा। बटवृक्ष को जो शाखा शिविर को स्पर्श करती थी उस पर चढ़कर अपने तलवार के अग्र-भाग से उन्हों ने तम्बू के बस्त्र में एक छोटासा छेद कर दिया और उसमें एक चक्षू लगाकर उन्होंने तम्बू के सक-ल मध्यस्थ लोगों को देखा। मन्त्रीपुत्र को देखकर वे अत्यन्त बिस्मित हुये और सोचने लगे कि बिजय यहां क्यों आया। बिदा होने के पूर्व महम्मद गोरी के संग बिजय की जो जो बातें हुईं, उन्होंने केवल उतनाही सुन पाया। किन्तु जो सुना उसी से उसका अभिप्राय समझ गये। क्रोध से उनका प्रत्येक अंग कांपने लगा। इच्छा किया कि शिविर में जाकर अभी उसका मस्तक छेदन करूं किन्तु यह बिचार कर कि इसका फल बिपरीत होगा इस इच्छा को त्याग दिया और वृक्ष से उतरने

लगी मनके चंचलता से चढ़ने की भांति निःशब्द न उतर सके। एक डाल मरमरा गई और कुछ पत्ते खड़क उठे। दैवात् चढ़ने के समय जिस प्रकार प्रहरियों की आंख बचा कर गये थे, वैसा न हुआ। धूर्त्त यवनों के हाथ और कौशल से बारम्बार बच जाना सहज नहीं है। शब्द सुनकर एक प्रहरी वृक्ष के निकट चला आया कि यह कैसा शब्द हुवा। चन्द्रपति के दुर्भाग्य वश उसीसमय कुछ चान्दनी भी निकल आई। प्रकाश के कारण प्रहरी ने उन्हें देख लिया, और चिल्लता हुआ उनकी पीछेर दौड़ा। उसकी चिल्लाहट सुनकर अस्त्र शस्त्र ले शीघ्रही सेना के अनेक लोग उसके संग हो गये इतने मनुष्यों के हाथ से भागना असंभव बोधकर चन्द्रपति ने तलवार म्यान से न निकाला किन्तु सोचा कि "यदि इस समय मैं उन लोगों के मारने की इच्छा प्रगट करता हूं तो ये सब मुझे मार डालेंगे और मेरे मृत्यु होने से विजय की कु-मन्त्रणा प्रगट न होगी किन्तु बन्दी होने पर चातुरी कर भाग सकता और पृथ्वीराज से सब समाचार सविस्तर कह सकता हूं, अतएव इस समय तलवार निकालना कदापि बुद्धिसंगत न होगा।"

उन लोगों ने चन्द्रपति को पकड़ लिया और महम्मद गोरी के निकट ले आये। द्वार पर विनय से सा-

ज्ञात हुवा। उसे सन्मुख देख उनका क्रोध उबल पड़ा। हिताहित की बिवेचना जाती रही, लाल २ नेत्र कर बोले "अरे पाखण्ड ! तू राज्यलोभ से देश के अनिष्टाचरण में प्रवृत्त हुवा है ! इसका फल तुझे थोड़ेही काल में प्राप्त होगा।" इतना कह कमर से तलवार खींचने को हाथ बढ़ाया किन्तु प्रहरी लोगों ने तुर्त्त उन्हें धक्का देकर कमर से तलवार ले लिया।

कबिचन्द्र ने बिजय की मन्त्रणा सुन ली थी, यदि उसे प्रगट न करते तो बिजय द्वारा महम्मद गोरी के हाथ से छूट सकते किन्तु वह पथ भी उन्होंने बन्द कर दिया। बिजय ने समझा कि कबिचन्द्र ने सब बात सुन ली है। यवन शिविर में आने का मिथ्या कारण प्रगट कर उन्हें भुलवा न सके। कबिचन्द्र के मुक्त होने से उन की फिर रक्षा नहीं है। बिजय अत्यन्त चिन्तित होकर फिर महम्मद गोरी के पास गये। और उन लोगों में छिपे २ कुछ बात चीत हुई इसपर कबिचन्द्र को अतिसावधानी के साथ बन्दी करके रखने की आज्ञा महम्मद गोरी ने प्रहरियों को दिया।

तेरहवां परिच्छेद ।

तारागण के मध्य शोभित चन्द्र की भांति दिल्लीश्वर पृथ्वीराज, सभासदों के मध्य बैठे हैं। उनका शरीर बलिष्ट, ललाट प्रशस्त, नासिका सुठाम सघन कृष्णवर्ण युगल भौंहे किंचित स्थूल हैं उसके नीचे भ्रमरयुक्त कमलवत् दीर्घ उज्वल दोनों नेत्र हैं, देखने में सरल और चंचलस्वभाव बोध होते हैं, किन्तु भली प्रकार देखने से उस चंचलता के मध्य दृढ़ता की भी आभा पाई जाती है । चत्रियतेज और सरलता मिश्रित होने से उनकी सुन्दर मुख पर एक और प्रकार का अलौकिक सौन्दर्य्य लक्षित होता है । उनकी अवस्था अभी अधिक नहीं केवल पैंतीस वर्ष की है, हाय! इसी अल्प वयस में उन्हें सकल सुख बिसर्ज्जन कर देना होगा।

निकट ही एक दूसरे सिंहासन पर कुशासन के ऊपर वीरचूड़ामणि योगीन्द्र समरसिंह बैठे हैं । यद्यपि देश में यवन आगये हैं किन्तु पृथ्वीराज युद्ध की कुछ वैसी विशेष तय्यारी नहीं करते, निश्चिन्त होकर बैठे हैं, यही सुनकर समरसिंह चिन्तित हो सैन्यदल सहित दिल्ली आये हैं। हमलोगों ने समरसिंह को जब अंत में देखा था, तब से आज प्रायः बीस वर्ष और व्यतीत होगये हैं, काल के परिवर्त्तन से उनमें भी अब परिवर्त्तन दीख

पड़ता है। अब उन्हें युवा पुरुष नहीं कहा जा सकता, अब प्रौढ़ हो गये हैं, अवस्था ४८ वर्ष की है। उन्होंने किरणसिंह के जलनिमग्न होने पर, मुकुट त्याग कर जटाधारण का संकल्प किया था, वह जटा अब बढ़ कर मस्तक से कन्धे पर्य्यन्त पड़ी है और दाढ़ी क्रमशः दीर्घ होकर उनके बिशाल बचस्थल को ढाके हुये है। केश और दाढ़ी तथा मोंछ के बाल कुछ २ पक गये हैं। गले में कमलाच की माला उस योगीन्द्र के कंठ में ऐसी शो-भायमान है जैसे महादेव जी के कंठ में फणी का हार हो। अब भी उनके शारीरिक मानसिक तेज में कुछ न्यूनता नहीं है, अवस्था अधिक होने और उस गंभीर दुःख के कारण उनकी मूर्त्ति पहिले से इस समय कुछ अधिकतर गंभीर लचित होती है। इस समय के देखने में पूर्व्वापेचा और अधिक भक्तिभाव उदय होता है, भय भी अधिक जान पड़ता है, उस जटाश्मश्रुधारी, कम-लाचमालाशोभित, स्थिर गंभीर मूर्त्तिं के देखने से सहसा एक तेजस्वी ऋषि की मूर्त्ति जान पड़ती है। यह हम पहिलेही कह चुके हैं कि समरसिंह नानागुणबिभूषित थे, किन्तु इसलिये कि उनका सकल सद्गुण सब किसी को स्पष्टरूप से और भी हृदयस्थ हो जावे, कविचन्द्र उनके गुण के विषय जो जो कह गये हैं हम उन्हीं

के पुस्तकों की कथा पुनरुल्लेख करते हैं । कविचन्द्र इस प्रकार कह गये हैं—'समरसिंह चेत्र में बड़े साहसी धीर कुशल और निपुण थे, सभा में अतिविज्ञ सुविवेचक और सद्वक्ता थे, वे स्वभावत: अति धार्मिक थे हर समय और हर विषय में उनका धर्म्मिष्ट भाव और सामाजिक प्रेम प्रकाश होता था। उनके अधीनस्थ कर देने वाले राजा गण तथा सैना के लोग सभी उनसे प्रीति रखते थे, यहां लों कि पृथ्वीराज की सेना सामन्त से भी अधिक सन्मान और भक्ति करती थी, युद्ध यात्रा की समय शुभाशुभ सब लक्षण निर्णय कोई भी उनकी भांति न कर सकता था; रणक्षेत्र में उनकी नाईं कोई भी सेना सज्जित न कर सकता था, अश्व और अस्त्र चलाने में भी कोई उनकी बराबरी न कर सकता था । युद्ध यात्रा के पहिले और पीछे, अथवा युद्ध के संधि स्थल में, समरसिंह का शिविर सकल सैनिक पुरुष के सम्मिलन का स्थान था, सभी उनके ज्ञान से उपदिष्ट और यथार्थ मधुर बाक्य से संतुष्ट हो जाते थे । कविचन्द्र मुक्तकंठ से स्वीकार कर गये हैं, कि राज्यशासन, मन्त्रीनिर्बाचन, राजदूत प्रेरण इत्यादि विषय में हमने जो जो उपदेश दिये हैं वे सब समरसिंह ही के मुखार्विन्द के निकले हुये हैं, और उन्होंने अपनी वक्तृता वा उपन्यास में नीति धैर्य्य वा

कर्तव्यानुष्ठान, विशेषत: राजपूत लोगों के राजभक्ति के विषय में जो कुछ शिक्षा दी है, वह सब समरसिंह ही से ग्रहण किया है'। इन सब गुणों के संग समरसिंह में एक और प्रधान गुण यह था कि वे पूर्णतया अहंकार शून्य थे। पृथ्वीराज और जयचन्द्र प्रभृति भारतवर्षीय राजगण अपने २ श्रेष्टता लाभ के हेतु प्राय: वृथा युद्ध और विवाद में प्रवृत्त होते थे, परन्तु समरसिंह स्वार्थलाभ के निमित्त और वृथा अहंकार से परितृप्त होने के लिये उस प्रकार के कार्य्य में कभी प्रवृत्त न हुये। परन्तु यथार्थ आवश्यक स्थल और पराये की सहायता करने में उन्हों ने जितना युद्ध किया था वैसा किसी राजा ने न किया।

पृथ्वीराज के संग समरसिंह का अतिशय बन्धुत्व था। वे पृथ्वीराज के दक्षिण भुजास्वरूप थे। प्रत्येक युद्ध में उन्हीं की सहायता से दिल्लीश्वर जयलाभ करते थे, बिपत्ति पड़ने पर पहिले उन्ही का परामर्श ग्रहण करते थे, और ज्येष्ठ भ्राता की भांति उनकी श्रद्धा और भक्ति करते रहे,—यहां लों कि इस बार जब समरसिंह चित्तौर से दिल्ली आते थे तो उस समय पृथ्वीराज उनका आगमन सम्बाद सुनतेही उनके सन्मानार्थ परिषदवर्ग को संग लेकर साढ़े तीन कोस तक उनकी अगुआनी के निमित्त गये थे मार्ग में परस्पर दोनों दल के साक्षात होने पर पृथ्वीराज के सैन्य-

गण समरसिंह के आगमन के अह्लाद में जयध्वनि करने लगे, उनको देख द्विगुण बल और साहस प्राप्त होगया शेष में दोनों भाईयों ने परस्पर सानन्दचित से आलिंगन किया। यह समझ कर कि पृथ्वीराज युद्ध से निश्चिन्त हो रहे हैं समरसिंह ने उसी जगह उन्हें मधुर २ निन्दायुक्त बातें कही और उपदेश दिया, अन्त में सब लोग एक संग होकर दिल्ली चले। आजही वे लोग वहां से दिल्ली पहुंच गये।

इससमय सभा के चारो ओर, सन्मुख प्रजागण पृथ्वीराज के निकट बिचार प्रार्थना के हेतु खड़े हैं। क्रमशः बिचार शेष हुआ। प्रजागण न्यायी राजा को आशिर्बाद देते हुये अपने २ घर गये। इस समय समरसिंह और पृथ्वीराज, भविष्य युद्ध के बिचार में प्रवृत्त हुये इसी में एक प्रहरी ने आकर उन लोगों को यवनदूत के आगमन की बात सुनाई सुनतेही पृथ्वीराज ने तुर्त उसे सभा में लाने की आज्ञा दी।

महम्मदगोरी इस बार दिल्ली आक्रमण के निमित्त आया है उसने पृथ्वीराज का अभिप्राय जानने के निमित्त उनके निकट एक दूत भेजा था, उस समय दिल्लीश्वर ने जो उत्तर प्रदान किया था उसका प्रत्युतर लेकर इस समय फिर यह दूत आया है।

यदि इसके जानने की किसी को इच्छा हो कि पृथ्वी

राज ने क्या उत्तर दिया था तो उसे हम पहिलेही कहे देते हैं। उन्होंने कहा था "महम्मदगोरी क्यों इच्छा पूर्वक प्रज्वलित अग्नि में गिरते हैं, उनको यदि पूर्व्व घटना स्मरण हो, तो यहां से प्रस्थान करैं। मैं दया करके उन्हें उनके देश को लौट जाने दूंगा, और वह जो बावन होकर चन्द्रमा पर हाथ बढ़ाने आये हैं इसे भी मैं चमाकरूंगा"।

यह दूत आज उन्हीं सब बातों का उत्तर लेकर आया है। सभा में दूत के उपस्थित होने पर पृथ्वीराज ने पूछा कि महम्मदगोरी ने हमारी बातों का क्या उत्तर दिया था। दूत ने हाथ जोड़ निवेदन किया "महाराज महम्मदगोरी ने कहा है कि 'हम क्या करैं, हम खलीफ़ा तो नहीं हैं। हम तो फ़कत सिपहसालार हैं। हमको खलीफ़ा साहब ने जंग के लिये भेजा है, अगर हमारी जान भी जाय तौ भी इस हुक्म की तामील करनाही होगा।" यह सुन पृथ्वी-राज ने सगर्व्व कहा "तो यदि महम्मदगोरी इच्छा पूर्वक अपने ऊपर बिपत्ति लाया चाहते हैं, तो उनसे कह दो कि आवैं और फिर एक बेर चत्रीयों का तेज देख जावैं।"

पृथ्वीराज की बात समाप्त होने पर एक और मनुष्य सभा के एक कोने से बोल उठा "उनसे कहा, कि और बेर तो हम लोगों ने यवनों के पराजय पर हिन्दू रीति के अनुसार उनलोगों पर दया की थी। क्या उस न्यायाचरण

का यही फल है ? कि फिर वे लोग हमारे देश में उत्पात करने आये हैं ! इस बार उनलोगों को समुचित दंड दिया जायगा। और एक भी पुरुष तुम्हारे दल का जीता स्वदेश न जाने पावेगा। जिस ओर से यह शब्द आया, सब की दृष्टि उसी ओर हो गयी। पृथ्वीराज ने कहा "यह कौन ? बिजय ! तुम कब आये ? जिस कार्य्य को गये थे सो क्या हुवा ? तुमारे संग यह अपरिचित युवा मनुष्य कौन है ?" बिजय को सकुशल आये देख फिर मंत्री के अह्लाद की सीमा न रही उनको आशा के अतिरिक्त फल प्राप्त हुवा। बिजय बोले "कार्य्य की बात पीछे कहूंगा, पहिले दूत को जो कहना हो कहकर बिदा कीजिये।" पृथ्वीराज ने कहा "ठीक है" फिर दूत से बोले तो वह यहां कब आया चाहते हैं ?" दूतने कहा "आज से एक महीने पर।"

पृथ्वीराज बोले "अच्छा, हमलोग उन्हीं की इच्छा में सम्मत हैं। जाकर कह दो कि आज से एक महीने पर हमलोग उनकी स्पर्द्धा चूर्ण करने के निमित्त थानेश्वर में प्रतीक्षा करेंगे।

दूत के प्रस्थान करने पर बिजय पहिले कार्य्य की बात समाप्त कर बोले "ये युवा चन्द्रपति के निकट से महाराज के निकट आते थे, मैं भी अपना दूत कार्य्य समाप्त कर यहां आता था, कि मार्ग में साक्षात होने पर इन्होंने

दिल्ली आने का पथ पूछा मुझसे इनसे परस्पर बात चीत हुई, इस से संग में लेता आया हूं।" पृथ्वीराज के पूछने पर दिलीप ने कविचन्द्र का सब समाचार जो जानते थे कहकर उनका पत्र राजा के हाथ में दिया। महाराज ने उसको पढ़कर उनके निवास के योग्य गृह इत्यादि देने की आज्ञा देकर कहा "इतने दिन हुये, कबिचन्द्र यवन शिविर से न फिरे, मुझे शंका होती है कि कदापि किसी बिपत्ति में न पड़े हों। इस समय उनके रहने से अति उत्तम होता।"

मन्त्री बोले "कबिचन्द्र के निमित्त हमलोगों को कोई भय नहीं है उनके सदृश मनुष्य को किसी विपत्ति में पड़ने की आशंका नहीं। यदि कोई दुर्घटना हुई भी हो तो कविचन्द्र जिस प्रकार हो उस्से निकल कर चले आवेंगे। उनकी बुद्धि और कौशल पर मुझे दृढ़ बिश्वास है।"

इस नये मनुष्य को समरसिंह स्थिर नेत्र से देखते थे। यह सुन्दर युवा पुरुष कौन है? यह न जाने किस भाग्यमान का पुत्र होगा? इसे देख कर किरण क्यों चित्त पर चढ़ता है? क्या किरण के संग इसका कोई सादृश्य है?। किरण रहता तो क्या अब तक इतना बड़ा हुवा होता? क्या वह ऐसाही सुन्दर देखने में आता? न मालूम किसपाप से मैंने उसे खोया? सोचते२ उनके चिन्ता का प्रवाह भूत-

काल की ओर प्रवाहित हुवा। गत दुर्घटना स्मरण हुई। किरण के खोये जाने का दिन चित पर चढ़ गया। वही झड़, वही वृष्टि, क्रमशः पगलो का मृतक शरीर पर्यन्त चिन्ता चक्षु से दिखाई देने लगा। महिषीगण के रोदन की ध्वनि जैसे उनके कान में ध्वनित होने लगी। इस समय उस योगीन्द्र पुरुष को भी बिमर्ष होगया। पृथ्वीराज ने उनसे पूछा "यह क्या? आप अकस्मात ऐसे क्यों हो गये? समरसिंह का सोच भंग हो गया, बोले "उस युवा को देख मुझे किरण की बातें चित्त पर चढ़ गयीं। उसके अवस्था का व्यक्ति जिस किसी को मैं देखता हूं तुरन्त मेरा मन उसी की ओर चला जाता है। किन्तु इसे देखकर आज मैं अधिक चंचल हो गया हूं" समरसिंह की बात सुनकर पृथ्वीराज ने उस युवा की ओर देखा तो उनको समरसिंह के मुख से उसके मुख की समानता पाई गई"। परन्तु इस भय से कि इस कहने से समरसिंह उसको यथार्थ पुत्र समझने लगेंगे अपने मन की बात प्रकाश न की, बोले कि "गत बात को सोच कर आप क्यों वृथा कष्ट उठाते हैं? जो पृथ्वी पर नहीं है उसकी आशा करने से क्या होगा? यदि किरण मरा न होता, केवल अदृश्य होता तो मैं भी इस युवापुरुष को देख कर किरणही समझता किन्तु जब किरण निश्चय जलमग्न हो गया है तो फिर

उसकी आशा क्यों की जावे ? मराहुवा मनुष्य तो अब नहीं फिर आवैगा।" समरसिंह इस बात से दीर्घ निश्वासत्याग बोले "सो तो सत्य है । किन्तु यद्यपि मै जानता हूं कि उसकी आशा नहीं है, तथापि कभी २ मन में आता है कि जैसे वह मरा नहीं, कहीं है। उस समय पगली के बात पर मैं हँसता था, अब उसी की भांति कभी २ मन में आता है कि मेरा किरण मरा नहीं है, चोरी गया है। समरसिंह ने दूसरी बातें छेड़कर उस बात को शेष करने की चेष्टा की, क्रमशः उनलोगों ने यह बिचार करना आरम्भ किया, कि इस वार के युद्ध में किस प्रकार प्रबन्ध होगा। बिचारने से यह स्थिर हुवा कि सैन्यदल को चार भाग में बांट दिया जाय तीन ओर से तीन दल यवनों को आक्रमण करै, और एक दल हर समय प्रस्तुत रहै । यवन सेना को तीन ओर से घेर कर उनलोगों के भागने का पथ बन्द करनाही युद्ध का प्रधान उपाय स्थिर हुआ। सेनागण को चार भाग करने में चार मनुष्य सर्व्वप्रधान सेनापति की आवश्यकता है । और हैं दोही मनुष्य—अर्थात पृथ्वीराज और समरसिंह—तो और दो मनुष्य कौन २ होंगे ? दूसरे राजा लोग भी कोई नहीं आये। लाहौर के कर देनेवाले राजा चान्दपुन्दिर ने इसके पहिलेही देहत्याग किया, जब वे महम्मदगोरी को भारतबर्ष में आने से रो-

करने गये थे वहीं और पृथ्वीराज के प्रधान सेनापति अखिलसिंह भी इस समय रोगग्रस्त होकर शय्यासेवन कर रहे हैं। बिजय के इस बार निर्व्विघ्न दूतकार्य्य सिद्ध कर आने से सभासद्‌वर्ग सभी उससे संतुष्ट हुये थे और सभी बिजय को एक योग्य मनुष्य समझते थे। सभासदगण को बिजय के प्रति अपनी २ संतुष्टता प्रगट करने का अच्छा अवसर हाथ आया, उन लोगों ने बिजय और युवराज कल्याणसिंह इन दो मनुष्यों को सेनापति के पद पर नियुक्त करना स्थिर किया।

युवराज कल्याण समरसिंह के संग दिल्ली आये थे। यद्यपि चौबीसही बर्ष की अवस्था थी तौभी साहस और विक्रम में पृथ्वीराज और समरसिंह के तुल्य थे। कल्याण ने दिल्ली आने पर राजकन्या को देखकर उसके पाणिग्रहण की इच्छा प्रकाश की। समरसिंह के साथ इसके पहिले भी कल्याण दो एक बार दिल्ली आये थे उस समय राजकन्या बालिका थी। बालिका के संग प्रणय कैसा? किन्तु यह न हो तौभी सुन्दरी बालिका को देखना किस को भला नहीं मालूम होता? उसका मधुर स्वर सुनकर एक क्षण किसका हृदय प्रेम करने को उत्सुक नहीं होता? राजबाला को देख कर राजपुत्र के मन में भी उस समय वैसाही भाव उदय हुआ था।

इस बार राजकन्या को देख कल्याण के हृदय में वही सकल बाल्यावस्था का भाव प्रणयरूप में दृढ़ हो गया। उन्होंने उनसे विवाह करने की इच्छा प्रकाश की, समरसिंह ने छिपे २ उनके इस इच्छा के परित्याग करने के अनेक उपाय किये थे। कल्याण के अशुभ ग्रहों का सदाही उनको ध्यान बना रहता था। विवाह होने के कुछ दिन उपरान्त पुत्रबधू बिधवा होकर कष्ट भोग करेगी इसी भय से उनकी इच्छा अब तक कल्याण के विवाहने की न थी। किन्तु कल्याण किसी प्रकार बाज न आते थे। बोले कि "राजकन्या को न पाने से मैं बिक्षिप्त होजाऊंगा और यदि यह विवाह न हुवा तो मेरे प्राण की हानि भी हो जायगी।" उस समय समरसिंह को पूर्व्व कथा फिर स्मरण हुई। किरण किस प्रकार से जल में डूबा था यही सोचने लगे। पगली के गोद मे न देनाही उनके खोजाने का मूल कारण है। अपने ही लोगों के बुद्धि दोष से एक पुत्र गँवाया, कल्याण के विवाह में बाधा करने से यदि वह भी दुखी होकर प्राणत्याग देगा तो इस बार भी हमी लोगों के दुर्बुद्धि से यह दुर्घटना भी होगी। अतएव विवाह कर देने से सुखी हो कर फिर बच भी सकता है। यह कौन कह सकता है कि न बचैगा? उनको गुरुदेव ने कल्याण के भाग्य का निर्णय कर के कहा था कि 'विवाह

के पहिलेही मरेगा।' विवाह हो जाने से वह गणना मिथ्या हो जायगी। इसके होने से मृत्यु की गणना भी मिथ्या होना सम्भव है। समरसिंह ने यही सब सोच विचार कर फिर विवाह बन्द करने की चेष्टा न की, वरं उनके मन में यह बात बैठने लगी कि विवाह होजाने से कल्याण को फिर मृत्यु का भय न रहैगा; इसी कारण वे शीघ्र विवाह होजाने के उद्योगी हुये। उषावती को अनिच्छुक नहीं देखा इससे पृथ्वीराज को भी इस विवाह से कोई असम्मति न थी। किन्तु विजय के रहने से इस विषय में कुछ मतामत प्रकाश न किया। विजय ने आकर सुना कि इस युद्ध के शेष होने पर उषावाती और कल्याण का विवाह होगा। उन्होंने विचारा कि "युद्ध में पहिले कल्याण के प्राण की रक्षा तो हो लेवे?"

जिस समय उनलोगों में युद्ध का परामर्श होता था उस समय कल्याण वहां न थे। उन्हें अनुपस्थित देखकर उनको सभा में लाने के लिये पृथ्वीराज ने विजय को भेजा, विजय ने सभा से प्रस्थान किया।

—***—

चौदहवां परिच्छेद ।

जिस समय इधर ये बातें हो रही थीं युवराज कल्याण क्या करते थे ? वे यमुनास्तम्भ के उपर से राजकन्या के संग यमुना की शोभा देखते रहे थे । पृथ्वीराज ने कन्या के लिये यमुनादर्शन हेतु यह बड़ा और चमत्कार स्तम्भ बनवाया था । वह अब तक बर्तमान है । मुसलमानों ने दिल्ली जय करने के पश्चात् उसका नाम 'क़ुतुबमीनार' रक्खा है । इसी यमुनास्तम्भ पर चलो, तो कल्याणको देखैं।

सन्ध्याकाल हो गया है राजभवन से नौबत का शब्द, तथा दिल्ली अधिष्ठात्री आशापूर्णा देबी के मन्दिर सेसन्ध्या के आरती की शंखध्वनि, चारो दिशा से मनुष्यों का कल्लोल और पीपल और बट वृक्ष से पक्षियों का कलरव मन्द २ हो कर यमुनास्तम्भ के शिखरदेश में प्रवेश करता है, थोड़ेही दूर पर अत्यन्त ऊंचा और विचित्र चांदनी से प्रदीप्त राजप्रासाद है, उस पर असंख्य दीप माला चन्द्रकिरण से तेजहीन हो रही हैं जैसे दिवागमन से तारागण मलिन हो जाते हैं, प्रासाद के समस्त श्वेतवर्ण शिखरदेश इस शब्दशून्य निशाकाल में दर्शकवर्ग के हृदय में एक अपूर्व्व गंभीर भाव का उद्भावन करते हुये उर्द्ध नेत्र से असीम गगनमार्ग में देख रहे हैं मानो

निकटवर्ती बिपत्ति को समझकर अर्द्धमुख हो कातर चित्त से देवोपासना में प्रवृत्त हुये हैं । फिर उधर आकाशभेदी लौहस्तम्भ सगर्व्व मस्तक उठाकर पृथ्वीराज की गरिमा और गुरुता प्रचार करता है, और उससे किंचित अन्तर पर प्रस्तरमय लोहित दुर्ग नगर की शोभा सम्पादन कर रहा है, निकट के छोटे २ घननीलमय मनोहर पर्वतश्रेणी रजतमार्जित होकर औरभी मनोहर हो रहे हैं। कुछ दूर पर यमुना बहती है, पूर्णिमा के पूर्णचन्द्र को बक्ष में धारण किये यमुना स्वतंत्रअपने मन से बहती जाती है। कल्याण, यमुना की शोभा देखने के निमित्त यमुना-स्तम्भ केऊपर आये हैं, किन्तु क्यों ?—वे तो यमुना की शोभा नहीं देखते। राज कन्या नीचे मुख किये युवराज के चरणकमल देख रही है। उन्हें यमुना की शोभा से राजकन्या के मुख की शोभा अधिकतर प्रिय जान पड़ती है। राजकन्या के बदनमंडलही में यमुना की शोभा देख रहे हैं। भला यमुना की शोभा क्या है ?

आज यमुना के श्यामल जल में पूर्णचन्द्र जैसे चंचलित हो रहा है, क्या उसी प्रकार हमलोगों की उषावती का मुख मंडल भी लावण्य राशि में दोलायमान नहीं है ? तारकाखँचित यमुनालहरी के अपेक्षा भी उषावती

का मुक्ताजटित जगमगाता हुआ केशराशि जो बायु से हिल रहा है, क्या अधिक मनोहर नहीं है? फिर राज-बाला के प्रेम पुरित लज्जावनत और उज्वल लोचन, और उनके कपोलस्थित किंचित प्रफुल्ल गुलाब कलिका के संग तुलने की सामग्री क्या यमुना को देखने देती है? इन सब शोभा देखकर कुमार को यमुना की शोभा क्यों भली मालूम होगी? यह सकल शोभा देखने से कुमार का मन तृप्त नहीं होता जितना ही देखते हैं उतनाही नूतन बोध होता है। देखते २ लोचन बिबश हो जाते हैं तथापि मन को संतोष नहीं होता, देखते ही जाते हैं। क्या इतने देखने पर भी लोचन थकित न हुये? इतने देखने पर भी साध पूर्ण न हुई। यह देखते हैं कि अभी नूतन है। इस देखने में इतने मुग्ध हो गये हैं कि यह नहीं देखते कि यमुना स्तम्भ के द्वार पर कौन खड़ा है? हमलोगों को छिप कर कौन देख रहा है? हम लोगों की बात सुन्ने के लिये कौन कान लगाये है? भला उसे नहीं देखते तो न सही मुख से बोलते क्यों नहीं? क्या बात करने में राजकन्या को न देख सकोगे? इतने देर से आये हैं—परन्तु दोनों चुपचाप! अब भी मोह नहीं छुटा? अभी तक बात चीत का अवकाश न मिला। नहीं, भला यह मोह भी कभी छूटा है? किन्तु

अब कुछ समझ कर बात करने लगे । कल्याण का मोह छूटा, एकबेर गंभीर दीर्घ निःश्वास त्यागकर बोले "उषा ! क्या सोचती हो ? मुख मलिन क्यों है ?" उषावती ने कल्याण की बात सुनकर उनकी ओर देखा किन्तु वह कल्याण का महत् भावयुक्त उच्च ललाट, वह वृहत् और उज्वल नेत्र, वह स्वतः सहास्य ओष्ठाधर, वह बलिष्ट औ सुडौल शरीर, देखकर उनके प्रश्न का उत्तर देना भूल गई। कल्याण ने फिर पूछा "उषा, मुख मलिन क्यों है ? क्या सोचती हो ? इस बार उषावती नम्रभाव से बोली" "नहीं, मैं तो कुछ नहीं सोचती आप क्या सोचते हैं ?"

कल्याण—"मैं सोचता था, कि मैंने स्वप्न देखा है कि उषावती जैसे मेरीही उषावती है ! राजकुमारि ! क्या मेरा यह स्वप्न कभी फलीभूत होगा ?"

उषा—'तो आपको फिर कब बिश्वास होगा ? युद्ध समाप्त होने पर हमलोगों का विवाह होना स्थिर हुआ है, अब भी आप को बिश्वास नहीं होता ?'

कल्याण—"नहीं, मेरे मन में आता है कि इस रत्न-लाभ के पूर्व कोई न कोई दुर्घटना होगी। वह यह है कि युद्ध में मेरा प्राण बिनष्ट होगा, और यह दुर्लभ रत्न मुझ से किसी अधिकतर भाग्यवान के हाथ पड़ेगा।" यह सुन उषावती सजलनयन हो बोली "आप अपने मन

में ऐसा कदापि न सोचिये । यदि ईश्वर ने मेरे ऊपर निर्दय होकर ऐसाही किया, तो मैं बिधवा हो जाऊंगी। आप मेरे—"बोलते २ उषावती का कण्ठ भर गया, दोनों बिशाल लोचन रोते २ लाल होगये किन्तु इसको कल्याण नें न देखा।

कल्याण—"यदि तुमारे पिता तुम्हें दूसरे को समर्पण करें तो तुम क्या करोगी ?"

उषा—"मैं प्राण त्याग कर फिर आपसे परलोक में भेंट करूंगी। स्त्रियों का प्रेम, आप पुरुषजाति होकर कैसे जान सकते हैं ? प्रेम के निकट हमलोगों का प्राण अति तुच्छ पदार्थ है।"

इतना सुनतेही कल्याण का हृदय एक अपूर्व्व आशा से परिपूर्ण हो गया। उन्होंने मोहबश होकर उषावती के दहिने हाथ को चुम्बन की अभिलाषा से अपने ओष्टाधर की ओर खींचा। तुरन्त राजकन्या ने चटक कर हाथ खींच लिया और कहा "राजकुमार—"इसी एक बात में उषावती के हृदय का गंभीर प्रेममय अभिमान, और निर्दोष पवित्र हृदय का सर्व्वमय कोमल तिरस्कार प्रकाश हुआ। कल्याण अतिशय लज्जित हो चिहुंक कर बोले "सरले ! तुमारा निःस्वार्थ प्रेम देख मैं एक प्रकार मोह

में बिवश हो गया, यदि कोई अपराध हुआ हो तो क्षमा करना। तुम पुरुषजाति के ऊपर दोषारोपण करती थीं, किन्तु मैं इसी चतुर्भुजा देवी की साक्षी देकर कहता हूं कि, तुमारे भिन्न और कोई भी मेरी प्रणयभागिनी न होगी, किम्बा किसी को भी पत्नीभाव से ग्रहण न करूं-गा।" इतने में एक परचारिका ने आकर उन दोनों की सुखनिद्रा भंग कर दी और बोली "मन्त्री पुत्र ने कहा है कि महाराज आप को सभा में बुलाते हैं।"

बिजय का नाम सुनतेही राजकन्या चिहुंक उठी। उसे वही रात्रि काल का कथोपकथन स्मरण हो आया बि-जय का क्रोध सहित भागना चित्त पर चढ़ गया। अकस्मात् उसके मन में आ गया कि बिजय कल्याण से कुछ अनुताचरण करने आया है। वह मनही मन डर गई, राजकन्या का सहसा ऐसा भाव देख कल्याण ने पूछा 'यह क्या?।' राजकन्या की इच्छा हुई कि एकबेर ही सब खोल दूं, किन्तु लज्जाबश न कह सकी, बोली "कुछ नहीं"। युवराज ने फिर कुछ न पूछा, उन्होंने देखा कि सभा में जाने का समय व्यतीत हो चला। किसी प्र-कार इतने अल्प समय में पहुंचना सम्भव नहीं है, जल्दी से उतरना प्रारम्भ किया और उद्यान में पहुंचे। मार्ग में एक लतामंच के निकट राजकन्या का नाम सुन्ने में

आया, तुरन्त ठमक कर खड़े हो गये, मानो चरण बेबश होगये, वहां यह सुना "देखो राजकुमारी कैसी पाषाण-हृदया है! युवराज उसे इतना चाहते हैं, और वह उन्हें कुछ भी नहीं चाहती, दूसरे को प्यार करती है। डांक पड़े ऐसे रूचि पर! ऐसे सुन्दर पुरुष को छोड़ बिजय से प्रेम करती है! किन्तु राजपुत्र कैसे सत्पुरुष और सीधे मनुष्य हैं कि राजकन्या के मिथ्या प्रेमकथा में भूल गये हैं। आहा, उनकी दुर्दशा देख मेरा हृदय विदीर्ण होता है। और राजकुमारी को तनिक भी मोह आया नहीं, छिः छिः बड़े लोग बड़ेही निर्द्दय होते हैं।"

इतना सुनतेही कल्याण का हृदय कण्टकित होगया रग रग में रुधिर उष्ण होकर बहने लगा, क्रोध से अंग कँपने लगा। इस समय चरणों में फिर बल प्राप्त होगया सभा में न जाकर मंच में प्रवेश किया। उनको देख गुलाब सशंक बोली "यह क्या, युवराज यहां क्यों?' कल्याण ने उसका उत्तर न दिया, किन्तु पूछने लगे कि "तू आपही आप क्या कहती थी?'

गुलाब—"कब? मै तो कुछ नहीं बोली? कल्याण क्रोध से बोले "क्या कुछ नहीं बोली। तू राजकन्या के पवित्र हृदय पर दोषारोप करती थी—और अब कहती

है मैं कुछ नहीं बोली ? पापिनी तू नहीं जानती कि किसके निर्म्मल चित्त पर कलंक आरोपण करती थी ? ।" इतना कह क्रोध से खड्ग उठा कर बोले "तू स्त्री जाति है इसी से तूने निस्तार पाया, और कोई होता तो अभी इसी खड्ग से खण्ड २ करके मैं उसे फेंक दिये होता ।"

गुलाब—"युवराज, जब आपने राजकन्या को प्रेमी समझा तो आज नरहत्या करने में भी संकुचित न हों तो क्या आश्चर्य है ? —तो क्या अपने प्रेमी के निमित्त मन के ताप से राजकन्या की निन्दा करना मेरे पक्ष में इतना अन्याय हुआ ?"

कल्याण—"राजकन्या की निन्दा और तुमारे प्रेमी से क्या सम्बन्ध ?"

गुलाब—"जिनसे मैं प्रेम रखती हूं, वे भी उससे प्रेम रखते हैं, तो राजकन्या ही न मेरे पथ में कंटक स्वरूपहै ?"

कल्याण—"क्या ? वह भी उससे प्रेम रखती है ?" तुमको इस बात के कहने का साहस होता है ?' गुलाब बोली 'मैंने एक दिन अपने कान से राजकन्या और बिजय का प्रेमालाप सुना है ।"

कल्याण—"मुझको तुमारे बात पर विश्वास नहीं होता ।'

गुलाब—'मैं यदि प्रमाण दे सकूं, तो आप मेरा क्या उपकार करेंगे ?' यह कह उसने कल्याण के पद पर सीस रख दिया, और चरण पकड़ कर बोली 'युवराज, मैं यह जानकर कि आप इसी पथ से सभा को जायंगे, केवल आप को सुनाने ही के निमित्त उच्चःस्वर से कह रही थी । यदि आपने इसका प्रतिकार न किया तो कोई दूसरा उपाय नहीं है ।"

कल्याण—"अभी तक मुझको बिश्वास नहीं होता परन्तु यदि सत्य हो तो तुम्हारे उपकार की चेष्टा करूंगा अब आगे तुमारा प्रमाण सुना चाहता हूं ।'

गुलाब—"विजय की अंगुली में उषा-नामांकित एक अंगूठी आपके देखने में आवैगी । वही राजकन्या के प्रेम का चिन्ह है ।'

कल्याण—"ऐसा हो सकता है, पर इससे क्या हुआ ? राजकन्या के संग बाल्यावस्था से उनका बन्धुत्व है उन्होंने भ्रातृभाव में उनको वह दिया होगा ।"

गुलाब—"यदि केवल सुहृदभाव से दिया है तो आपके पूछने पर वे वैसाही कहेंगे, और यदि अन्यभाव में दिया है तो आप से उसको छिपाने की चेष्टा करेंगे । आपको इतना पूछनेही से सत्यासत्य प्रकाश होजायगा ।

कल्याण—"यदि राजकन्या के बिनाजाने विजय ने किसी मन्द अभिप्राय से उसे चुरा लिया हो तो उनके बतालाने की मुझको संभावना नहीं है, किन्तु क्या मैं इसी कारण से राजकन्या का अविश्वास करूंगा?"

गुलाब—"विजय को ऐसा करने को क्या आवश्यकता थी?"

कल्याण—"यह मैं नहीं जानता, किन्तु तुम चाहे जो कहो, मैं अपने आंख के देखे बिना किसी प्रकार विश्वास न करूंगा।"।

गुलाब क्रोध प्रकाश कर बोली "यदि आपने इतने पर भी विश्वास नहीं किया तो क्या चिन्ता, प्रमाण सत्य करने के लिए आप को एक दिन में कोई प्रत्यक्ष प्रमाण दिखला दूंगी नहीं तो मै दोषी ठहरूंगी। तो आज मैं जाती हूं, जिस दिन सुअवसर देखूंगीं उसी दिन आप से कहूंगी"। इतना कह गुलाब ने प्रस्थान किया। कल्याण के शरीर में आग लग गई, अनेक प्रकार की भावना मन में उठने लगी। "क्या यह कभी हो सक्ता है"? ऐसे पवित्र हृदय में कदापि ऐसे पाप की सम्भावना नहीं है, बोध होता है कि गुलाब को राजकन्या से कोई शत्रुता हो गई है। और यदि सत्यही हो? ओः! इसे तो बिचारतेही हृदय विदीर्ण हुआ जाता है सत्य

होने पर न जाने क्या होगा । इसके सत्य होने से मेरे जन्म का सुख नष्ट हुआ, इसी युद्ध में जिस प्रकार हो सकेगा प्राण त्याग करूंगा । किन्तु यह कभी सत्य नहीं है, अपने नेत्रों से देखे बिना मैं कभी विश्वास न करूंगा । क्षण काल के लिए भी यदि उस पवित्र हृदय के प्रति मुझ को सन्देह हो जावे, तो मैं दोषी हूं। निश्चय राजकन्या के सङ्ग गुलाब की कोई गूढ़ शत्रुता है" ।

अब कल्याण को कोई संदेह नहीं रहा, क्षण काल के लिये जो हुआ था वह शरद काल के मेघ की भांति उड़ गया, हर्षितचित्त से वे राजसभा में आकर उपस्थित हुये पृथ्वीराज ने उसी दिन उनको सेनापति के पद पर नियुक्त किया । सभा में आने पर दिलीप को देख वे आश्चर्यान्वित हो गये । उन्हे देखते मात्र उन्हों ने समरसिंह का मुख देखा । तो दोनों मुख की सादृश्य देख कर आश्चर्यमय हो गये । चाहे उसी सादृश्य देखने से किम्बा किसी दूसरे कारण से हो, दिलीप के प्रति उन को स्नेह उत्पन्न हुआ । क्रमश: दोनो व्यक्ति मेंअत्यन्त बंधुत्व संस्थापित हो गया ।

किन्तु दिलीप के परिचय न पाने से उन की उस सादृश्य का यथार्थ कोई कारण है कि नहीं यह कल्याण के निकट प्रकाश न हुआ ।

पन्दरहवां परिच्छेद ।

गत परिच्छेद में जो बातें प्रकाश हुई हैं उस के थोड़े दिन पहिले एक घटना हुई थी, वह इस परिच्छेद में लिखी जाती है।

बिजय ने राजसभा से आकर कल्याण के गृह पर सुना कि 'वे यहां नहीं हैं, राजकन्या के संग यमुना-स्तम्भ पर गये हैं ।" यह सुनकर पूर्व्व घटना स्मर्ण करते हुये यमुना स्तम्भ के उपबन में पहुच कर एक माली से पूछा कि "राजकन्या यमुनास्तम्भ के उपर हैं, उनके संग सहचरी कौन आई है ?' मालीनि कहा "गुलाब ।"

बिजय—"गुलाब कहां है ? वह क्या उन्हीं लोगों के संग है ?"

माली—'नहीं वह तो उधर टहल रही हैं ।' माली ने जिधर दिखला दिया उसी ओर जाकर बिजय ने गुलाब को पाया। उन्हें देखकर गुलाब प्रफुल्लचित्त से उनके निकट आकर बोली 'जान पड़ता है कि इतने दिनों पर मेरी स्मृति हुई! तुम मुझको प्यार नहीं करते, नहीं तो इतने दिन व्यतीत हुये क्या एक पत्र भी न लिखते ?' बिजय यद्यपि गुलाब के संग प्रेमालाप करने न आये थे, तथापि इस समय यही चिताना आवश्यक बोध हुया। बिचार किया कि बिना प्रेम की छलना से गुलाब को

भली प्रकार हस्तगत किये हम राजकन्या और कल्याण का विच्छेद नहीं करा सकते। ऐसा न होने से हमारी मनोबासना पूर्ण न होगी। इसी हेतु विजय ने अपने आने का यथार्थ कारण पहिले न कहा और बोले "तुम मुझको वृथा दोषी बनाती हो। देखतीं नहीं कि अभी आया हूं क्षण मात्र भी विलम्ब नहीं किया, तुम्हारे देखने के हेतु ऊर्द्ध स्वास से चला आता हूं। छिः! स्त्रीजाति बड़ी निठुर होती है। पहिले मैं जिससे प्रीति रखता था, उन्होंने न जाने क्यों मुझे परित्याग किया, और इस समय जिससे प्रीत रखता हूं, उसने अब जिस बस्तु से कि मैं कष्ट पाऊं, वही करने का संकल्प किया है।" बिजय जानते थे कि गुलाब मुझे यथार्थ प्यार करती है, और उनको बिश्वास था कि जब मैं दूसरे का प्रेमवृत्तान्त कहूंगा तो गुलाब को कष्ट और द्वेष होगा। बिजय ने गुलाब को कष्ट देनेही के हेतु ये बातें कहीं थीं सो उनका अभिप्राय सिद्ध हो गया। गुलाब बोली 'अब मुझे जान पड़ता है कि तुम राजकन्या का प्रणय नहीं भूल सकते? क्यों भूलोगे? जो द्रव्य एक बेर प्राप्त हो जाता है उसका फिर गौरव क्या? 'मेरा प्रेम तो पाही चुके हो फिर उस प्रेम का आदर क्या? राजकन्या का प्रेम तो अप्राप्य है इसी से न व्याकुल हो रहे हो?"

बिजय—"नहीं मैं अब उनसे प्रीति नहीं रखता।"

गुलाब—"तो फिर किससे स्नेह रखते हो?"

बिजय—"क्या तुम उसको नहीं जानतीं कि फिर २ पूछती हो? हाय! एक बेरही प्रेम में पड़ कर मैं फन्दे में फँसगया, फिर मैं क्यों प्रेम करता हूं? कितनाहू मन को समझाता हूं कुछ समझताही नहीं। तुम जो कहती हो एक प्रकार वही ठीक है; जो धन दुर्लभ होता है उसी के पाने की इच्छा होती है! मै जानता हूं कि तुम मेरे लिये दुर्लभ हो इससे तुम्हीं को चित्त चाहता है?"

गुलाब—"आज मुझ से इतना ठट्ठा क्यों करते हो? मैंने तुमारे प्रीति करने के पूर्व्वही परीक्षा लेकर मन दिया है, अब मैं तुमारे निकट दुर्लभ हूं! परंच यह तो कहो कि, तुम मुझ से अब प्रेम नहीं रखते क्या इसी कारण इस प्रकार भुलवाते हो?"

बिजय—"हां, इस समय मैं जानता हूं कि तुमारा प्रणयपात्र मैं हूं, किन्तु परस्पर के प्रेमही से क्या मिलन हो जाता है?"

गुलाब—"नहीं, ऐसा नहीं होता, माता पिता की अनुमति चाहिये। किन्तु यदि तुमारा अनुराग मेरे प्रति हो, तो तुमारे वृद्ध पिता हमलोगों के विवाह में कभी असम्मत न होंगे। मैं कुछ नीच कुल की नहीं किन्तु

चन्द्रपति की भगिनी हूं—उनको तुमारे पिता भली प्रकार जानते हैं।"

बिजय—"नहीं, पिता असम्मत न होंगे इसे मैं जानता हूं।"

गुलाब—"तब कौन ? तुम ?"

बिजय—"मैं तो तुमारे पाने के हेतु पागल हो रहा हूं, मैं भला असम्मत क्यों होऊंगा ?"

गुलाब—"तुमारी बातें समझना मेरी जैसी स्त्री जाति को अत्यन्त कठिन है।"

बिजय—'तुम जानती हो, कि प्रतिज्ञा की रक्षा हम लोगों को सब से प्रिय है ?"

गुलाब—"तो क्या तुमने यह प्रतिज्ञा की है कि मुझ से विवाह न करोगे ? तो फिर मुझ को प्रणय की आशा क्यों दिलाई ? यदि मैं जानती कि तुम प्रीति न करोगे, तो उसको मैं अलभ्य समझ कर अपने मन को प्रबोध देती?"

बिजय—"नहीं, नहीं, ऐसा नहीं। मैंने यह प्रतिज्ञा नहीं की थी। तुमारी प्रीति जानने के प्रथम, मैंने एकदिन अपने मन के कष्ट से यह प्रतिज्ञा की थी, कि जो स्त्री मेरा एक कार्य्य सिद्ध कर देगी, उसी से मैं प्रेम करूंगा दूसरे से नहीं, वही यदि मुझको चाहेगी तो विवाह करूंगा। उसके व्यतरिक्त और कोई मेरा प्रेमपात्र न होगा।"

गुलाब—"क्या वह काम ऐसा कठिन है कि मैं उसको नहीं कर सकती ? तुमारे निमित्त अन्य स्त्री जितना कष्ट स्वीकार कर सकती है, मैं उससे शतगुण अधिक कर सकती हूं।"

बिजय—"उसमें कोई कष्ट नहीं है।" गुलाब इस बात को सुनकर सहर्ष बोली "कष्ट नहीं है—तो क्या बात है कहते क्यों नहीं ? कष्ट हो या न हो, तुम जो कहोगे उसको मैं अभी करूंगी।" गुलाब की ऐसी सरलता देख कर बिजय का पाखण्ड अटल हृदय भी क्षणकाल के लिये बिचलित हो गया। यह बिचार कर कि इस निर्वोध बाला को किस प्रकार बिश्वासघातकता के कर्म्म में रत करता हूं, एक बेर उनका भी कठिन अंतःकरण द्रवीभूत हो गया। किन्तु क्षणकाल ही में पुनः उसका लोप हो कर फिर हिंसानल प्रज्वलित हो गया। उनको निस्तब्ध देखकर गुलाब डर गई और बोली "कहो न क्या बात है, कहने में भय क्यों करते हैं ? कोई अन्याय कर्म्म तो नहीं है ?" अन्यायकर्म्म में गुलाब की कुछ अश्रद्धा देख बिजय कार्य्यसिद्ध करने के निमित्त और भी दृढ़ हुये, और गुलाब को कार्य्य करने में सम्मत देखकर जो क्षणकाल उसके प्रति दया हुई थी वह जाती रही। वे कुकर्म्मी मनुष्यों के स्वभावानुसार गुलाब की श्रेष्टता न देख सके

गुलाब को पाप कर्म्म में रत करने की इच्छा कर बोले कि "मैंने तो समझा था कि तुम न कर सकोगी ।"

गुलाब—"अच्छा, क्या कहते हो सुनें भी, सुनकर बिचारूं कि कर सकूंगी वा नहीं ? किन्तु मेरे चित्त में नहीं आता कि तुमारे ऐसे मनुष्य के मन में किसी पाप इच्छा की सम्भावना हो ?"

बिजय क्षुब्ध होकर बोले "पहिले सुनो कि क्या कहता हूं, तद्पश्चात बिचारना कि पाप है वा और कुछ ।"

गुलाब—"कहो, सुनती हूं ।"

बिजय—"जिस रात्रि राजकन्या ने मुझे प्रेमाशा से निराश किया उसी रात को मैंने मन के कष्ट से प्रतिज्ञा की थी कि उन्होंने जिसकी प्रणया कांक्षिणी होकर मुझको तुच्छ समझा है उस से उनका वियोग न कराऊं तो मेरा नाम नहीं और उन्होंने जैसे मेरे सुख को जलांजली दी, मैं भी वैसाही करूंगा।" गुलाब दुखित होकर बोली "तो क्या तुमारा वह दुःख अब तक नहीं जाता । मेरा प्रेम पाकर भी अभी सुखी नहीं हुये ?"

बिजय—"नहीं मैं उस रात की बात कहता हूं । तुमारे प्रणय से तो अब सुखी हुआ, किन्तु उस समय तो इसकी आशा नहीं थी न ।"

गुलाब—"तो यदि अब सुखी हुये तो उस इच्छा को त्याग दो ।"

बिजय—"तो क्या, मैं प्रतिज्ञाच्युत होजाऊं! क्षत्रिय होकर प्रतिज्ञाच्युत हो जाऊं? मैं प्राण बिसर्ज्जन कर सकता हूं, सर्व्वस्व की जलांजली दे सकता हूं, यहा लों कि तुमारे अमूल्य प्रेम की आशा पर्यन्त परित्याग कर सकता हूं, किन्तु प्रतिज्ञा भंग नहीं कर सकता। तुमारे मुख से मुझे ऐसी बात सुन्ने की आशा कदापि न थी।" गुलाब ठिठक कर बोली "किन्तु मैं राजकुमारी का बिच्छेद किस प्रकार कराऊंगी?"

बिजय—"सो तो मै सिखला दूंगा, मैं जब जो कहूं तुम को वही करना होगा।" गुलाब और कुछ मतामत प्रकाश न करके बिजय के मनका भाव सुन्ने की इच्छा से बोली "अच्छा, क्या करना होगा, कहो न?"

बिजय—"प्रथम तो राजकन्या का यदि कोई बिशेष मूल्य का द्रव्य तुमारे पास हो तो वह मुझको देना होगा।"

गुलाब—"हां, उनकी नामांकित एक अँगूठी मेरे पास है। एक दिन राजकन्या के शय्या पर वह पड़ी थी मैंने देखा और उसको लेकर अपने पास रख लिया, किन्तु तब से फिर उसे देना भूल गई थी। तुमने चेत करा दिया तो अच्छा हुआ। जो हो, तुम उसको लेकर क्या करोगे?" चुपके से अंगूठी लेकर जो कार्य्य करना था, और उसके सहायता से जो गुलाब को करना पड़ेगा वह सब

बिजय ने कहा । गुलाब उसको सुन कर चिहुंक पड़ी । उसका धर्म्मभीरू स्वभाव और कोमल मन उस कर्म्म के करने से विरत हुआ । वह रोती हुई बिजय का चरण पकड़ कर बोली 'मैं यह न कर सकूंगी । राजकन्या मुझ पर इतना प्रेम रखती हैं, इतना मेरा बिश्वास करती हैं, फिर मैं क्योंकर ऐसा बिश्वासघात करूं ? तुमको और जो कुछ करना हो कहो मैं अभी करती हूं ।" बिजय सक्रोध बोले "अभी न तुमने कहा था कि 'मैं जो कहूंगा सो करोगी ? क्या मेरे प्रणय का यही प्रतिदान है, वृथा क्यों कहती थीं ? मैं जान गया कि तुम मुझको प्यार नहीं करतीं । यदि वह यथार्थ होता तो तुम ऐसा करती न ? तुमारे पूछने पर मैंने कहा था, नहीं तो कदापि न कहता । अब हमारे तुमारे हो चुकी, मैं जाता हूं ।' गुलाब निःशब्द रोने लगी, कुछ उत्तर न दे सकी, बिजय के प्रेम का कारण अब उसको मालूम हो गया । उसने समझ लिया कि बिजय मुझसे प्रीत नहीं रखते और मुझको भी ऐसे मनुष्य से प्रेम करना उचित नहीं है किन्तु बुद्धि और कारण द्वारा यदि न्यूनाधिक किया जाता तो पृथ्वी में इतनी अनिष्ट घटना क्यों होती ?

किसी कवि ने कहा है 'वह प्रेम नहीं हैं, जो दुःख, सुख, यश, अपयश में समान न रहै । न मैं जानता, और

न जानने चाहता हूं, कि मेरे प्रियतम के हृदय में कोई दोष है कि नहीं, मैं इतनाही जानता हूं, कि वह कैसाही क्यों न हो, मैं उसको प्यार करता हूं"।

गुलाब सब जान सुन कर भी बिजय के प्रति चित्त से स्नेह न त्याग सकी। उसका सरल और प्रेममय हृदय बिजय के पाने के हेतु और भी व्यग्र हो गया किन्तु राजकन्या के अनिष्टसाधन बिना उसके पाने का उपाय दूसरा नहीं है अतएव उससे भी नितान्त अनिचुक हुई। आत्मसुख के निमित्त राजकन्या को चिरकाल के लिये दुःख में डालना, यह भी उसके चित्त में न बैठा। कुछ भी स्थिर न हुआ कि क्या करे, उसकी बुद्धि बिबेचना सब लोप हो गई। एक बार बिचारा कि "नहीं राजकन्या का अनभल करके कभी सुखी न होऊंगी"। फिर जब देखा कि इसके न करने से जन्म पर्य्यन्त बिजय के पाने की आशा त्यागना पड़ैगा, तब सोचने लगी कि अच्छा, यदि बिजय के आज्ञानुसार कार्य्य करती हूं, तो क्या राजकन्या चिरकाल के लिये असुखी हो जायगी? इसका तो कोई कारण नहीं देखती। बिजय कहते हैं कि राजकन्या का बियोग करा देने से वे मेरे होंगे। तो यही क्यों न करूं? हमलोगों का जब विवाह हो जायगा, उसके पश्चात् राजकन्या और कल्याण से सब खोल कर सविस्तर वर्णन कर

दिया जायगा। इसके होने से वे लोग भी तो फिर सुखी हो जावैंगे! तो केवल उतनेही दिन कष्ट पावैंगे कि जब तक हमलोगों का विवाह न होगा, वह भी थोड़ेही दिन तक, पीछे तो फिर सुखी होही जावैंगे? मैं भी बिजय को पाकर सुखी हो जाऊँगी, और वे लोग भी होंगे। फिर वे दोनों व्यक्ति ऐसे उदारचरित हैं, कि जिस कारण से ऐसा कार्य्य करने में प्रवृत्त होती हूं उसको सुनने से मेरा अपराध क्षमा करेंगे और विवाह हो जाने से बिजय भी मुझ को त्याग न कर सकेंगे। फिर बिजय भी कैसे जानैंगे कि मैंने राजकन्या और कल्याण से सब कह दिया है। वे लोग मेरा अमंगल होना जान कर बिजय को भी कुछ न कहैंगे"।

अपने इच्छा आधीन होने में मन शीघ्र ही समझा जाता है। उसने इसी प्रकार मन को समझा कर अन्त में उस कार्य्य के करने का संकल्प किया। इतनी देर तक कोई उत्तर न पाकर बिजय जाने को उद्यत हुये, यह देख गुलाब ने अश्रुजल निवारण कर उनको बैठने के लिये कहा और बोली "मैंने अब समझा कि तुमने अपने कार्य्य सिद्ध करनेही के हेतु मुझ को प्रेम दिखलाया था, कुछ मुझ से प्रेम नहीं रखते। अच्छा तुमने जो कहा, यदि मैं उसके करने में सम्मत होऊं तो क्या यथार्थ ही आप मेरे हो जांयगे?"

बिजय—"मैं चन्द्र सूर्य्य को साची करके कहता हूं कि उस्के होने से मेरी गुलाब वास्तविक मेरी हो जायगी।"

गुलाब हर्ष पूर्व्वक बोली "अच्छा, तो मैं तुमारे लिये ऐसा पाप करने में भी प्रवृत्त होती हूं, देखना मुझे अन्त में त्याग मत करना"।

इतना सुन कर बिजय आह्लाद में मत्त हो गये और गुलाब के हृदय को जो इतने देर तक कष्ट दिया था उसके निवारणार्थ परस्पर के भविष्यत सुख का कथनोपकथन करने लगे। बिचारी गुलाब उसी में भूल गई। उसे शान्त देख कर बिजय बोले "राजा की आज्ञा से मैं कल्याण को बुलाने के लिये यहां आया हूं किन्तु तुमारे संग बातचीत करने में भूल गया था इसी से अब तक तुम से न कहा था"।

गुलाब—"तो मैं जाती हूं; कह आती हूं"।

बिजय—"चलो, मैं भी चलूंगा, देखूं तो वे लोग क्या बातचीत करते हैं"।

गुलाब—"मुझ से जो कार्य्य कराते हो क्या केवल उसी से शान्त न रहोगे? चलो जब इससे भी अधिक विश्वासघातकता करने को प्रस्तुत हुई हूं तो यह भी कर सकती हूं"

बिजय छिप कर उन लोगों की बात सुनने गये, किन्तु उन लोगों का वह सुखकर प्रेमालाप सुनने से उनको अत्यन्त कष्ट हुआ। वे दो एक बात सुन कर फिर अधिक न सुन सके। प्रत्येक बात से मानो उनके हृदय में बाण बेध होने लगा। गुलाब को लेकर उतर आये। नीचे आ बोले "मैंने जो कहा है उसके करने का इस समय अच्छा अवसर देख पड़ता है। राजाज्ञा जताने के लिये युवराज के पास मैं दूसरा आदमी भेजता हूं, तुम उसी मंच पर जाओ। जब देखना कि युवराज उस मंच के निकट हो कर सभा मे जाते हैं तो जो जो मैंने कहा है उच्चःस्वर से कहना, जिस में वे सुन लेवैं"।

पाठकों को स्मरण होगा कि जो जो करने के लिये बिजय ने सिखा दिया था वह सब पूर्व्वही प्रकाशित हो चुका है।

इतना कह कर बिजय सभा में आये। इस घटना के लिखने में जितना बिलम्ब हुआ, कार्य्य करने में बिजय को उसका आधा भी समय न लगा था।

—❀✲✲—

सोलहवां परिच्छेद ।

दिल्ली में घोरतर युद्ध का सामान प्रारम्भ होता है । कल्याण सैन्याध्यक्ष हैं, उनको और कुछ करने का अवकाश नहीं है केवल सैन्यसमूह और युद्ध के प्रबन्ध करने में व्यस्त हैं । हमने जिस दिन की बात कही है, तब से लेकर अब एक दिन भी उनसे राजकन्या से साक्षात नहीं हुआ । आज उसे देखने के लिये वे चचल हुये। थोड़े काल के लिये युद्धप्रबन्ध का भार अपने सहकारी दिलीपसिंह को देकर उन्होंने राजकन्या के निकट जाने का विचार स्थिर किया। किन्तु इसके पहिले दिलीप एकबार इनके पास आये थे इस कारण इस बात के लिये उनको अपने पास बुलाना उचित न समझ कर स्वयं उनके गृह पर गये ।

दिलीप भी इस समय एक दूसरे कार्य्य में व्यस्त थे । सन्यासी ने कहा था कि, "तुम्हारे के जलनिमग्न वस्त्र से तुम्हारे वंश का प्रमाण हो सकता है ।" किन्तु दिल्ली आने पर इस झमेले में दिलीप को इतने दिनों तक वह बात भूल गई थी आज स्मरण होने पर उन्हें उस वस्त्र के देखने की इच्छा हुई । वे कौतूहलचित्त से उस वस्त्र को बाहर लाकर उसे चारोओर उलट फेर कर देखने लगे परन्तु आशानुसार कुछ भी देखने में न आया । वस्त्र के किसी स्थान से कोई भी चिह्न दृष्टिगोचर न हुआ । जैसे

पहिले आत्मपरिचय से अज्ञात थे, अब भी वैसेही रहगये सोचने लगी कि "इससे किस प्रकार बंशसपरिमाण होगा?" फिर भी वस्त्र उलट पुलट कर देखने लगी, किन्तु जब किसी प्रकार आशापूर्ण न हुई, तो बिरक्त हो कर उस वस्त्र को दूर फेंक दिया। फेकने के संग दो तीन कागज के छोटे २ टुकड़े वस्त्र से भूमि पर गिरपड़े। उनका हृदय विह्वल होगया समझे कि इसी से मेरा परिचय मिलेगा! क्या आश्चर्य है कि अब तक देखने में न आया वे तुरन्त कागज़ उठाकर एक टुकड़े को पढ़ने लगी,—

महामहिम प्रबलप्रताप कुमार तेजसिंह महिमार्णवेषु।

'आपके भ्रातृपुत्र महाराज जयचन्द्र आपके उस बात से क्रुद्ध होकर मन्द चेष्टा करते हैं, सावधान रहियेगा।

आपका शुभाकांक्षी श्री—"

यह क्या? इसका क्या अर्थ है? इसमें उनका परिचय कहां है? दिलीप ने इस पत्र में जो देखने की आशा की थी, कुछ भी न पाया। वे नितान्त अधीर होकर दूसरा टुकड़ा पढ़ने लगी।—

महामहिम प्रबल प्रताप......तेजसिंह......।

जयचन्द्र का क्रोध अब तक नहीं गया। उन्होंने आप के निर्वासन करने की इच्छा प्रकाश की है। आप यदि जयचन्द्र के क्रोध का समय... ... ...इच्छा... ... ...तो

अपनी कन्या शैलवाला को मेरे निकट रख कर आप भाग जावें ! श्री * * *

शैलवाला का नाम पढ़ कर दिलीप चकित हो उठे, उनको स्मरण हुआ कि जिस दिन सन्यासी अपने कुटी में शैलवाला और उसके पिता को लाये थे, उस दिन सन्यासी के हाथ में उन्होंने इस प्रकार के कई एक कागज के टुकड़े देखे थे। बालिका के पिता ने जब उन पत्रों को जल में फेंक दिया था, उस समय यथार्थ में सन्यासी उसको उठा लाये थे। किसी समय वैराग्य में हिताहित विवेचना शून्य होकर मनुष्य जिसको फेकते हैं दूसरे समय वही उनके काम आ सकता है, यही समझ कर सन्यासी ने उसको उठा कर रख छोड़ा था, किन्तु बालिका के पिताने उस को न देखा था। सन्यासी ने उस पत्र को पढ़ा था कि नहीं इस में सन्देह है, क्योंकि मृत्युकाल में उस बात को कुछ भी उल्लेख न किया। किम्बा उस समय उनको वह बात स्मरण न रही हो ऐसा भी हो सकता है। दिलीप आत्म-परिचय का अनुसन्धान करते थे उसमें शैलवाला का परि-चय प्राप्त होने से अतिशय आह्लादित हुये। वे बिचारने लगे कि "अज्ञातकुलशीला शैलबाला क्या कुमार तेजसिंह की कन्या है? तो मेरी शैलबाला क्या सत्यही राजकुलाङ्गना है? दिलीप इसी प्रकार मन में तर्क वितर्क कर रहे थे,

कि इतने में कल्याण उनके गृह पर आ उपस्थित हुये। कल्याण को देख कर दिलीप ने त्रस्तभाव से उन पत्र इत्यादि को छिपा दिया। गृह में आतेही कल्याण की दृष्टि भूमि पर पड़े हुये वस्त्रों पर पड़ी। वे राजवस्त्र देख कर आश्चर्य हुये। जिस समय पगली किरण को ले गई थी, उस समय किरण केवल ५। ६ वर्ष के थे। उस समय की घटना कल्याण को कुछ भी स्मरण न थी, तथापि उस वस्त्र को देखतेही उनके मन में आया कि यह वस्त्र कभी देखा था। दिलीप से पूछने लगे "यह वस्त्र किसका है?"

दिलीप—"सुना है कि मेरी बाल्यावस्था का है"।

कल्याण—"तुमने राजपरिच्छेद कहां पाया? मेरे ध्यान में आता है कि जैसे मैंने इसको कभी पहिले भी देखा है। तुमारे सम्बन्ध में मुझ को कुछ सन्देह होता है और तुम से जब मेरा साक्षात् होता है, तो तुमारे बातचीत से वह सन्देह और भी दृढ़तर हो जाता है। जो हो यह तो कहो कि तुमारे बाल्यावस्था का वस्त्र आज भूमि पर क्यों पड़ा है?"

दिलीप—"सन्यासी ने कहा था कि उस वस्त्र में तुम अपना परिचय पाओगे इसीलिये इसको लाकर मैं देख रहा था। कुछ न मिलने से विरक्त होकर फेंक दिया है"। कल्याण चित्त लगा कर उनकी बातें सुनने लगे। दिलीप

से उन्होंने जो २ बातें सुनी थी उससे उनको दिलीप के प्रति किरण का भ्रम होता था। उत्तरोत्तर वह दृढ़ीभूत हुआ। किन्तु जब तक कोई स्पष्ट प्रमाण न पाया जाय, तब तक अपने मन का भाव प्रकाश करना न चाहा। क्योंकि यदि अन्त में दिलीप किरण न ठहरेंगे तो समरसिंह आशा पाकर निराश होने में और भी अधिक कष्ट पावेंगे। कल्याण बोले "तुमने उस दिन कहा था न, कि संन्यासी ने कहा है कि तुमारे कण्ठ के कवच (तावीज़) में तुमारा यथार्थ नाम है, उसको मुझे क्यों नहीं दिखलाया ?"

दिलीप—"काम काज से सावकाश नहीं पाया। किसी समय उस्को दिखला दूंगा"। इस समय दिलीप की इच्छा यह न थी कि कल्याण अधिक काल लों यहां रहैं। इस समय उनका ध्यान केवल उन्हीं पत्रोंही की ओर था और यही चाहते थे कि कब कल्याण जावैं और फिर मैं उन पत्रों को पढ़ूं और शैलबाला का परिचय प्राप्त करूं, इसी लिये वे अधीर हो गये थे कि इस समय कवच दिखाने से कल्याण शीघ्र न जावेंगे इस कारण कवच न दिखाया। कल्याण की भी इच्छा यहां अधिक ठहरने की इस समय न थी। उनका चित्त भी राजकन्या के देखने को व्याकुल था। परस्पर दोनों का मन दूसरी२ ओर आकर्षित होगया था। कल्याण भी इस समय कवच देखना न चाहते थे किन्तु जो

बात कहने आये थे, कह कर झटपट चल दिये। उनके चले जाने पर पत्रों को लेकर दिलीप पुनः सानन्दचित्त से पढ़ने लगे। पत्र के पाठ से मालूम हुआ, कि शैलबाला के पिता, कान्यकुब्जाधिपति जयचन्द्र के सम्बन्ध में पितृव्य (चचा) थे, दोनों महाशयों में किसी विवाद होने के कारण जयचन्द्र ने तेजसिंह को देश से बाहर कर दिया था। इस प्रकार अपमानित हो कर वे लज्जा और घृणा से छद्मवेश में कालक्षेप करते थे। सत्य है ऐसे अवसर में परिचित लोगों से मुख दिखलाने में लज्जा करना क्या आश्चर्य्य है? दिलीप पत्रों को बारम्बार पाठ करने लगे पढ़ते २ उनके नेत्रों से आनन्दाश्रु धारा चल पड़ी, शैलबाला की शैशव-क्रीड़ा सब चित्त पर चढ़ने लगी, उसे फिर देखने से उन का हृदय चंचल हो गया। मनोवेग स्थिर करने के लिये वे फिर उन पत्रों को आद्योपान्त पढ़ने लगे किन्तु जयचन्द्र के संग उनके पितृव्य के विवाद का कारण पत्र में कुछ भी न पाया गया।

इधर कल्याण दिलीप की बातों पर ध्यान करते हुये राजकन्या के गृह पर उपस्थित हुये। द्वारही पर गुलाब देख पड़ी। उसे देख उनको एक और बात स्मरण हुई, सगर्व्व बोले "क्यों रे, राजकन्या के दुश्चरित्रा होने का प्रमाण तू नहीं दे सकी न?" गुलाब बोली "आप मेरी

इतनी तर्जना क्यों करते हैं। मुझे प्रमाण दिखलाने की क्या आवश्यकता है, यदि सत्य है तो आपही आप को देख पड़ैगा, यह न होता तो आप आज आते क्यों ? आज यहां बिजय के आने की बातचीत है, आप का आना उनको न जनाऊंगी, बस वे गृह में प्रवेश करैंगे" इस मिथ्या बात के कहने में गुलाब ने धीरे २ एक लम्बी सांस ली नेत्रों में जल भर आया, किन्तु राजपुत्र ने इसको न देखा। गुलाब की बातों से कल्याण का हृदय जैसे कुछ बिचलित हो गया। बिजय का नाम सुन कर यमुनास्तम्भ पर राजकन्या का जो भावान्तर हुआ था वह सहसाचित्त पर चढ़ गया। बारम्बार रगड़ खाने से काष्ट मे यदि अग्नि की चिनगारी उड़े तो क्या आश्चर्य्य है ? किन्तु यह चिनगारी स्पर्श मात्र थी, अभी तक प्रज्वलित न हुई थी। इस अग्नि के प्रगट होने का कोई फल हुआ कि नहीं अभी तक मालूम नहीं हुआ। कल्याण अपने मन में कहने लगे कि "गुलाब जो कहती है, क्या यह सत्य है ? क्या उस दिन उषावती इसी कारण मेरे सन्मुख बिजय का नाम सुन कर चिहुंक उठी थी"। गुलाब से उन्होंने कहा कि "तुम जो कहती हो, वह यदि सत्य है, यदि बिजय इस समय यहां आये, तो मैं अवश्य तुमारे बात का विश्वास करूंगा"। कल्याण वहां से राजकन्या के गृह पर

गये, देखा, कि राजकन्या करपल्लव से मुखकमल छिपा कर पलंग पर सोई हैं । राजपुत्र निःशब्द निकट आये। राजकन्या ने उन्हें न देखा, किन्तु कल्याण खड़े हो कर उसे देखने लगे । क्षण काल के लिये उनके मन में राजकन्या के प्रति सन्देह हुआ था यही समझ कर अपने को धिक्कार देने लगे । अपने मन में बोले "छिः, मैं कैसा पापिष्ट हूं!" राजपुत्र का स्वर सुन उषावती ने चिहुंक कर मुख से हाथ हटा लिया । तब युवराज को उसका मुख देख पड़ा, देखा कि वह रो रही है ।

यदि हमारे पाठकों को ऐसा अवसर पड़ा हो तो वेही अपने मन में बिचार कर देखें, कि सुन्दरी युवती का बदनमण्डल निःशब्द रोदन करने में कैसा मनोहर बोध होता है ? क्या यह रमणीगण के हास्यपूर्ण बदनमंडल से अधिकतर मधुर नहीं है ? सुन्दर गुलाबपुष्प जब ओसकण विन्दु के भार से झुक जाता है, उस समय क्या वह और भी रमणीय बोध नहीं होता ? सूर्य्य के तीक्ष्ण उज्वल किरण के परिवर्तन से जब हीन कान्ति चन्द्रमा की अपरिष्फुट कोमल ज्योति बिकीर्ण होती है, क्या उस समय पृथ्वी और अधिक शोभायमान नहीं होती ? दिन में श्वेत वर्ण उज्वल गगन प्रान्त के बीच २ में कभी २ कृष्णवर्ण मेघ चला जाता है, उस समय क्या उस उज्वलता की और भी श्री वृद्धि नहीं होती ?

उषावती के उज्वल रक्तनयनपल्लव ओसकणयुक्त गुलाब की भांति छोटे २ अश्रुबिन्दु से भींग गये हैं। और वे पूर्ण हो कर किञ्चित् क्रमशः कपोल पर बहते हैं, मानो निःशब्द मृदु झरना बह रहा है। उसका सुचिक्कन केशजाल पुष्पवेष्टित मनोहर बेनी की भांति आबद्ध नहीं है, बिथुर कर मुखमण्डल और दोनों कपोलों को स्पर्श करता हुआ वक्षस्थल पर और पीठ पर पड़ा हुआ है किसी किसी स्थान पर अश्रु से भींग भी गया है; स्थिर और अश्रुसिक्त लोचन अवनत हैं, शरीर स्तम्भित, ओष्टाधर बन्द, थोड़ा थोड़ा कभी २ फरक उठता है। राजपुत्र उसका रूप देख कर मोहित हो गये। मन में सोचने लगे कि ऐसी सुन्दरता तो मुझको कभी नहीं प्रतीत होती थी। कुछ देर में मुग्ध की भांति बोले "उषा! रोती क्यों हो?" राजकन्या कुछ नहीं बोली। उन्होंने फिर पूछा, फिर भी कुछ उत्तर न मिला, वह रक्त बदन मण्डल धीरे २ आपही आप नीचा हो गया—विषस मुख लज्जा और राग से शोभित हो गया। युवराज सोहाग के अभिमान से पूर्ण हो कर फिर पूछने लगे, किन्तु इतना पूछने पर कोई उत्तर नहीं पाया और न यह समझ सके कि यह क्यों रोती है। राजकुमार प्रेममय मधुर स्वर से फिर पूछने लगे और उषावती का कर पकड़ एक श्वेत प्रस्तर-

मंडित भवन में जो उस गृह से कुछ हट कर था ले गये। इसी समय एक पुरुष हठात् राजकन्या के गृह द्वार पर आया और कल्याण को देखते मात्र जैसे व्याघ्र देख कर हरिन भागता है भाग गया। राजपुत्र ने बिजय को पहिचाना। इस बार चेष्टा सफल हो गई, काठ में जो आग लगी थी, वह भभक उठी। समस्त ब्रह्माण्ड उनके नेत्र में मानों चतुर्दिक प्रलयबिप्लवसा हो गया, क्षण २ उनके नेत्रों के सन्मुख जैसे बिजुली सी चमक जाती थी, सर्व शरीर कण्टकित हो गया, क्रोध से मूर्ति भयङ्कर हो गई, उन्होंने बेग से राजकन्या का हाथ छोड़ा कर किनारे कर दिया। राजकन्या ने अपने दुःख में व्यस्त होने के कारण बिजय को न देखा, अकस्मात् कल्याण का यह भाव देख कर वह आश्चर्य हो गई। राजकन्या ने अब तक कल्याण का मुख भली भांति न देखा था, अब जो देखा तो रक्तवर्ण पाया, देख कर भयभीत हो गई। कल्याण बोले "पापिनि! जिस हेतु तू रोती थी उसे मैंने अब समझ लिया! मालूम हुआ कि उसी के कारण मेरी बातों का उत्तर न दे सकी! हठात् क्या कह कर उत्तर देती सो तो तेरे समझ में न आया, मैं कैसा निर्बोध हूं! मैं समझता था कि मेरा युद्ध में जाना समझ कर रोती है! मैंने स्वप्न में भी नहीं समझा कि तू दूसरे के लिये रोती है"!!! उषावती इस बार

चुप न रह सकी अति कातर और गम्भीर स्वर से बोली "क्या मैं तुमारे हेतु नहीं रोती थी ?"

उषा—"मैं दुश्चरित्रा हूं यह तुमारे मुख से निकले और मुझे जीते जी यह सुनना पड़े ? हाय! राजकन्या के मस्तक पर मानो बज्र टूट पड़ा। राजपुत्र ने जो उसके प्रति सन्देह किया था उसको अब समझ गये कल्याण बोले "हां, तुम सती हो, इसी से न बिजय को प्रणयो· पहारस्वरूप अंगूठी दी है ? तुम सती हो, इसी कारण न उसको प्रेमी बनाकर भी मुझे स्वामी रूप ठहराती थीं? पापिनी! तू केवल दुश्चरित्रा होकर भी शान्त नहीं रही कपटिन की भांति मिथ्या प्रणय के फन्दे में मुझे फंसाया! तुझे दुश्चरित्रा जानकर भी मैं उस बन्धन को खण्डित नहीं कर सकता मेरे जीवन का सुख बिलुप्त हुआ। उः, क्या मैं मुग्ध हो गया था ? गुलाब के बातों का किसी प्रकार विश्वास नहीं करता था, यदि अपने आखों से न देखे होता तो बोध होता है कि किसी प्रकार भी मैं बिश्वास न करता।" कल्याण की बातों से राजकन्या आश्चर्य्ययुत होकर कहने लगी "क्या तुमने अपनी आखों देखा है ? मैंने कब बिजय को अंगूठी दी है ?" राजपुत्र नें आगे न कहने दिया बोले "बस,-बस—जो किया सो यथेष्ट किया। अब अधिक मिथ्या बोलकर पाप मत

बढ़ाओ। यदि स्वयं नहीं देखता तो तुमारी बात का बिश्वास करता। मैं तुम्हें कुछ नहीं कहता तुमारा हृदय तुमको नरकयन्त्रणा देगा। मैं अब जाता हूं। युद्ध में प्राण त्याग करने जाता हूं। मैं सुख को बिदा करने आया था, आज आजन्म के लिये बिदा होता हूं। तुमको एक समय इसका फल भोगना पड़ेगा। यदि मन में कुछ भय हो— तो अनुताप करो, प्रायश्चित्त करो।" इतना कह राजपुत्र उस भवन से शीघ्रता पूर्व्वक चले गये। राजकन्या इस समय मौन होकर रोने लगी नेत्रों में अन्धकार छा गया, फिर खड़े होने की शक्ति न रही। मूर्छित हो श्वेत पत्थर पर जो उस भवन में जटित था गिरपड़ी किन्तु इसको राजकुमार ने नहीं देखा। गुलाब छिप कर द्वार पर से ये बातें देखती थी, राजकन्या को गिरते देख उसका हृदय खेद से पूर्ण होगया, फिर उसने अपने सुख की इच्छा न की। उसके चित्त में आया कि कल्याण से सब वृत्तान्त खोल कर कह दूं, किन्तु फिर बिचारा कि अभी अवसर नहीं है। यदि मैं कहने के लियेजाऊं तो इधर राजकन्या की मूर्छा कौन छोड़ावैगा? इतना बिचार गुलाब शीघ्रता से राजकन्या को चैतन्य करने का यत्न करने गई। फिर सोचा कि राजकन्या को सचेत कर उनके निकट अपना दोष स्वीकार करके तब कल्याण से कहूंगी। भवन में पहुंच

उसने देखा कि शीतलग्रस्ता कुञ्चित कमलनी को भांति राजकुमारी अचेत पड़ी हैं। मुख पर पिअरी छा गई है, कपोल और ओष्ट से स्वेद के बुन्द टपक रहे हैं। गुलाब ने जल लाकर राजकन्या के मुख और चक्षु पर छिड़का और वायु सेवन कराने से उनको एक बेर कुछ ज्ञान हुआ, किन्तु फिर मूर्छित होकर गिर पड़ी। गुलाब अपने मन में डर गई। उसका साहस न हुआ कि राजकन्या की अवस्था छिपावे झट एक परिचारिका द्वारा राजमहिषी के नि· कट उनका सम्वाद भेज दिया, और उनको गोद में लेकर पलंग पर शयन कराने के निमित्त उठी। किन्तु यह क्या? यह बून्द २ रक्त राजकुमारी के कपाल से कैसा टपक रहा है? भली प्रकार देखा तो विदित हुआ कि केश भी रुधिर से किंचित भींग गये हैं, तब तो वह और भी डर गयी और समझी, कि राजकुमारी को पत्थर से कड़ी चोट लगी है। उसने धीरे २ रुधिर को धोया और पलंग पर लाकर शयन करा दिया।

इधर दासी उस सम्वाद को लेकर राजमहिषी के गृह पर उपस्थित हुई। महिषी की अवस्था ३२ वर्ष की होगी। उनको अभी पूर्ण यौवना कहना चाहिये। वह शृंगार करके बैठी हैं; उनकेसन्मुख एक सभासद आगामि युद्ध का प्रवन्ध ज्ञात कराता है। उन्होंने दासी को देख कर उसके आने का कारण पूछा।

दासी बोली 'राजकन्या अचेत होगयी हैं' आप चलकर देखिये तो कि क्या हुआ है" उषावती उनकी एक मात्र सन्तान थी, कन्या को कुछ होने से वे अत्यन्त अधैर्य हो जाती थीं। यह सुनकर कि राजकन्या अचेत हो गयी है वे तुरन्त सभासद को विदाकर राजकन्या के गृहपर चली आईं। देखा कि राजकन्या मृतवत् पड़ी है, और गुलाब सचेत करने की चेष्टा कर रही है। महिषी ने गुलाब से राजकन्या के अचेत होने का कारण पूछा। गुलाब कुछ उत्तर न दे सकी। विचारालय में अपराधी व्यक्ति की भांति गुलाब भयभीत हो गयो। उसका मुंह सूख गया, कुछ बात न निकली। केवल उसके नि:शब्द रोने की अश्रु-धारा ने राजमहिषी के प्रश्न का उत्तर दिया। उसे नि:शब्द देख परिचारिका गण इस समय बात कहने का सुअवसर पाकर उस विषय में अपने २ मन का भाव प्रकाश करने लगीं। कोई अति कष्ट से आखों में आंसू भरकर महिषी को दिखलाने के हेतु क्रोध प्रगट करने लगी, कोई यत्न करके दीर्घ निश्वास त्यागने लगी, किन्तु इस सन्देह से कि महिषी देखती हैं कि नहीं, वे सब निकट आकर बैठीं, सब की सब राजकुमारी की पीड़ा का एक एक कल्पित बात बनाने लगीं, अन्त में एक प्रवीणा परिचारिका बोली "नहीं, नहीं, यह सब कोई बात नहीं है। आज कल्याण

आये थे। उनके संग युद्ध की बात हुई होगी ? जब तक रहे वार्त्तालाप में मन बहला था, उनके जाने से युद्ध की बात स्मर्ण होकर विपद की आशंका चित्त पर चढ़ गयी है, अभी निपट बालिका है भय भीत हो गयी है, इसी कारण मूर्छित हो गिर पड़ी है।" सब की सब बोल उठीं "बस बस यही ठीक है।" राजमहिषी के चित्त में भी यही बात आई। इसके भिन्न उनको और दूसरा कारण देखने में न आया। उन्होंने सब को चुप रहने की आज्ञा दी और चिकित्सक को बुला भेजा। वैद्य ने आकर देखा कि अब तक ज्ञान नहीं है, वैसही समभाव है, किन्तु अज्ञानावस्थाही में ज्वर आरम्भ हो गया है। राजकन्या कहां, किस प्रकार और कब की मूर्छित हुई है, चिकित्सक ने यह सुन कर कि पत्थर की चोट से मस्तक रक्तारक्त हुआ है उत्तमरीत से परीक्षा कर मस्तक देखा और बोले "मस्तक में अधिक चोट आई है, इसी से और भी चेतना नहीं होती और इसी कारण ज्वर आरम्भ हो गया है। मस्तक की जैसी अवस्था देखता हूं सांघातिक होने का सम्भव है। मुझको अकेले चिकित्सा करने का साहस नहीं होता।"

लेप और औषधि की व्यवस्था करके राजवैद्य तुरन्त दूसरे २ वैद्यों को लाने के लिये गये। इधर राजमहिषी

रोदन करने लगीं। यह समझकर कि एक मात्र कन्यारत्न से वंचित होना पड़ेगा, वे आहार निद्रा त्याग कर कन्या की शुश्रुषा करने में तत्पर हुईं।

सतरहवां परिच्छेद।

कल्याण गृह पर आतेही प्रथम शीघ्र आत्ममृत्यु का उपाय सोचने लगे। प्रतिक्षण उनका जीवन क्रमशः ऐसा क्लेश कर होने लगा कि उस निकटवर्त्ती युद्ध की अपेक्षा करना भी उनके निकट एक युग समान बोध होने लगा। और उसके भिन्न कोई दूसरा सन्मान जनक मृत्यु का उपाय न देख कर आगामि युद्ध तक कष्ट से प्राणरक्षा करने में बाध्य हुये।

इस भांति मृत्यु का उपाय स्थिर होने पर उस समय उनके मन में दूसरी २ बातें आने लगीं। एक एक करके पिता, माता (विमाता) चितौर सब चित्त पर चढ़ आया वह सुखमय जन्मभूमि, वह रम्य पर्वतावृत्त चितौर नगरी, फिर वहां नहीं जाना होगा, अन्तिम देखा देखी कर आये हैं। मरनेही के निमित्ती स्वदेशत्याग किया था। विमाता कमला देवी — वह कल्याण से अतिशय स्नेह रखती थीं, उनके संग जन्म भर के लिये साक्षात कर आये हैं उनका स्नेहमय मधुर स्वर फिर कभी नहीं सुने में आ

वेगा। बाल्यावस्था में कल्याण मातृहीन हैं, किन्तु कमला देवी के गुण से मातृहीन किसको कहते हैं यह कल्याण न जानते थे। कमलादेवी ही उनकी माता थीं उन्हीं को वे निज माता की भांति जानते थे। मृत्युकाल में उनके संग एक बार अन्तिम साक्षात नहीं होगा। मरने के पूर्व्व एक बार माता कह कर न पुकार सकेंगे पिता समरसिंह, उनके स्नेह में पूर्ण पुत्रवत्सल पिता हैं, उस पिता को इस बार जन्म प्रयंत को त्याग कर जाना होगा। पिता की स्नेहपूर्ण मूर्त्ति क्या वह फिर कभी न देखने पावेंगे। उनका मधुमय उपदेश फिर कभी उनका कर्ण शीतल न करैगा। कल्याण समरसिंह के नयनानन्दवर्द्धक, वृद्धावस्था के आशा, जीवन के सुख, किरण खोजाने के अवधि से कल्याणही उनके सर्व्वस्व हैं। उनके मरने से उनके पिता का हृदय शून्य हो जायगा। किस प्रकार समरसिंह उसको सहैंगे? कल्याण के मृत्यु होने पर पुत्रवत्सल पिता किस प्रकार जीवन धारण करैंगे। पिता की बात स्मरण करके कल्याण को अत्यन्त कष्ट होने लगा। हाय! जब मैं चित्तौर से आता था तो किसको इसका ध्यान था कि मैं इस प्रकार भग्नहृदय प्राणत्याग करूंगा। जब मैं राजकन्या के प्रेम में मत्त हुआ था, तो किसके मन में यह बात थी कि उसका परिणाम

ऐसा होगा। उस समय चतुर्द्दिक सुख, आशा, प्रेम, राजकन्या, यही देख पड़ता था। यदि युद्ध में मरा, तो सुख स्वप्न देखता हुआ, राजकन्या के मुख का ध्यान करता हुआ, अपने मृत्यु से राजकन्या की कातरता और रोदन का स्मरण करके आप भी उनके दुःख से अश्रुपात करता हुआ मरूंगा यही सब बातें मन में आती थीं। भला यह कौन जानता था, कि मृत्यु काल में स्नेहमयी राजकन्या को न देखकर विषधरी भुजंगिनी देखते हुये, जीवन को सुखकर न जान कर घृणाकर बोध करते हुये, राजकन्या को प्रेयसी कहकर सम्बोधन करने के जगह पापीयसी कहकर तिरस्कार करते हुये, प्रेमाश्रु के स्थान पर वैराग्याश्रुपात करके हम प्राण विसर्ज्जन करेंगे? और यही कौन जानता था कि हम युद्ध में प्राण त्याग करेंगे? आशा तो यह थी कि युद्ध में यवनों का पराजय करके जय जय नाद के मध्य होकर दिल्ली फिर आवेंगे। जय पताका उड़ाते हुये पिता पुत्र से, भ्राता भगिनी से, पति पतिनी से, सजलनयन आनन्दित चित्त से परस्पर आलिंगन करेंगे, ईश्वर को धन्यवाद देंगे, युद्ध के शेष होने पर हमलोगों का विवाह होगा। पृथ्वीराज उषावती को हमारे हाथ प्रदान करेंगे, हर्ष के उमंग में, आशा पूर्ण हृदय से हम उसका पाणिग्रहण करेंगे। उषावती,—प्रेममयी उषावती,—रमणी रत्न उषावती,—इ-

भारी होजावेगी ! उषावती के मुखपर आनन्द प्रकाश होगा।
हम से वह सकल सुख भोगेगी । विवाह करके नवबधू
लेकर हम फिर चित्तौर की यात्रा करेंगे । बधू देखकर
विमाता के अह्लाद की सीमा न रहैगी । यही सब बातें
उनके मन में आती थीं ।

हाय ! अब वह सब आशा समूल नष्ट हो गई, कल्याण
का सुखप्रदीप निर्वाण हो गया । जीवन असह्य हो उठा ।
किन्तु हमारे मृत्यु होने से समरसिंह अत्यन्त मनोवेदना
पावेंगे और उनकी सकल आशा विलुप्त हो जायगी, यही
बिचार करके कभी २ कल्याण मृत्यु विषय में विचलित
होने लगे । अन्य २ नाना प्रकार की बातें मन में आने
लगीं—हमारे मृत्यु होने पर चित्तौराधिपति कौन होगा?
क्योंकि उन्होंने सुना था कि समरसिंह उनके अन्य दो
भ्राता को राज्य देने में इच्छुक नहीं हैं । वे लोग राजा
होने के उपयुक्त नहीं हैं । उनके मरने से भला चित्तौर
की क्या दशा होगी ? समरसिंह तो अब प्रौढ़ हो गये हैं,
और अधिक दिन राज्यभार अपने हाथ में रखने के समर्थ
नहीं होंगे, और बारम्बार शोक पाते पाते शीघ्रही अधिक
असमर्थ हो जा सकते हैं । हमारे मरने से राज्य कौन दे-
खेगा ? वे अतिशय क्लेशित हुये । बिचार करने लगे 'मरने
में सुखी तो होऊँगा, किन्तु मरने के अनन्तर भी फिर

विघ्न ! ओः—यदि किरण रहता, तो यह कोई बाधा न होती, निर्विघ्न और निश्चिन्त हो मैं मर सकता, पिता के निमित्त भी सोचना न पड़ता, चित्तौर के लिये भी कुछ बिचारना न पड़ता। किरण के रहते मेरी मृत्यु पिता को भी उतनी कष्टदायक न होती। किरण के प्रति उनका स्नेह, आशा, भरोसा सब ठहर सकता था। किरण को राज देने में पिता को कोई उज्र नहीं होता"। किरण की बात मनमें आते २ उनको दिलीप की बात चित्त पर चढ़ गई। दिलीप की बात से फिर उनके कवच की बात स्मरण हुई। उसी समय दिलीपसिंह उस गृह में आकर उपस्थित हुये। और दिन तो दिलीप को देख कल्याण हँसकर बुलाते थे, आज उनको विषण्ण और मौन देखकर दिलीप संकुचित भाव से गृह में एक किनारे खड़े हो रहे। कल्याण कुछ देर पर उन्हें निकट आने का संकेत कर बोले "क्या है? किस प्रयोजन से आये हो? मैं अभी तुमारेही निकट जाने का बिचार कर रहा था, उस कवच के देखने के लिये मुझे अत्यन्त कुतूहल उत्पन्न हो गया है"। दिलीप बोले "आप के निकट मेरे आने का कोई दूसरा प्रयोजन नहीं है, उस कवचही को दिखलाने आया हूं"। दिलीप ने गले से स्वर्णहार युक्त कवच निकालकर कल्याण के हाथ में दिया। कवच में जो नाम खुदा था उसको पढ़कर कल्याण

को आश्चर्य्य हुआ। उन्होंने सुना था, कि किरण का नाम खुदा हुआ एक रक्षाकवच किरण के गले में रहता था और इसी कारण दिलीप का कवच देखने से वे उस प्रकार व्यस्त हुये थे। उन्होंने आश्चर्य्य प्रकाश नहीं किया और धीरे २ बोले "यह कवच संन्यासी ने कहां पाया था?"

दिलीप—"मेरे गले से?"

कल्याण—"अच्छा, संन्यासी ने किस देश में तुम को पाया था इसको तुम जानते हो? तुमारे मुंह से मैंने और दूसरी २ बातें सुनी थी किन्तु यह नहीं सुना"।

दिलीप—"उन्होंने कहा था कि चित्तौर में—"।

कल्याण—"चित्तौर में?" दिलीप बोले "हां—"

कल्याण—"संन्यासी के मुख से तुमने अपना वृत्तान्त जो जो सुना है, उन सब बातों को स्पष्ट करके मुझ से कहो मैं अत्यन्त आह्लादित होऊंगा"।

दिलीप—"संन्यासी एक दिन रात को आंधी पानी निकल जाने पर चित्तौरनगर के नदी तीर पर भ्रमण करते थे। तीर पर मुझ को मुर्दे की भांति पड़ा हुआ देख कर उठा लिया और सजीव करके उसी दिन से सन्तानवत् मेरा प्रतिपालन किया था। तब तक मेरे गले में यह कवच था। संन्यासी ने अपने मृत्यु समय कहा था कि 'इसी कवच में तुमारा यथार्थ नाम है'। सांस बन्द हो

गया इस कारण वे कुछ और मुझ से न कह सके। 'तुम चित्तौर'—शेष में इतनाही कह कर उनका शरीर छूट गया। यहां आने पर एक दिन मैंने कवच निकाल कर देखा और पढ़ा था। किन्तु जल निमग्नवस्त्र देखकर जैसे अपना परिचय पाया, उसी भांति इसे भी परिचय पाया है। इसमें लिखा है 'किरणसिंह'। किन्तु किरणसिंह देख कर मैं कैसे परिचय पाऊँगा, वरन पिता का नाम होता तो आत्म परिचय मुझ को प्राप्त हो सकता था मुझ को और परिचय पाने की आशा नहीं है। मेरे परिचय पाने की यदि आपको अभिलाषा थी, तो आप भी उससे परितृप्त होने की आशा अब त्याग करें"। कल्याण अब और अधिक क्षण अपना आनन्द छिपा न सके। अब उनको इसमें कोई संशय न रहा कि दिलीपसिंह वास्तव में किरणसिंह हैं। उनके निराश हृदय में आशा का संचार हुआ, उस गंभीर दुःख में भी एक आनन्द उदय हुआ। वे बोले "तुमारा परिचय मुझ को मालूम हो गया और मेरा सन्देह निवृत्त हुआ। अब अपने परिचय के निमित्त तुम को निराश होना न पड़ेगा। मैं तुमारा परिचय तुम को दूंगा। तुम मेरे बन्धु से भी नगीची हो इसको मैंने अभी जाना है। आज तक इसका मुझे सन्देहही सन्देह रहता था, किन्तु नितान्त दुराशा जानकर उस सन्देह को हृदय में स्थान

नहीं देता था, वही सन्देह आज सत्य हुआ, इतने दिन की दुराशा आज सफल हुई। मैं सर्वदा यही आशा करता था, यही इच्छा करता था, कि जिसमें यही हृदयबन्धु, यही प्रियसखा दिलीप मेरा वही स्नेह धन किरणसिंह हो। सचमुच आज मेरी वह इच्छा पूर्ण हो गई, मैं समझ गया, यथार्थ में तुम्हीं मेरे कनिष्ट भ्राता, तुम्हीं मेरे किरण हो, आओ, तुम को एक बार आलिंगन करके इतने दिन का साध पूर्ण करूं"। कल्याण ने स्नेह से पूर्ण होकर उन को आलिङ्गन करके फिर उनका जीवनवृत्तान्त सविस्तर कह दिया। दिलीप को अपना परिचय पाकर अह्लाद से बोलने की शक्ति न रही, आखों में आंसू भर उनको भली भांति आलिंगन कर लिया।

कल्याण फिर बोले "इसके थोड़ही देर पूर्व मैं किरण को पुन: पाने की इच्छा में व्याकुल होता था, इसी लिये देवी चतुर्भुजा ने मेरी मनोकामना पूर्ण की। मैं सोचता था कि मेरे मरने पर चित्तौर की क्या दशा होगी, पिता का शोक कैसे निवारण होगा, इसी से चतुर्भुजा ने तुमको मेरे निकट प्रेरण करके मुझको प्रबोध किया। मैं अब निश्चिन्त होकर मर सकूंगा" दलीप कल्याण की बात सुन कर अतिशय आश्चर्य्यित हुये। आत्म परिचय पाकर जो हर्ष हुवा था, अकस्मात् कल्याण के मुख से उनके मृत्यु

की बात सुन तुरन्त उनके चित्त से वह हर्ष मिट गया, कुछ प्रगट न हुआ । कल्याण बोले "हमारी बात से आश्चर्य मत हो। जो कहता हूं ध्यान दे कर सुनो ।" दिलीप और भी आश्चर्य हो कर एक टक देखने लगे, कल्याण को कुछ उत्तर न दे सके। कल्याण बोले 'पिता के मृत्यु पर मै राज्याधिकारी उनको बोध होता था इसको तुम जानते हो । आज मैं अपना वही अधिकार तुमको देता हूं। आज से तुम्हीं चित्तौर के युवराज हुये । भविष्यत् राजसिंहासन के तुम्हीं अधिकारी होगे ।" कल्याण के बातों का अर्थ किरण को कुछ भी समझ न आया । एक बेर मन में सोचा कि "क्या कल्याण मेरा उपहास करते हैं ? मेरी परीक्षा के हेतु तो ऐसा नहीं करते ?" किन्तु फिर जब उनके मुखमंडल पर दृष्टि की तो उन्हें अस्वाभाविक गंभीर विषादांकित देखा, तुर्त उनका वह सन्देह दूर हो गया, हृदय व्यथित होने लगा, सहसा मन में यह बात आई कि कल्याण कोई गम्भीर दुःख पा कर ऐसा करते हैं। सोचते २ सिहर गये. और उनके मन से इस बात को दूर करने के निमित्त बोल उठे "नां नां नां—ऐसा नहीं हो सकता—भगवति—यह स्वप्न—" कल्याण तुर्त गम्भीर स्वर से बोले "भ्रात: ! यह स्वप्न नहीं है। मैं सत्य कहता हूं कि मरूंगा ।" दिलीप चौंक उठे,

मन की बात मन ही में रह गयी, शेष न करसके । कल्याण बोले "आशचर्य्य मत हो, मैं इसी युद्ध में मरूंगा । तुम चित्तौर जाओ, युद्ध में मत रहो । यदि हम दोनों युद्ध में मर जावेंगे, तो पिता का क्या उपाय होगा ? चित्तौर की क्या दशा होगी ?" किरणसिंह ने अपने मन में यह सोचा कि युद्ध में प्राण नष्ट होने का भय है, मालूम होता है कि इसी चिन्ता ने आज कल्याण को इतना विचलित किया है, वे आश्चर्य्यान्वित होकर बोले "आप यदि ऐसा समझते हैं, तो आप चित्तौर चलिये।मैंही युद्ध में जाऊंगा, मैं यहां रहता हूं। किन्तु आपको आज मृत्यु का भय क्यों होता है ? आप ऐसे बीर पुरुष, आपको ऐसी चिन्ता क्यों हुई ?"

कल्याण—"नहीं मैं मृत्यु का भय नहीं करता, वरं मृत्यु की इच्छा करता हूं।"

किरण—"क्या ! युवराज कल्याण आज मृत्यु की इच्छा करते हैं जो पिता के स्नेह में परम सुखी हैं, जिनके नाम से प्रजागण अहलाद में मत्त हैं, जिनकी शूरता वा बीरता जगत में प्रशंसनीय है, जिनको कुछ भी अभाव नहीं है, जो सकल सुख से सुखी हैं, उनको आज जीवन से बैराग्य हो गया है, क्या यह आप मुझको बिश्वास करने कहते हैं ? युवराज ! यह बात कह कर फिर मुझको व्यथित न करो !"

कल्याण—"तुमको यदि मेरे प्रति कुछ भी स्नेह हो, तो फिर मेरे बंचने की चेष्टा मत करो, मरनेही से मैं सुखी हूंगा। किरणसिंह! आज एक भिखारी भी मुझसे अधिक सुखी है, कल मैं सुखी था, कल तुम मुझको सुखी कह सकते थे, किन्तु आज से मुझको फिर कोई सुखी कह कर सम्बोधन नहीं कर सकता।" इतना कह कर कल्याण रुक गये, और आखों से दो तीन बुन्द आंसु के गिरपड़े उनको कष्ट से छिपा कर फिर बोले "क्या तुम कभी किसी पर आशक्त नहीं हुये थे? यदि होकर कभी निराश हुये होगे, तो कदाचित् मेरे कष्ट का कारण समझ सकोगे किन्तु देवी आशापूर्णा करें कि, ऐसा किसी को न हो।" उस बोर के नेत्र से आंसू गिरते देख किरण का हृदय मानो दो टूक हो गया, उन्होंने समझा कि, यदि नितान्त गम्भीर दुःख न होता तो कल्याण की ऐसी दुर्व्वलता प्रकाश न होती। वे बोले "आप प्रेम करके कैसे निराश हुये? महाराज तो आपको जामाता बनावेंगे। तो क्या राजकन्या आपकी यथार्थ प्रणयपात्री नहीं हैं?" कल्याण उदास होकर बोले "हां, वही पापिनी मेरी यथार्थ प्रणयनी है, उसको बिश्वासघातिनी जानकर भी मै भूल नहीं सकता।" दिलीप आश्चर्य होकर बोले "क्या! राजकन्या बिश्वास घातिनी है? यह आप को कैसे बिदित

हुआ ?" इस बात से राजपुत्र का रुधिर फिर गरम हो गया, बहुत कष्ट से इतने देर तक ऐसे बक्ता चित्त को शान्त किये हुये थे, किन्तु अब न सम्भाल सके । बोल उठे "हां, हां वही पापिनी—वही बिश्वास घातिनी—वही दुश्चारिणी—नहीं ठहरो ठहरो, अज्ञान होकर मैं किसका नाम लेता हूं, उसके नाम लेने से भी मुख कलंकित होता है, अब जाने दो उस बात को मतछेड़ो ।" दिलीप आश्चर्य्य हो गये, कुछ समझ में न आने से दारुण दुःख को प्राप्त हुये, किन्तु राजकन्या के बिषय में कल्याण से और कुछ पूछने का साहस न किया । नितान्त कातर चित्त से कल्याण को मृत्यु की इच्छा त्याग करने के निमित्त अनेक प्रकार से समझाया, किन्तु किसी प्रकार से कृतकार्य्य होने की आशा प्रतीत न हुई, तब दिलीप उनकी इच्छानुसार कार्य्य करने में सम्मत हुये । दिलीप बोले "तो मैं युद्ध के पहिलेही चित्तौर की यात्रा करूंगा । परन्तु मुझको आप एक अनुमति देवैं, वह यह है कि पहिले मैं यहां से कबिचन्द्र के उद्धार निमित्त जाने की इच्छा करता हूं । उनके उद्धार के पश्चात् फिर चित्तौर जाऊंगा ।"

कल्याण—"इससे मुझे कोई वक्तव्य नहीं हैं । मेरी मुख्य इच्छा यही है कि तुम युद्ध के समय यहां मत रहो । चन्द्रपति के उद्धार निमित्त जाने में तो तुमारे मृत्यु की

सम्भावना नहीं है, और इसके होने में तो पिता जी भी सुखी होंगे। पिता का सुखी होना जान कर मैं भी सुख से प्राण त्याग कर सकूंगा। तो क्या हमलोगों का अन्तिम साक्षात हुआ ?"

दिलीप नेत्र भर कर बोले "नहीं आज आप यह बात नहीं कह सकते। जब जाऊंगा, तब --इतना कह कर दिलीप फिर कुछ न बोलसके। कष्ट से आंशू रोक उन्होंने वहां से प्रस्थान किया।

अठारवां परिच्छेद।

कल्याण के मुख से उसी दिन समरसिंह को उनके खोये हुये बालक किरणसिंह के पुनः प्राप्ति का सम्वाद मालूम हुआ। बहुत दिनों पर आज सहसा उनके उसी गम्भीर योगीन्द्र मुखमंडल से आनन्द प्रगट हुआ। उन्होंने किरण को अपने सन्मुख लाने की आज्ञा दी। कम्पित शरीर और व्याकुल हृदय से उसके आगमन की प्रतीक्षा करने लगे। कल्याण दिलीप को लिवाय आये। दिलीप को देख आश्चर्य्य से समरसिंह के आखों की पलक न गिरती थी, स्थिर लोचन से एक टक देखते रह गये। उनका आत्मज्ञान जाता रहा, मुख से बात न निकली, चुप चाप

स्थिरलोचन हो पत्थल की पुतली की भाँति खड़े रहगये यह क्या! यह दिलिप है कि मेरा के किरणसिंह? क्या यही मेरा खोया हुआ बालक है? क्या इसी कारण से दिलीप को प्रथम देखते मात्र मेरा किरण चित्त पर चढ़ा था? क्या इसी कारण दिलीप को देख कर मुझमें सन्तान स्नेह उत्पन्न हुआ था? क्या यह सुन्दर नेत्ररञ्जक युवा पुरुष सत्यही मेरा किरण है? क्या मेरा वही तोन वर्ष का बालक अब इतना बड़ा हो गया? क्या सचमुच फिर मेरा किरण मुझे पिता कह कर सम्बोधन करैगा? क्या मैं अब आशा के अधिक फल पाऊँगा? दिलिप को देख कर इसी प्रकार चिन्तासागर में उनका मन डूबने उतराने लगा! उनको स्थिर देख कर किरण की इतने दिन का जीवन वृत्तान्त कल्याण ने धीरे २ कहना प्रारम्भ किया । जिस प्रकार सन्यासी ने नदीतीर से किरण को पाया और अपने सन्तान के समान पालन किया था, पहिले वही कहा। फिर क्रम से दिलीप के संग सन्यासी के मृत्युकाल का कथनोपकथन, उनके जलनिमग्न वस्त्र का वृत्तान्त, जिस स्वर्णकवच में दिलिप का यथार्थ नाम कल्याण को मालूम हुआ, उस स्वर्ण कवच की कथा, सब कहा। अब समरसिंह का आश्चर्य मिट गया। इतने दिनलों जिस दु:ख में उनका हृदय मग्न होता जाता था, अकस्मात् आज उसका अभाव हो गया,

वे गम्भीरराजर्षि भी आज क्षण काल के लिये हर्ष में मग्न हो गये। हृदय का अह्लाद छिपा न सके, विह्वलचित्त से पुत्र को आलिङ्गन कर उसको चुम्बन किया, गोदमें बैठाला, आनन्दाश्रुजल से उसका कपोल धोया। उनको जितना आनन्द हुआ उसको लेखनी द्वारा प्रकाश करने की शक्ति हम लोगों को नहीं है।

क्रमशः समरसिंह शान्त हुये नाना प्रकार की बात चीत होने पर कल्याण ने किरणसिंह को (हमलोग अब इसी नाम से अपने उस पूर्व परिचित दिलीप को उल्लेख करेंगे) युद्ध के पहिलेही चित्तौर पठाने का प्रस्ताव किया वे बोले "किरण ने अभी तक उत्तम रूप से अस्त्र शिक्षा नहीं पाई है, उनको यहां इस युद्ध में रखना उचित नहीं है। उनको चित्तौर भेजिये। हमलोग दोनों जने इस युद्ध में यदि मरजांयगे, तो आपको अतिशय दुःख होगा, और चित्तौर का राज क्या होगा? किन्तु किरण को चित्तौर भेजने से आपको वह भय न रहैगा।" यह बात समरसिंह के भी मनमें बैठ गयी । इतने कष्ट से किरण को पाया है अब यदि युद्ध में प्राण भी नहीं बँचैगा, तो किरण सिंहासन पर बैठकर चित्तौर का सुख स्वच्छन्दतावर्द्धन करैगा नहीं तो हृदय में जो गूढ़तर आशा है वह भी फिर निर्मूल होती है, यह बिचार यथार्थ में अत्यन्त चिन्तित हुये,

वे भी कल्याण के संग एकमत हुये। किरण को शीघ्र चि-त्तौर भेजना स्थिर हुआ। किरणसिंह ने चित्तौर जाने के पहिले चन्द्रपति के उद्धारसाधन करने में समरसिंह की अनुमति प्रार्थना की। कल्याण के समझाने से समरसिंह ने इसमें कुछ प्रतिवाद न किया। किरणसिंह ने चन्द्रपति के उद्धार निमित्त जाने की अनुमति पाई।

किरण दिल्ली आने के समय से, इतने काम काज में लिप्त रहने पर भी शैलबाला को न भूल सके। कब युद्ध शेष होगा, और कब हम अजमेर शैलबाला के उद्देश में गमन करेंगे, यह चिन्ता सर्वदाही उनको व्याकुल करती थी। सबका दिन कट जाता था, परन्तु उनका दिन नहीं कटता था। शैलबाला की बातें स्मरण होने से उनको कितनी बातें चित्त पर चढ़ जाती थीं। पहिले जब शैल-बाला उन लोगों के कुटी में आई थी तो उसकी अवस्था चार बर्ष की थी। उस समय का उसका वही बाल्यस्व-भाव, उसकी वही तोतरी बाणी मधुरस्वर मन में याद प-ड़ता था, उस समय वे दोनों जने कितने प्रकार की शैशव क्रीड़ा करते थे, वह भी स्मर्ण हुआ। शैलबाला जब किसी कारणबश रोती थी और वे उसको किसी प्रकार से भुल-वाते थे वह स्मरण होता था। जब किसी दूसरे उपाय से वह रोना बन्द न करती, तो वे भी रोते, उस समय वह क-

हती थी कि "ना, अब मैं न रोऊँगी, तुम चुप हो।" शैल बाला के शान्त होने पर वे दोनों जने पर्व्वत २ भ्रमण करते, उसको कितने मन्दिर दिखलाते थे, जब वह अधिक न चल सकती थी, थक जाने पर उसको बगल में लेकर कुटी में फिर आते थे। एक दिन एक हरिण के डरवाने पर शैलबाला कैसी भयभीत हुई थी, और किरण ने उसे देखकर शैलबाला को अकेले छोड़ उस हरिण को दण्ड देने के निमित्त उसका पीछा किया था। दण्ड देकर फिरे तो देखा कि वहां शैलबाला नहीं है। शैलबाला क्रीड़ा छल से कहीं छिप गयी थी. यह बिचार कर किरण ने उसके खेलने का सब स्थान ढूंढ़ा, शैलबाला को कहीं न पाया। तब वे उच्चस्वर से पुकारने लगे, उनके स्वर से पर्वत गूंजने लगा, दिलीप थक कर एक मन्दिर में गये। क्या आश्चर्य! देखा, कि पांच वर्ष की शैलबाला उस मन्दिर के देवता को एकाग्र चित्त से आराधन करती है। किरण उसे देख बोले "यह कौन; शैलबाला! तुम यहां हो! और मुझको अब तक इतना कष्ट दिया।" किरण का स्वर सुन कर बालिका ने चटक कर रोती हुई उनका गला पकड़ कर कितना आदर किया, उनको देखकर कितना अह्लाद प्रगट किया। वह इसी भय से डर गई थी कि कदापि टेढ़ी २ सींगवाला हरिण चोट न करे। वह बोली "मैंने

सुना था कि महादेव से प्रार्थना करने पर कोई विपद् नहीं पड़ती, इसीसे मैं महादेवजी से विन्ती करने आई थी"

फिर जब शैलबाला कुछ और बड़ी हुई तो वे उस को फूलों के गहनों से सज कर हर्षपूर्वक देखते थे, यह भी चित्त पर चढ़ा। बाल्यावस्था की प्रत्येक घटना उनके मन के आखों के निकट नाचने लगीं। वे अह्लाद में ज्ञान-शून्य हो जाते थे, वही सब बातें स्मरण करते २ ऐसे प्रेम मय हो गये कि मानो उसी समय के दिलीप के भांति शैलबाला के सग पर्वत पर खेल रहे हैं, मानो वह उसको फूलों का शृङ्गार कर रहे हैं. अ हा हा, कैसा मानोहर देखने में आता है, वह अपने मन में उसी बनदेवी के रूप पर मोहित होकर एकटक लोचन से देख रहे हैं—अकस्मात मोहभंग हो जाता था, शैलबाला कहां है ? वे तो अकेले बैठे हैं। शैलबाला यहां नहीं है. अजमेर में है, परन्तु कदाचित् वह व्याही हो, और उसके मनमें क्या है ? क्या राजवंशीया शैलबाला को अज्ञातकुलशील दिलीप अब तक स्मरण होंगे ? कोठे अटारी औ राजमहल की निवासिनी शैलबाला क्या अब उसी कुटीरवासी दिलीप के संग विवाह करना चाहेगी ? तो उनको यह दुराशा क्यों है ? वे अजमेर से क्यों नहीं मन को फेर सके ? बाल्यावस्था की बातें स्मरण करने से जैसे अह्लाद होता था इन सब बातों

को सोच कर वैसही विमर्ष भी होता था । आज अपना परिचय ज्ञात होने से वह चिन्ता कुछ शान्त हुई। मनमें एक प्रकार की आशा हुई। बिचारा कि "यदि शैलबाला का विबाह न हुआ हो तो मेरा परिचय जानने से उसको फिर असम्मत होने का कोई कारण नहीं है, और यदि विवाह हो गया हो, तो आशा ! तू फिर मेरे हृदय पर अधिकार न कर सकेगी । यही अन्तिम शाघात है । सुख ! तुम कभी अपने अमृतमय मोद में मुझको आश्रय न दे सकोगे, यही शेष बिदाई है।" शैलबाला विवाहित है कि अविवाहित इसके जानने के लिये किरण अपने मन को स्थिर करने लगी, उस विवाहई पर अपना सकल सुख दुःख निर्भर कर लिया। किन्तु अपने सुख के लिये उन्होंने कर्तव्य कार्य छोड़कर पहिले अजमेर जाना उचित नहीं समझा, पहिले चन्द्रपति के उद्धार निमित्त जाना उनको उचित बोध हुआ। यही स्थिर किया कि चन्द्रपति का उद्धार करके चितौर जाने के पहिले अजमेर जाऊंगा।

पृथ्वीराज प्रभृति सब लोगों ने उसी दिन किरणसिंह के पुनः प्राप्त होने का सम्बाद जाना क्रमशः यह बात सारे नगर में फल गयी ।

उन्नीसवां परिच्छेद ।

पृथ्वीराज राजमहल के एक कोठे पर जँगले के सन्मुख खड़े होकर क्या सोचते हैं, मुख की कान्ति अति मलिन है, नाना प्रकार के दुर्भावना से हृदय परिपूर्ण है, वे चिन्ता को मन से दूर करने की चेष्टा करते हैं, कृतकार्य नहीं होते, इसी से उदास होकर झरोखे से कुछ देखते हैं कुछ देर पर मन्त्री को वहीं बुला भेजा । मन्त्री के आने पर राजा बोले 'युद्ध के कुछ पहिलेही हमलोगों को स्थानेश्वर चलना उचित है, और एकही सप्ताह में मैं सेना के सहित वहां जाने को इच्छा करता हूं। छावनी स्थापन करने के लिये लोगों को तुम वहां भेजो। वहीं चल कर युद्ध के लिये हमलोग तय्यार होवेंगे। पीड़िता कन्या को लेकर महिषी भी हमलोगों के संग चलैंगी ।' उषावती को वीमार जानकर पृथ्वीराज ने इस युद्ध के समय में उन लोगों को स्थानेश्वर ले जाने में पहिले अनिच्छा प्रकाश की थी। किन्तु फिर महिषी के कातरोक्ति से उनकी सम्मति हो गयी थी। महारानी ने कन्या के निमित्त कहा कि एक तो वह अत्यन्त दुःखी है, और इस समय महाराज उसको यहां छोड़कर जांयगे, तो महाराज के अमंगल भावना से उसका हृदय और भी व्यथित होगा, महाराज के संग २ रहने से एक मात्र निश्चिन्त रह सकैगी

पालकी में धीरे २ ले जाने से उषावती को भी विशेष हानि की सम्भावना नहीं है, बरनान के बदलने से उस का उपकार भी हो सकता है। महिषी के इस प्रकार की बातों से पृथ्वीराज अन्त में सम्मत हुये।

पृथ्वीराज फिर बोले "चन्द्रपति के उद्धार के निमित्त क्या उपाय किया ? तुम लोगों ने उनके निमित्त मुझको चिन्ता करने को निषेध किया था, अब तक इसी कारण मैं देखता था; किन्तु अब भी जब उनका कोई सम्बाद नहीं मिला तो निश्चयही वे वन्दी हुये हैं । शीघ्रही उनके उद्धार के लिये अब कोई उपाय स्थिर करो। इस बार चारो ओर अमङ्गलही कालचण देख पड़ता है, उषावती पिड़ित है, उसके बँचने की आशा नहीं है, सेनापति आखिलासिंह चारपाई सेवन कर रहे हैं, चन्द्रपति को देखा नही, कि वे बँचे कि मरे, इसका निश्चयई क्या है ? अबकी युद्ध में भी निरुत्साही है। उषावती के बिमारी से किसी को भी सुख नही है। मैं भी यदि ऐसी समय कुछ उत्साह भङ्ग होऊँ, तो क्या होगा ? मनमें क्लेश रहने पर पर भी प्रगट करना उचित नही है। हम चत्री ठहरे, निस्तेजता हम लोगों के निकट पाप है, शोकताप से व्याकुल होना हम लोगों के लिये अकर्तव्य है। सैन्यगण को एकत्र करो, मैं इस समय सैनागण का साज देखने चलूंगा।" पृथ्वीराज के अज्ञानुसार कार्य्य करने के लिये मन्त्री चले गये।

इधर किरणसिंह ने चन्द्रपति के उद्धार का भार स्वयं लेकर सबसे बिदा होकर उसी दिन दिल्ली छोड़ दिया। कल्याण, भाई को बिदा करके यह सोचने लगे कि अब मेरे मरने में कोई बाधा है कि नहीं ? पिता और चितौर के निमित्त जो उन्हें बड़ा सोच था किरण को चितौर भेजने से उस चिन्ता से अब वे छुट्टी पा गये। किन्तु एक और चिन्ता उनके मन में उपजी। वह यह कि उन्होंने गुलाब से कहा था कि "यदि तू राजकन्या को विजय की अनुरागिनी होने का प्रमाण दे सकैगी तो हम तेरा कुछ उपकार करैंगे"। सो वह तो प्रमाण दे चुकी, अब मैं किस प्रकार से उसका उपकार करूं ? एक बार वाक्यदान किया है, उसका पालन न करने से क्षत्री के अयोग्य कार्य्य करना हो जायगा, क्षत्री के मुख से निकली हुई बात मिथ्या हो जायगी, इसको हम किस प्रकार सहन करैंगे ? किन्तु फिर किस भांति उसका उपकार करूं ? विजय के संग यदि गुलाब का विवाह करा सकते, तो उसका यथार्थ उपकार करना कहा जाता। किन्तु बिजय उसके प्रति अनुरागी नहीं है, उससे विवाह क्यों करैगा ? और यदि करना भी चाहैं, तो हम उसको किस प्रकार देंगे। बिजय को दुष्ट जान कल्याण उससे अत्यन्त घृणा करते थे, बिजय ही ने चातुरीपूर्व्वक राजकन्या को दुश्चरित्रा बनाया है

यह समझ कर वे उसके ऊपर अतिशय क्रुद्ध हुये थे। जिसको दुष्ट जाना, जिसको शत्रु समझा, जिसको दण्ड देने की इच्छा करते हैं, उसके संग वे गुलाब का किस प्रकार विवाह करावेंगे? विजय के संग किसी कारण से एक दिन के लिये भी मित्रभाव से एकत्र होना उनको निज अपमान बोध होने लगा। गुलाब के उपकार करने का कोई उपाय न पाने से वे अतिशय चिन्तित हुये। इसी समय गुलाब रोती हुई उनके निकट आ उपस्थित हुई। राजकन्या की मृत्यु अवस्था देख, और अपने को उसका कारण समझ, गुलाब अपने चित्त में अत्यन्त कष्ट पाती थी। अपने ही को उनकी हत्याकारणी समझ कर उसका-हृदय विदीर्ण होता था। राजकन्या से सब बात प्रगट करने में कुयातना की कुछ कमी होती, परन्तु वह तो इस समय ज्ञान शून्य है, यह बात कैसे होगी? पहिले कल्याण के निकट अपना दोष स्वीकार करना स्थिर करके गुलाब यहीं चली आई। यहां आकर कल्याण का चरण पकड़ बोली "मैंने जो अपराध किया है वह क्षमा कीजिये।" राजपुत्र अकस्मात गुलाब के मुंह से यह बात सुनकर आश्चर्य्य से बोले "तुमने मेरा क्या किया है?

गुलाब—'मैंने क्या किया है पूछते हो, मैंने मिथ्या बोल कर चिरकाल के लिये आप लोगों का सुख हरण किया।

राजपुत्र बोले 'तुम मेरा सुख हरण कष्ट कर आज क्षमा चाहती हो, परन्तु उससे मैं तुमारे प्रति असन्तुष्ट नहीं हूं। मैं अमृत के धोखे विष खाने जाता था, तुमने उसे दिखा दिया। यद्यपि उसके अमृत न होने से मैं निराश सागर में उभचुभ हो रहा हूं, तथापि विषपान से मैं बंचगया इसलिये तुमको धन्यवाद देता हूं ; तुमको मैं क्या क्षमा करूंगा, वरं मैं ही तुम से क्षमाप्रार्थी हूं, क्योंकि तुमारी बातों पर पहिले मैंने बिश्वास नहीं किया था।"

गुलाब – "आप अब फिर मेरी बातों पर अविश्वास करके मेरे दग्ध हृदय को कष्ट मत दीजिये। मैं यथार्थही दोषी हूं, मैं अपने सुखही के निमित्त ऐसे नीच कार्य्य करने में प्रवृत्त हुई थी। जिस सुख के लिये मैंने यह कार्य किया, वह सुख अब कहां है ? यातना से हृदय भस्म हुआ जाता है। जैसे मैंने आपलोगों को जन्म भर के लिये दुखी किया, उसी के संग मैं भी फिर कभी सुखी नहीं हो सकती।" इतना कहकर जिस निमित्त वह वैसे कार्य्य में प्रवृत्त हुई थी, सो आद्योपान्त सब कह गई। यह सब वृत्तान्त सुनकर कल्याण बिचलित हुये, किन्तु सम्पूर्ण वि-श्वास नही हुआ। इसके पहिले जो विश्वास इतने देर तक हृदय में दृढ़मूल हुआ है, जो विश्वास इतने कष्ट का कारण हुआ है जो क्षण २ जीवन को असह्य कर रहा है

वही विश्वास गुलाब की इन बातों से तुरन्त कैसे दूर हो सकता है? वे बोले "गुलाब! मैं बालक नहीं हूं। तुम जिस से सीखकर यह कहती हो, उसे मैं बूझता हूं—वृथा—फिर क्यों-" गुलाब कातरचित्त हो बोल उठी, "युवराज! क्षमा करो, वह विश्वास चित्त से दूर करो। राजकन्या इसको कुछ भी नहीं जानती वह संपूर्ण निर्दोष है। यदि मेरी बात का आप विश्वास न करेंगे, तो कैसे करेंगे—कैसे फिर इस पापिनी के बातों का विश्वास कीजियेगा—युवराज! अब मैं अपनी बातों पर विश्वास करने को नहीं कहती-इन पत्रों को देखिये, इसी से आप सब समझ जायेङ्गा।" इतना कहकर युवराज के हाथ में गुलाब ने कई एक पत्र दिये वे सब विजय के पत्र थे; विजय ने उनमें जो गुलाब को लिखा था। उनको कल्याण ने पढ़ा -

प्राणाधिके गुलाब!

'सुना है कि आज युवराज कल्याण राजकन्या के निकट जावेंगे। यदि यह सत्य हो, तो तुम मुझ को कहला भेजो, और गुप्त द्वार खोल रक्खो, मैं भी वहां एक बेर जाऊंगा। मुझे राजकन्या के घर देखने के अतिरिक्त और किसी प्रकार युवराज के मन में सन्देह न उपजेगा।

गुलाब! मैं आशापूर्णा देवी के निकट प्रार्थना करता

हूं और तुम भी करो जिसमें वह हमलोगों का यह मनोरथ पूर्ण करें। जिस से इसी बार राजपुत्र के हृदय में क्रोध की आग बल उठे, आज से जिसमें उन लोगों में सर्व्वदा के लिये वियोग हो जावे। राजकन्या ने जैसे मुझे प्रणय से निरास कर जिस से प्रेम लगाया है, वह भी जन्म भर के लिये उनका मुख देखने से निराश हो। इसके होनेही से, गुलाब, मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण होगी, और तब मैं तुमको पाकर सुखी हो सकूंगा।"

तुमारा चरणाश्रित विजयसिंह।

कल्याण ने जितने पत्र पढ़े, सब में यही समाचार। पढ़ते २ उनका शरीर रोमांचित हो गया, विजय की धूर्त्तता समझ गये। किन्तु तौ भी – इतने कष्ट पर भी इस सुखजनक बात का विश्वास भली भांति उनको न हुआ। सब उनको स्वप्नवत् बोध होने लगा। उनका शरीर जैसे शून्य हो गया, ज्ञान हाथ से जाता रहा।

गुलाब बोली –'युवराज!' कल्याण तुर्त्त चिहुंक पड़े, उनका सोच भंग हो गया, वे सोचते थे —— "कि यह क्या बात है? क्या सचमुच उषावती निर्दोष है? तो क्या मैं राजकन्या के निकट अपराधी हूं? अपनी उषा को क्या फिर मैं अपना कह सकूंगा"। वे हर्ष से गद्गद होकर बोले 'गुलाब! क्या सत्यही देवता लोग मेरे ऊपर प्रसन्न हैं? क्या

सचमुच मेरी उषा निर्दोषी है? किम्वा यह स्वप्न देख रहा हूं?"

गुलाब - 'युवराज! सन्देह दूर करो, अब आपका क्लेश मुझ से नहीं देखा जाता"।

युवराज इस बार हर्षपूर्व्वक बोले "तो बिना दोष के जो मैंने अविश्वास किया था अतएव उषावती के निकट मैं दोषी हूं। मैं अभी जाकर उनका पादपद्म ग्रहण करके क्षमा प्रार्थना करूंगा, वह ऐसी कोमलप्रकृति हैं कि अवश्य मुझे क्षमा करेंगी। तुमने अपराध तो किया था, किन्तु आत्मदोष स्वीकार कर लिया इससे उसका प्रायश्चित हो गया, मैं तुम को क्षमा करता हूं। इसके पहिले जैसे तुमारी बात से मैंने कष्ट पाया था आज वैसही सुखी हुआ"।

गुलाब दीर्घनिश्वास त्याग कर बोली "आपकी बातों से प्रतीत होता है कि राजकन्या जैसी पीड़ा में हैं उसको आप नहीं जानते, कल जब आप उनके निकट से आये उसी क्षण से वह अचेत हैं। आप उनके निकट अपराध स्वीकार करके उनको सुखी नहीं कर सकेंगे। भग्न हृदय हो वह स्वर्ग में जावेंगी, ऐसाही जान पड़ता है। हाय! आप लोग यदि फिर सुखी हो सकते, तो अभी मुझ को भी सुख की आशा रहती"। कल्याण के चले आने पर जो

जो हुआ था, उस समय गुलाब ने सब कह दिया। राज-कन्या के सांघातिक पीड़ा की बात सुनने से कल्याण अतिशय कष्ट पाते, इसी भय से पृथ्वीराज, समरसिंह किरण इन सबलोगों ने कल्याण से इस बात को छिपा रक्खा था। गुलाब के कहने से पहिले इसी कारण कल्याण को इसका पता न लगा। कहते २ कष्ट से गुलाब का मुख मलिन हो गया, आखों से चिनगारी छूटने लगी, भौं टेढ़े होगये वह विक्षिप्त सी हो गयी। क्रमशः शेष होने पर बोली 'राजकुमारी हैं तो किन्तु बचैंगी नहीं— हाय, हाय! फिर उनका हन्ता कौन है?" छाती पर हाथ मार कर बोली "यही पापिनी" यह कहकर वह बेग से चली गयी।

राजपुत्र बज्राहत से हो कर बैठ गये।

बीसवां परिच्छेद।

एक ओर दुर्गा दूसरी ओर दिल्ली का राजमहल, उसके सम्मुख एक बहुत बड़ा मैदान है. मैदान के सीमा पर आकाशभेदी एक यमुनास्तम्भ है वहीं पर सेना के असंख्य लोग एकट्ठे होकर आज आशा को दृढ़ता दे रहे हैं। सहस्र २ क्षत्रीयसैन्य. अटल, गम्भीर और उत्सुक भाव से उसी बड़े मैदान में खड़े हैं; सेना की भीड़ से मैदान भर गया है। राजपूतों के नियमानुसार वे लोग युद्धयात्रा के पहिले देवी

अन्नपूर्णा की पूजा समाप्त कर आये हैं और स्थानेश्वर की यात्रा करने के लिये तय्यारी करते हैं। पूजा का चिन्ह यह है कि सबके कण्ठ में लाल २ फूलों की बड़ी २ माला लटकी हुई और कपाल में रक्त चन्दन का त्रिपुंड शोभायमान है। आज सहस्रों नंगी तरवारें और सहस्रों सानधरे तीर रक्तपान करने के लिये ललक रहे हैं। योद्धा लोगों के शिरस्त्राण,(१) लोहे के कवच, बर्छी के नोक, और नंगी तरवारों से, तरुण सूर्य की स्थिर किरण स्वच्छ होकर ऐसी चमक रही हैं कि आंखें नहीं ठहरतीं. चकचौंध सी जान पड़ती है। वह लम्बा चौड़ा गम्भीर. और भयानक मैदान देखकर शरीर में रुधिर सूख जाता है, शरीर रोमांचित हो उठता है, बीच २ में घोड़े चंचल भाव से खुर द्वारा पृथिवी खोद रहे हैं, और हिनहिनाने से द्विगुणित कोलाहल कर रहे हैं। मैदान का वह गम्भीर भाव देखने से प्रचंड आंधी आने की सम्भावना होती है, मानों क्षण वा आध क्षण में वह आंधी प्रवाहित होकर पृथिवी को रसातल भेज देगी, प्रचंड पर्वतशृंग मानों गिरा चाहता है, अभी गिर कर भीड़ भाड़ को मानों बन्द किया चाहता है।

चार श्रेणी में सेना स्थापित हुई है, पहिली और दू-

(१) योद्धाओं का टोप।

सरी श्रेणी में प्रति श्रेणी ८००० सेना है, यह दोनों दल पृथ्वीराज और समरसिंह के आधीन है, तीसरी श्रेणी में १२००१ सेना, और यह कल्याणसिंह के अधीन है, चौथी श्रेणी में १०००, इसके सेनानायक विजयसिंह हैं। प्रत्येक श्रेणी फिर दो दल में बटी है, घोड़े के सवार और पैदल। सेना के सवारों के पीठ पर ढाल हाथ में बर्छा और कमर बन्द में कृपाण लटक रहा है । पैदल सेना भी दो प्रकार की हैं; तलवार तो दोनों दल के कमर में है किन्तु एक दल के हाथ में बर्छा है, और दूसरे दल के हाथ में धन्वा बाण है। इसी प्रकार सेना के लोग सज्जित और अलग २ होकर खड़े हैं, महल के दूसरे ओर अनगिनित हाथी, ऊंट लदुये बैल, पालकी, गाड़ी, खाने की वस्तु और अस्त्र से भरी हुई गाड़ियां और उनके साथी रक्षकदल हैं, तोप (भुशुंडी) और तोपवालों से गाड़ियां सज्जित हैं। राजधानी में बहुत कम लोग रह गये हैं, प्रायः सभी नगरनिवासी मैदान के चारो ओर खड़े होकर और भी अधिक भीड़ बढ़ा रहे हैं. अवशिष्ट मनुष्यगण कोई कोठे से कोई यमुनास्तम्भ से कोई राजभवन के ऊपर से, एकत्रित होकर सैन्य समागम देख रहे हैं सहसा घोड़ों के दौड़ने की टाप सुनाई देने लगी, भीड़ फट गयी, 'जय पृथ्वीराज की जय' 'जय समरसिंह की जय' सब लोग कहने लगे, चारो ओर

के मनुष्यों को भोड़ में से जय जय का शब्द होने लगा, और वह जयध्वनि राजमहल के शिखर में और सिखर से होकर यमुनास्तम्भ में, यमुनास्तम्भ से नभमंडल, नभमंडल से दिगन्त में मथन करके प्रतिध्वनित होने लगी । इसी जयध्वनि के मध्य से चार मनुष्य सेनापति बर्म्म (१) पहिने हुये घोड़े पर सवार पूर्णवेग से आकर तुरन्त चारो श्रेणी के सन्मुख चारो आदमी खड़े होगये, युद्ध का बाजा बजने लगा, सैन्यगण और घोड़ों और नगर निवासियों का हृदय नाचउठा, उत्साहतरङ्गमें मानो समस्त मैदान उमँगने लगा।

मध्य श्रेणी के सन्मुख जो घोड़े के सवार सेनापति खड़े हैं, उनके मस्तक पर हीराजड़ित मुकुट है, कान में मुक्तामय सोने का कुंडल, दोनों भुजा में बीरों का बलय. (कड़ा) और समस्त शरीर लोहे के वर्म्म से ढका हुआ है । उनके पीठ पर ढाल और तीरों से भरा हुवा तर्कस, कटि में सान चढ़ो हुई तरवार, एक हाथ में बर्छा और दूसरे हाथ में घोड़े की बाग है, देखने से जान पड़ता है कि मानो कुमार स्वामिकार्तिक ने आज असुरसमर में बीरबेश धारण किया है, उनके सघन कृष्णबर्ण दोनों भौं के नोचे दोनों नेत्रों से आग की चिंनगारी उड़ रही है. उनके तेजोमय मुखश्री से मध्यारुण सूर्य्य की भांति बीरदर्प

(१) लोहे को कुर्त्ती।

प्रकाश होता है, वे एक २ बार एक एक सैन्यश्रेणी के प्रति दृष्टिपात करते हैं, और एक २ कटाक्ष में उनलोगों के उत्साह के अग्नि को प्रज्वलित कर देते हैं। उनका घोड़ा भी सवार का आन्तरिक उत्साह अनुमान कर चपलभाव से हिनहिनाने को सीमा लांघने की चेष्टा करता है--येही योद्धा पुरुष पृथ्वीराज हैं। अपने पीड़िता कन्या के निमित्त उन्हें अब वह शोकभाव नहीं है, इस समय यवनविजय के हेतु एक मात्र शूरताही का भाव उनमें देख पड़ता है। पृथ्वीराज के दाहिने ओर समरसिंह हैं, इनके ऊँचे ललाट पर चिन्ता का चिन्ह देख पड़ता है, इनको दृष्टि स्थिर और हृदयभेदी है, यह दृष्टि प्रत्येक मनुष्य के अन्तःकरण को उत्साहित करती है, हृदय को विवश कर देती है, इनके प्रत्येक कटाक्ष में मानों एक २ गुप्त आज्ञा का प्रचार होता है और उस कटाक्ष में ऐसी मोहनी शक्ति है कि सभी को अपने आज्ञा के आधीन कर लेती है। इनका रण-वेश सामान्य है, सिर पर शिरस्त्राण, शरीर बर्म्म से ढका हुआ, किन्तु कान में कुण्डल नहीं है, दोनों भुजाओं पर बीरवलय (कड़ा) भी नहीं है, केवल एक हाथ में एक सानधरी तरवार बिजली की भांति चमक रही है और दूसरे हाथ में वे ढाल और घोड़े की बाग पकड़े है, उनकी किंचित पकी हुई लम्बी दाढ़ी बायु से हिल रही है, और

बड़ी बड़ी जटा जाल शिरस्त्राण सों निकल कर कन्धे को ढाके हुये है। योगी भाव और वीर भाव मिश्रित होने से उनके मुखमंडल से एक अपूर्व्व शान्ति की झलक विकाश हो रही है. मानों ब्रह्मतेज और चत्रीतेज एकत्र मिल गया है। उनका महान और गम्भीर, दृढ़ और अटल भाव देखने से वे मानों हिमाचलदेव बोध होते हैं। पृथ्वीराज के बायें ओर युवराज कल्याण पृथ्वीराज ही की भांति रण साज से सज्जित होकर शून्य दृष्टि से अपने आधीनस्थ सैन्य श्रेणी को देख रहे हैं। उनके मुख का भाव चण २ बदलता जाता है। धधकती हुई आग में आहुति डालने से जिस प्रकार वह चणकाल के लिये बुझकर फिर द्विगुण प्रभाव से बल उठती है, वेभी उसी भांति कभी विषाद से मलिन, फिर चणही में बीर रस के आइनेदार तसबीर की भांति चमकने लगते हैं। उनका सघन अंधकारमय केश जाल कंधे पर फैल रहा है. उससे उनके मुख पर उन दोनों भावों की गुरुता बढ़ती जाती है। चौथे श्रेणी के सैन्याध्यच्च विजयसिंह हैं। ऐसा कौन सूक्ष्मदर्शी है कि उनके हृदय द्वार को खोल कर उनके अन्तःकरण के छिपाये हुये भाव को समझ सके? उनकी वह अन्धकारमय भृकुटी, वह विषम घृणासूचक किंचित हास्य से टेढा औष्टाधर; वह कठिनाई भाव से पूर्ण मुख मंडल, देखने से

किसके मन में नहीं आता कि वह किसी भयानक कार्य्य करने का संकल्प किये हैं । किन्तु वह भयानक कार्य्य क्या है ? इसके समझाने की सामर्थ किसी में नहीं है; सब यही समझते हैं कि यवनों के नाश करने की दृढ़ प्रतिज्ञा करने से आज उनकी मूर्त्ति इस प्रकार से भयानक भाव धारण किये है।

ये चारो सेनापति चारो श्रेणी के सन्मुख खड़े हुये । पृथ्वीराज ने कोई संकेत किया, कि जिससे तुरन्त चारो ओर सन्नाटा हो गया. कोलाहल, जयध्वनि, रणबाद्य सभी बन्द होगये। पृथ्वीराज उसी सन्नाटे में सैनिकगण और सुननेबालों का हृदय कंपाते हुये कहने लगे—"सैनिकगण क्षत्रियबीरगण! जो दुष्ट यवन दृशद्वती नदी के तीर गत-वर्ष हमलोगों के क्षत्रीय बीर्य्य का तेज—हमलोगों के क्षत्रीय खड्ग की तीक्ष्णता को अनुमान कर गये, जो लोग उस भयानक पराजय के कलङ्क से आज लों कलंकित हैं, जिनलोगों के सेनापति इसी महम्मद गोरी को हमलोग दो २ बार बन्दी कर लाये और केवल क्षत्रीक्षमागुण से जिसको बिना किसी हानि के देश पर लौट जाने दिया. वही दुरात्मा यवनगण फिर म्लेच्छ पद स्पर्श से हमलोगों की आर्य्य भूमि को कलंकित करने आये हैं! सैन्यगण! यदि तुमलोग आर्य्य नाम का गौरव रखना चाहो, यदि

क्षत्रिय नाम के उपयुक्त होना चाहो, यदि यवनपददलित होने की बासना न हो, यदि तुम लोगों को प्राणतुल्य स्त्री पुत्र कन्या इत्यादि की निठुर यवनपीड़न से रक्षा करने की इच्छा हो, यदि हिन्दू धर्म्म के प्रति, हिन्दू मन्दिरों के प्रति तुम लोगों को किंचित्‌मात्र भी श्रद्धा हो, यदि देवी आशापूर्णा की आशा पूर्ण करना तुमलोगों का गौरव बोध कराता हो—तो अब विलम्ब मत करो, पाखंडियों को ऐसा दण्ड दो कि जिससे वे सब सिन्धु नदी लांघने के फिर कभी साहसी न हों। क्या तुम लोगों में कोई है?—" पृथ्वीराज की बात फिर न सुन पड़ी—तुरन्त चारो ओर मानो धूम मच गई. सैन्यगण के उत्साह ध्वनि से, अस्त्र के झन २ शब्दों से. घोड़ों के हिनहिनाने से, भीड़ के 'जय जय' शब्द से पृथ्वीराज की बात दब गयी। कोलाहल के कुछ शान्त होने पर पृथ्वीराज फिर बोले—"क्या तुम लोगों में कोई ऐसा कायर है, कोई ऐसा अक्षत्रीय अनार्य्य है, कि उसको आज उत्तेजना के बाक्यों से उत्तेजित करना होगा? यवनों का पराजयही जब तुमलोगों का उद्देश्य है, देशरक्षाही जब तुमलोगों का व्रत है, बीर चुड़ामणि समरसिंहही जब तुमलोगों के सहायक हैं, तो तुम लोगों के शरीर में जो रुधिर का स्रोत प्रबाहित होता है, उसका एक २ बून्दही उस उत्ते-

जना को उत्साहित करेगा । सैन्यगण! उसी बीरतेज, उसी क्षत्रीयप्रताप, उसी शत्रुजीत बल से आओ हमलोग आज यवनदल को दलित करने में अग्रसर हों ' पृथ्वीराज की बात समाप्त न होने पाई थी कि फिर चतुर्दिक से कोलाहल मच गया, फिर उसी जयध्वनि ने – फिर अस्त्रों की झनकार ने, सातवें स्वर्ग तक कँपाय दिया, इधर रण का बाजा बज उठा । उसी कोलाहल के बीच होकर चारो सेनापतियों ने घोड़े चला दिये उनके पीछे सवार और प्रैदल सैनिक लोग पांति जोर कर चले । तिनके पोछे अनगनित सजी हुई हाथियां, घोड़े और ऊंट, जोती हुई गाड़ियों की श्रेणी पांति जोर चलों । उड़ती हुई धूलि राशि में होकर कंधे से कन्धा मिलाये हुये सब लोगों ने स्थानेश्वर की ओर यात्रा की ।

इक्कीसवां परिच्छेद ।

इधर चन्द्रपति का भृत्य उनके यवन शिविर में जाने का समाचार लेकर आया, तब से उनका फिर कोई पत्रादि न पाने से प्रभावती अतिशय चिन्तित हुई । चन्द्रपति के अमंगल भावना के भय से रात दिन उनका मन अत्यन्त व्याकुल होने लगा । शैलवाला के निकट मन का भाव प्रगट किया परन्तु उनने कुछ भी नहीं समझा;

कहा कि तुमको भय और दुःख का कोई कारण नहीं है । अधिक प्रीति होने ही से इस प्रकार बिना कारणही सर्व्वदा अमंगल की आशंका मन में हुआ करती है चन्द्रपति जैसे मनुष्य को बिपत्त में पड़ने की कोई आशंका नहीं है। वे अवश्य किसी कारण बश निज इच्छा पूर्व्वक वहां से आने में बिलम्ब करते हैं । शैलवाला ने उनका दुःख न समझा, इसी कारण प्रभावती भी हृदय खोल कर उनसे प्रेम न करती थीं । किन्तु शैलवाला के अतिरिक्त और कोई संगिनी भी न थी इसी कारण अपनी इच्छा न होने पर भी उन्हें शैलवाला से समय २ पर सब बातें कहनी पड़ती थीं । जब मनमें अत्यन्त कष्ट होता तो उसे प्रकाश न करने से वह और अधिक कष्ट पाती थी। उस समय रात अधिक गई थी। प्रभावती समस्त दिन का कष्ट निद्रा से दूर होना समझ कर चिरकाल से निद्रा आने की चेष्टा करती थी । किन्तु चन्द्रपति की चिंता में उनको नींद नहीं आती । उनके एक अलँग शैलवाला घोर निद्रा में मग्न थी, वह प्रभावती का कष्ट कुछ भी न जानती थी। किसी प्रकार भी प्रभावती को निद्रा न आई। वे सोई २ विरक्त हुईं। धीरे २ शय्या पर उठ बैठीं, और सुख नींद से सोई हुई बालिका शैलवाला का मुखमंडल एकटक देखने लगीं, चन्द्रिका की ज्योति झरोखे से

आकर शैलवाला के उज्वल मुख कांति की कैसी श्रीवृद्ध करती है, यही देखने लगीं। उसके ओठों पर पसीने के बुन्द शोभा पाते थे, उनको स्नेह से पोंछ दियाऔर देखा कि शैलवाला का ओष्ठाधर मृदुहास्य से किंचित खुलजाता है, शैलवाला कोई सुख स्वप्न देखती है। प्रभावती ने धीरे उस हास्यबिकसित ओष्ठाधर का चुम्बन किया, प्रभावती के कमल नयन से दो एक बुन्द आंसू शैलवाला के प्रफुल्ल कपोल पर गिर पड़े। धीरे २ उनको पोंछक कर प्रभावती ने फिर शयन किया। अपने मन में कहा कि 'बालिके! तूही सुखी है!"

सोचते २ पिछले पहर प्रभावती को एक आलस्य की झपकी सी आई। थोड़ही देर पर एक भयानक कुस्वप्न देख कर चिहुंक उठीं। उनकी नींद खुल गई। देखा कि भोर हो गया है। शैलबाला को निकट में न देखा, अकेली सोई २ रोने लगीं। किञ्चित् शान्त होने पर शय्या छोड़ कर खिड़की के सन्मुख खड़ी हुईं। देखा कि, शैलबाला नदी के तीर बैठकर प्रभात पवन से लहराती हुई मानस-नदी को तरंगलीला देखती है। वह भी गृह छोड़ कर उद्यान की ओर चली। नदी के निकट आने पर अकस्मात् सुमधुर बीणाध्वनि ने उसके कान में प्रवेश किया। वह ठमक कर वहीं खड़ी हो गई। विदित हुआ कि शैलबाला

को कण्ठध्वनि से उन्हें बीणा के झनकार का भ्रम हुआ था। वह आगे न बढ़ीं और स्थिर चित्त से शैलबाला को सुमधुर गीत सुनने लगीं, सुना --

भैरवी।

यमुना, तलफत बीती रैन॥
श्यामसुन्दर के दरसि बिना ये तरसि रहे दोउ नैन।
त्रिविधि समीर तीर सम लागत बिष सम कोकिल बैन॥
दिवस गिनत रसना अकुलानी परत नहीं जिय चैन।
औसर पाय जानि अबलागण अधिक सतावत मैन॥
अब कब धौं अइहो मनमोहन विरहिन को सुख दैन।
उदित कहत न बनत कछु मासन मौनहु रहत बनै न॥

प्रभावती का हृदय गाना सुनकर बहुत सन्तुष्ट हुआ। गाना शेष होने पर वह धीमे २ शैलबाला के पास आई। उनको देखकर शैलबाला बोली "यह क्या! तुमारा मुख भभरा क्यों है? क्या रात दिन मुखमलीन किये रहोगी?"

प्रभावती ने कहा "आज भोरही के पहर मैंने एक भयानक स्वप्न देखा है, क्या कहूं मन व्याकुल हो गया है। अब एक दण्ड भी यहां ठहरने को इच्छा नहीं होती"। शैलबाला ने कहा "तुमारा भाव रात दिन जैसा रहता है, वैसाही स्वप्न भी देखती हो इसमें क्या आश्चर्य है?"

प्रभा०—"तुम अभी तक यथार्थ प्रेम का स्वाद नहीं जानती। जब जानोगी, तब ऐसा न कहोगी। जब से वे यवन शिविर में गये हैं, तब से कोई सम्बाद न मिला अब उनके बन्दी होने में क्या आश्चर्य है? मुझ को बोध होता है कि ऐसाही हुआ है, यदि ऐसा न होता तो आज तक एक पत्र भी तो लिखते, और वे दिल्ली भी नहीं गये, वहां जाते तौ भी मुझ को सम्बाद मिलता। गुलाब लिखती है कि वे दिल्ली नहीं गये। दिल्ली गये नहीं, मुझ को भी कोई पत्र लिखा नहीं, तो क्या इतने पर भी मुझ को शङ्का होने का कोई कारण नहीं है?"

शैल०—"हा! रोते २ तुमारे दोनों नेत्र फूल गये हैं। तुम हँसो चाहो रोओ, सभी समय तुम भली दीख पड़ती हो। तुम इस समय रोती हो, तौभी अच्छी जान पड़ती हो, जैसे कमल के फूल पर ओस के कण पड़े हुये हैं—

अँसुआजल तुव बदन पै मन मेरो हर लेत।
मानों मुक्ताजटित ह्वै कनककमल छबि देत॥

कविचन्द्र के भाग्य में न था, इसी से उन्होंने ऐसी शोभा न देख पाया।

प्रभावती क्रुध होकर बोली "तुम से अब मैं कदापि न बोलूंगी। भला यह तो कहो कि दुःख के समय भी कोई ठट्ठा करता है?"

शैल०—"क्रोध हो गया? अच्छा तो चलो, हमलोग कमर बाँधकर यवन शिविर से तुमारे प्राणनाथ का उद्धार कर लावें' ।

प्रभा०—'तुम हँसी करती हो, किन्तु मेरी सत्यई सत्य यह इच्छा होती है" ।

शैल०—"हँसो नहीं, मैं भी सत्यई कहती हूं" ।

प्रभा०—"तुम अब मुझ को जलाओ मत, एक तो मै आपही कष्ट में मरती हूं, कहां तुम ढाढ़स देतीं, मिलाप का यत्न करतीं, सो तो किनारे रहे और अधिक कष्ट देती हो" ।

शैलबाला प्रभावती को प्यार करती थीं । चन्द्रपति का सम्पादन पाने से उनको चिन्ता थी किन्तु इस बिचार से कि दिखाने से प्रभावती को और अधिक कष्ट होगा, अपना भाव प्रगट नहीं करती थी; किन्तु आज उनके दुःख को समय हँसो करके उनको अधिक कष्ट दिया है इस कारण इस बार गंभीरभाव से बोली "तुम यह मत समझो कि मैं हँसो करती हूं, मैं सत्य २ यहां से चलने को कहती हूं, हास्य नहीं है, परन्तु तुम यदि मेरा उपदेश मानो, तो यवनशिविर को मत चलो, पहिले दिल्ली चलो" ।

प्रभा०—"वहां तो वे नहीं हैं, वहां चल कर क्या करोगी?

शैल०—"वे यदि सत्यई बन्दी हुये हों, तो वहां नहीं जाने से उनका उद्धार न कर सकेंगे।"

प्रभा—"दिल्ली जाकर किस प्रकार से उनका उद्धार करोगी? सो तो मेरे समझ में कुछ भी नहीं आता।"

शैल--"अब यवनशिविर से उद्धार करना हमलोगों को असाध्य है, क्योंकि हमलोग इसको कुछ नहीं जानते, कि वह कहां और किस अवस्था में हैं। वहां जाने से हमलोग भी पकड़ जावेंगे। इसकी अपेक्षा तो यही उत्तम होगा, कि दिल्ली चलकर महाराज के निकट से कुछ निपुण सेनाओं का संग्रह कर रक्खें, और जिस दिन दोनों पक्ष में युद्ध आरम्भ होगा, उस दिन यवनशिविर में बहुत कम सेना रहेगी, उसी दिन हमलोग किसी उपाय से उनका उद्धार करलेंगे।"

प्रभावती शैलबाला के इस प्रस्ताव से सम्मत हुईं। दूसरे दिन केवल एक भृत्य संग लेकर उन लोगों ने अजमेर को त्याग किया। "अनाथ" नामक उनका वह पुराना बूढ़ा भृत्य बीमार था इस कारण उसको साथ न लिया। इस समय सन्मुख युद्ध उपस्थित है, मुसलमान लोग भारतवर्ष में आये हैं. इस समय स्त्री भेष में चलने से कदापि कोई विपद् उपस्थित हो इसी शंका में उन लोगों ने पुरुषभेष धारण किया। मनमोहनी अंगिया और स्वर्णमयवस्त्र

उतार कर उन लोगों ने अपने २ कोमल अंग में पुरुष का पहिरावा धारण किया । रंगीन ओढ़नी को अवसर पर स्थान नहीं मिलता है, लम्बे बालो पर पगड़ी बाँध ली। एक २ करके सब आभरन उतार कर कमर में तलवार बांध लिया, जो उनके अलङ्कार के जगह पर शोभा देने लगी। अब वह शैलबाला, और वह प्रभावती न रहीं । उन लोगों ने थोड़ी अवस्था के बालक का वेष धारण किया। परस्पर दोनों को देख कर आश्चर्यमय हुईं । शैलबाला बोली "तुम तो भाई सचमुच पुरुष होगयी हो, अब चि-न्हाई नहीं पड़तीं, एक बार आरसी लेकर अपना श्रीमुख देख लो तो चलैं।"

प्रभा—"तुम देखो । मुझ को इस समय इन सब बातों की साध नहीं है"

शैल—"मैं तो देखूंहीगी, परन्तु तुमको भी देखनाही पड़ेगा।

शैलबाला उनका हाथ पकड़ कर आइने के निकट ले आई, और बोली 'पुरुष के साज से तुमको सचमुच मैं पुरुष मालूम होती हूं तो यदि पथ में कोई अत्याचार करने आवेगा, तो मैं तुमारी रक्षा करूँगी।' शैलबाला के कमर से तलवार हाथ में लेकर एक पद आगे करदिया और धीरे २ उसको घुमाने लगीं। उसकी परछाहीं आ-

इने में पड़ने लगी। रणसाज से सज्जित होकर शैलबाला अपने को आपही देखने लगीं। माना अपने रूप पर आपही मोहित होगई। मृदु २ हँसी के साथ बोलीं "तो देखो कि पथ में कैसी तुम्हारी रक्षा करूंगी! इसी अवस्था में यदि दिलीप मुझको देखैं, तो क्या वे पहिचान सक्ते हैं?

प्रभा—"क्यों, यह वेष दिलीप को देखाने की इच्छा होती है क्या? शैलबाला हँस कर आइने के निकट से हट गयीं।

सब लोग जिस पथ से दिल्ली जाते हैं, उस पथ को छोड़ कर वे लोग गुप्तभाव से पर्वत के पथ होकर घोड़े पर सवार होकर दिल्ली को चलीं स्त्रियों को घोड़े के पीठ पर सवार हो चलना सुनकर हमारे पठक आश्चर्य न करै, क्योंकि हमलोग जिस समय की बात लिखते हैं, उस समय स्त्रियों को घोड़े पर सवार होने की रीति निन्दनीय न थी, इसका अनेक प्रमाण पाया जाता है। यह रीति यवनों के अधिकार होने पर उठगई है, इसमें कोई सन्देह नहीं, क्योंकि महाराष्ट्र इत्यादि देशों में जो यवनों के हाथ नहीं पड़े, अब भी स्त्रियां घोड़े की सवारी करती देखी जाती हैं।

जिस दिन वे लोग अजमेर से बाहर हुईं उससे पांचवें दिन सन्ध्या समय दिल्ली के इतने निकट आ पहुंची, कि

दिल्ली केवल दो घंटे की राह रह गई। किन्तु वे लोग उस समय और न चलीं, विश्राम के लिये क्षणकाल के निमित्त उसी पर्वत पर रहने की इच्छा करके, नोकर को कुछ भोजन की वस्तु लाने के लिये नीचे के एक गांव में भेजदिया उस समय सन्ध्या का पहिला पहर था। चन्द्रमा के किरण से पृथ्वी उज्ज्वल हो रही थी। चांदनी की ज्योति से चमकते हुये झरने का पानी पर्वत से बेग के साथ नीचे पथरीली जमीन पर गिर कर मानों मोतियों का थाल उछाल रहा था। उस जल के गिरने के मधुर स्वर से सुनने वालों के कान में अमृत की बर्षा होने लगी। शैलबाला और प्रभावती वहीं सुखभोग करती रहीं। पर्वत की शोभा देख कर शैलबाला का हृदय नये आमोद से पूर्ण हुआ। उसने जी खोल कर गाना आरम्भ किया। गाने के पहिले प्रभावती की ओर देख मन्द२ हँसती हुई बोली "तुमारेही मन के अनुसार गाती हूं, जिसमें तुमारी उदासी जाती रहै।

गीत।

यमुना तुम कस बहत सुछन्द। बिलसति लहरति तरल तरंगनि राख हिये मैं चन्द। धिक तोहि अंक मेलिबो चन्दहि जो नहि ढिग ब्रजचन्द। चम्पक लता रही मुरझानी कोकिल की रट बन्द। ब्रजबनिता सब भईं बावरी परि वियोग के फन्द। तनिक ताप नहि उदित भयो तोहि बिछुरन से नँदनन्द।

गाना समाप्त न हुआ था कि अकस्मात प श्चम दिशा से कुछ मेघों ने आकर चन्द्रमा को छिपा लिया और क्रमशः उन से आकाश छा गया। पृथ्वी अन्धकारमय हो गयी, बिजुली तड़पने लगी, अन्धकार छिन २ बढ़ने लगा, वायु के बन्द होने से वृक्षों की मरमराहट बन्द हो गई। आकाश मेघों से छिप गया, और वर्षा के लक्षण दिखाई देने लगे। वे दोनों स्त्रियां इस असहाय अवस्था में वर्षा का भयानक लक्षण देखकर डर गईं; क्रमशः वेग से वायु बहना प्रारम्भ हुआ। तब वे लोग किसी आश्रय पाने के लिये व्याकुल हुईं। एक बेर बिजुली के चमकने से पर्वत में एक गुफा देख पड़ी वे लोग उसी गुफा में गईं. तब शैलबाला बोली "हमलोगों के पुरुष ेश धारन करने में अन्याय हुआ है। भला जब बर्षा देखकर स्त्री-स्वभाव प्रगट हो गया, साहस जाता रहा, तो फिर पुरुषबेश धारन करने का क्या फल हुआ?" प्रभावती बोली 'इस समय अपना साहस दिखाने का काम नहीं है। तुम को यदि पुरुषत्व दिखाने की इच्छा है तो जाओ आंधी के संगयुद्ध करो न"।

शैलबाला—"तुम य द रोने न लगतीं तो देखतीं कि मैं आंधी के सग युद्ध करती कि नहीं"।

उन लोगों ने जिस गुहा में आश्रय लिया था उसके दूसरे अलँग वैसीही एक दूसरी गुफा थी। परस्पर दोनों

गुफा में बहुत कम अन्तर था। एक गुफा से दूसरी गुफा को सब वस्तु देख पड़ती थीं। उन लोगों ने गुफा में आने के थोड़ेही देर पीछे दूसरे गुफा में दो मनुष्यों को हाथ में दीप लिये प्रवेश करते देखा। विदित हुआ कि उन लोगों ने भी वर्षा का आरम्भ देखकर इस गुफा में आश्रय लिया है। उन लोगों के गुफा में प्रवेश करने पर घोरतर आंधी और वृष्टि आरम्भ हुई। तीक्ष्ण बिज्जु छटा चोटियों को प्रदीप्त करती हुई दिगन्त में लीन होने लगी। प्रचण्ड वायु एक पर्वत से ठोकर खाकर दूसरे पर्वत पर जाने लगी। टकराने और रुकने से द्विगुण रोष और द्विगुण बेग से दूसरे २ चोटियों पर चढ़ाई करने लगी। प्रचण्ड वायु के धक्कों से पहाड़ का ढोका भयानक शब्द से दूसरे ढोके पर गिरते और दोनों टकराते हुये नदी में धमाधम गिरने लगे। वायु का सनसनाना, बिजुली का तड़पना और गिरना, पत्थर के ढोकों से धक्का लगकर वृक्षों का भहराना, इत्यादि शब्द दिग्मण्डल में गूंज उठा, मानो प्रलय वृष्टि से पर्वत कांप उठा, गुफा कांप उठी, प्रभावती भी कँपने लगी। केवल बालिका शैलबाला निर्भय बैठी रही, और प्रभावती का भय देखकर मनही मन हँसने लगी। इस समय उन दोनों मनुष्यों को जिन्हें दूसरे गुफा में प्रवेश करते देखा था चोर समझकर प्रभावती और भी डरने

लगी, और चुपचाप उसी गुफा के भीतर बैठी रही। यह देख शैलबाला ने उसके कान में कहा कि "कुछ भय नहीं है, यहां अन्धकार है, वे सब हमलोगों को नहीं देख सकते परन्तु यदि तुमारे रूप के प्रकाश से देख लें तो इस में मैं कुछ नहीं कह सकती --

सुनहु प्रभावति रूपवति तुव सुख चन्द प्रकाश।
फैल्यो चहुंदिशि अवनि में भयो घोर तम नाश॥

और भय कैसे हो सकता है. वे लोग भी दो पुरुष, और हम लोग भी दो पुरुष हैं, यदि यहां आवेंगे तो युद्ध किया जावेगा।"

अन्धकार में उनलोगों को किसी ने नहीं देखा, किन्तु दूसरी गुफा में प्रकाश रहने से प्रभावती और शैलबाला ने उस गुफा के लोगों को भली प्रकार देख लिया। प्रभावती ने शैलबाला का उत्तर नहीं दिया उसे धीरे २ हाथ से दबा कर रोक दिया, और इस भय से कि दूसरी गुफावाले कदापि सुन लेवें, शैलबाला ने भी फिर अधिक बात चीत न की, किन्तु कुछ देर में सावधान हुई इस कारण उन लोगों के सावधानी का कुछ फल नहीं हुआ। दूसरे गुहा का एक मनुष्य उन लोगों के बातों का अस्फुट शब्द सुनकर अपने साथी से कहने लगा, "पर्बत पर कोई आदमी आये हैं, मुझे कुछ मनुष्य का सा शब्द सुनाई देता है

प्रकाश को यहां रखकर तुम बाहर जाओ और यदि कोई आदमी देख पड़े तो भली भांति उसका पता और भेद लेकर आओ"। वह साथी बाहर आया। प्रभावती और शैलबाला ने इन सब बातों को सुन लिया, कि अब इसी गुफा में वह हमलोगों को ढूंढ़ने आवैगा, इसी भय से प्रभावती छिन २ शंका करने लगी। किन्तु साथी उनलोगों की गुफा में नहीं गया, कुछ देर उपरांत बाहरही से अपने गुफा में फिर गया, और अपने साथी से बोला कि "मैंने तो किसी को नहीं देखा। ऐसे घोर वृष्टि में इस पर्बत पर कौन आवैगा? आप को वायु के शब्द से मनुष्य की भ्रांति हुई है।" उसके इस भाषण से प्रभावती का भी सन्देह दूर हो गया, और उसे कुछ भरोसा हुआ। आसन विपद से निस्तार पाकर प्रभावती शैलबाला के असावधानता पर क्रुद्ध हो मनही मन उसे भर्त्सना करती हुई क्रोध से उसकी ओर निहारती रही। सौभाग्यवश शैलबाला ने अन्धकार में उसे न देखा उस समय वे लोग चुपचाप दूसरे गुहावाले लोगों को देखने लगीं। वे सब ऐसे बैठे थे कि एक आदमी की पीठ की ओर दूसरा मुंह किये था जो सन्मुख आकर बैठा था उसका मुख देख कर विदित हुआ कि वह मुसल्मान है और जिसका मुख नहीं देख पड़ता था, बातचीत के भाव से वह हिन्दू विदित

हुआ। मुसल्मान ने हिन्दू से कहा कि "मुहम्मदगोरी ने मझ को आपके पास भेजा है" हिन्दू ने कहा "इसका प्रमाण ?" यवन बोला " इसे देखो" कहकर उस केहाथ में कुछ दे दिया। हिन्दू बोला "हां तुम उन्हों के आदमी हो। उनसे कह दो कि जिससे वे दिल्ली के जय होने के निमित्त सहायता पाने की आशा करते हैं, वह उस कार्य्य के करने में प्रस्तुत है, एव जिस कौशल से उसे सम्पन्न करना होगा वह यह है कि—"

यह कहकर, किस कौशल से यवनों की सेना युद्ध में जय लाभ करैंगी, विजय किस प्रकार से सहायता करैंगे सविस्तर कहकर बोले कि "इससे निश्चयही उनकी जीत होगी, फिर युद्ध के समय जो जो करना होगा, मैं समय और सुभीता समझकर वैसही फिर कहला भेजूंगा। क्यों मैं जो कहता हूं वह सब उनसे सविशेष कह सकोगे ? यवन बोला "बहुत अच्छी तरह कह सकूंगा"।

हिन्दू०—"क्या कहोगे ज़राकह तो जाओ"।

विजय ने जो जो कहा था उसको वह कह गया। विजय ने कहा "अच्छा जाओ, उनसे कहना कि वे अपनी प्रतिज्ञा भूल न जावैं"। उन लोगों की बातचीत समाप्त हो गयी, झड़ी भी थम गयी, मानो विजय की विश्वास-

घातकता पर प्रकृति देवी भी क्रुद्ध होकर उसके कुविचार के साथ २ तर्ज्जन गर्ज्जन करती थी। उन सभों ने गुफा से बाहर होकर अपने २ स्थान को प्रस्थान किया।

बाईसवां परिच्छेद।

यवन ने गुफा से बाहर आकर देखा कि वर्षा बन्द हो गई है, चन्द्रमा के किरण से पर्वत शोभित हो रहा है मन्द २ शीतल वायु बहकर वृक्षों से पानी के बुन्द नीचे गिरा रहा है। मुसल्मान अब प्रकाश की आवश्यकता न देख, हाथ में जो दीप लिये था उसे बुझाकर चलने लगा। जाते २ जब कुछ दूर गया तो दो घोड़े उसको दीख पड़े। शैलबाला और प्रभावती ने उन घोड़ों को चरने के लिये छोड़ दिया था। आंधी और वृष्टि के समय उन सभों ने भी एक बड़े चट्टान के नीचे आश्रय लिया था घोड़ों को देख यवन के मन में सन्देह हुआ। वह अपने चित्त में अनेक प्रकार का तर्क वितर्क करने लगा, कि यह तो चढ़ने के घोड़े देखता हूं, लगाम इत्यादि सब दियेहुये कसे कसाये हैं। तो इस पर्वत पर अवश्य कोई न कोई है। उस हिन्दू का अनुमान मिथ्या नहीं है, वे सब वृष्टि देखकर पर्वत के किसी गुफा में ठहरे होंगे। इसी से

उस समय मैंने किसी को भी नहीं देखा। यदि उन सभों ने हमलोगों की बात सुन ली हो तो क्या होगा?। इस्से तो देखता हूं कि इस बेर भी युद्ध में लाभ नहीं हुआ चाहता"। वह उस स्थान को फिर देखने चला। चांदनी के प्रकाश में गुफा के चारो ओर भली भांति देखा किन्तु किसी को न पाया। तब उस गुफा के निकट इधर उधर देखने लगा कि कोई और गुफा ऐसी है कि नहीं, कि जिसमें आदमी ठहर सके, ढूंढ़ते २ उसने शैलबाला और प्रभावती के गुफा में प्रवेश किया। उँजियाले से अँधेरे में आने के कारण वह पहिले उन लोगों को न देख सका। उसको पैठते देखकर, शैलबाला ने समझा कि यह किसी अधर्म्म के अभिप्राय से यहां आया है। प्रभावती को कुछ समझने की शक्ति बाकी न रही। भय से उसका रुधिर सूख गया, वह अडोल बैठी रही। मुसल्मान गुफा में हाथ फैलाकर देखने लगा कि कोई है कि नहीं, इसमें अकस्मात् उन लोगों के शरीर का स्पर्श हुआ। उसने देखा कि हमारी सब बातें इन लोगों ने सुन ली है, बिना इनके बध के अब कोई दूसरा उपाय नहीं है। सहसा जो हाथ उन लोगों के शरीर में लगा था उसके उसी बाँहु में एक तरवार का नोक बिध गया। शैलबाला उसके पांव में तरवार मारने चली थी। उसके पांव में तरवार मारने

का शैलबाला को दो कारण था। प्रथम यह कि, वह चल न सकैगा तो हमलोगों पर अत्याचार नहीं कर सकैगा, हमलोग स्वच्छन्दतापूर्वक भाग सकैंगी, दूसरा यह कि, वह यवन शिविर में न जायगा, तो मुहम्मद गोरी उस हिन्दू के विचार के अनुसार कार्य्य भी न कर सकैगा।

शैलवाला ने विचारा कि इसके पांव में चोट लगने से यह चलने में असमर्थ हो जायगा, और हमलोग आदमियों से उठवा कर इसै दिल्ली ले जावैंगी और जो जो सुना है सो सब पृथ्वीराज से कहैंगी। ऐसा होने से यह युद्ध के समय तक बन्दी रहैगा और तब तक आरोग्य भी हो जायगा। युद्ध समाप्त होने पर उसको बन्दी रखना किम्बा छोड़ देना पृथ्वीराज के दया पर निर्भर होगा।" किन्तु उनकी चेष्टा निष्फल हुई। मारने की समय उस मुसलमान ने हाथ आगे बढ़ाया था और शैलवाला का हाथ अस्त्र चलाने में निपुण न रहने के कारण तरवार पांव में न लगी, यवन के भुजा में खुभ गयी। तुरंत यवन ने अपने दूसरे हाथ से अस्त्र सहित शैलवाला का कोमल हाथ पकड़ उसे बलपूर्व्वक गुफा से बाहर ले आया। उसे ले जाते देख कर उसके विपत्ति के आशंका से डरकर, प्रभावती जंचेस्वर से "रक्षाकरो रक्षाकरो" कहती हुई उनलोगों के संग बाहर निकल आई। निकट

ही में "कुछ भय नहीं, कुछ भय नहीं" किसी ने उनको धैर्य्य दिया। उन्होंने देखा कि एक युवा पुरुष घोड़े की पीठ पर नंगी तरवार हाथ में लिये दौड़ताहुआ उनलोगों को ओर बढ़ा चला आता है। देखते २ वह सन्मुख आकर उपस्थित हुआ। इस समय उनलोगों का सेवक भी दूसरी ओर से आगया। वृष्टि के कारण वह इतनी देर तक न आसका था। दो आदियों को दो ओर से आते हुवे देख कर वह मुसलमान अकेला उनलोगों के संग युद्ध करने में साहसी न हुआ। और क्षणमात्र रहने में भी निस्तार न देख कर वह उलटी सांस भागा। युवा पुरुष ने कुछ दूर तक पीछा किया किन्तु यवन की भांति पर्व्वत का पथ न जानने के कारण उसके पकड़ने की आशा त्याग पुन: प्रभावती और शैलबाला के निकट फिर आये। इन थोड़ी उमर के बालकों को ऐसे समय ऐसी अवस्था में पर्व्वतपथ से चलते देखकर आश्चर्य्यान्वित हुवे। शैलबाला ने इसबार दिलीप को पहिचाना। जिसकी मूर्त्ति रात दिन उसके हृदय के दर्पन में झलक रही थी उसको देखतेही शैलबाला ने पहिचान लिया, तो इसमें क्या आश्चर्य्य है ? किन्तु पुरुषवेश धरने और शैलबाला कुटीर-वासिनी बालिका से युवती अवस्था में आ जानेसे किरण-सिंह उसे न पहिचान सके। पहिचानने पर अह्लाद से

शैलवाला का शरीर गद् गद् हो गया, प्रचण्ड वेग से हृदय लहराने लगा, शैलवाला ने दिलीप को चकित हो कर देखा और फिर लज्जा से उसका मुख नीचे हो गया। ऐसा नहीं होने से उसका वह पूर्ण अनुरागसूचक और लज्जा से गुलाबी रंग चढ़ा हुवा मुखमंडल देख किरण सिंह को निश्चय सन्देह होता ; शैलवाला ने दो तीन बार सिर ऊपर करना चाहा, किन्तु दोनों तीनों बार मानों आप से आप मस्तक नीचे हो गया । प्रभावती ने शैलवाला का यह भाव देख कर, और नये अनुराग का सन्देह करके उसके कान में कहा "यह क्या ! तूम पुरुष वेश धारन किये हो, भला यह तो कहो कि यह युवा पुरुष अपने मन में क्या कहैगा ?" शैलवाला अज्ञान हो गयी और हृदय के उमग को कुछ शान्त करके किंचित मस्तक ऊपर कर प्रभावती के कान में धीरे २ कुछ कहने लगी उसको सुनकर प्रभावती ने कुमार से कहा "उस दुष्ट मुसलमान की बात स्मरण करके अब तक भी इनके मुख से बात नहीं निकलती क्रोध से अब तक भी इनका सर्व्वांग आरक्त हो रहा है।" कुमार मुसकिरा कर बोले "क्रोध का पात्र तो अब चला गया, यदि रहता भी तो मेरे जीवित रहने तक भय की आशंका न थी।"

शैलवाला अपने मनही मन कहने लगी "क्या कुछ बियोग की आशंका है?" किन्तु उनके मन की बात मनही में रह गयी ।

किरणसिंह ने पूछा कि तुमलोग किस प्रकार से बिपत्ति में पड़े। वाक् चतुरा शैलवाला के मुख से उस समय बात न निकली । बाल्यसखा दिलीप के संग बात करने में आज उसको इतनी लज्जा क्यों है? जिसके संग एकही स्थान पर शयन भोजन करने तथा खेलने में लज्जा न होती थी, आज उनसे इतनी लज्जा क्यों होती है? इसका उत्तर शैलवाला के अतिरिक्त हमलोग कोई नहीं दे सकते । शैलबाला को चुपचाप देखकर उन लोगों पर जो २ बीती थी प्रभावती ने संक्षेप से क्रमशः सब कह सुनाया । किरण सिंह सुनकर विस्मित हुये, बोले कि "हिन्दूबंश में ऐसा कौन कुलाङ्गार उत्पन्न हुआ है जो इस प्रकार निन्दित कार्य्य करने में प्रवृत्त हुआ? हमलोगों का सहायक ईश्वर है, उसी ने आपलोगों को यहां भेज दिया जिससे उस कुलाङ्गार की नीच इच्छा प्रगट हो गई । मैं देखता हूं कि अब इस बात के कहने के लिये मुझ को फिर जाना पड़ेगा? क्या आपलोगों ने उस विश्वासघातक को देखा था? उसकी पहिचान हो जाने से उसे उत्तम रूप से दण्ड दिया जाता"। प्रभावती ने कहा "नहीं, उसका मुख हम

लोगों ने नहीं देखा तो किस प्रकार पहिचानते ?" प्रभावती ने नौकर से घोड़ा तय्यार करने को कहा और फिर किरण से बोली "कि आज आपने हमलोगों का जो उपकार किया उससे उऋण होने को हमलोगों को कोई आशा नहीं है। आपके निकट हमलोग चिरकाल के लिये ऋणी हुये"। कि रणसिंह लज्जित होकर बोले "मैंने अपना उचित कर्म्म किया है, सुतरां आपलोग मेरे ऋणी नहीं हैं। अब मैं आजही दिल्ली फिर जाऊँगा, आपलोगों को यदि इसी पथ से चलना हो तो मेरे संग चलने से निर्विघ्न पहुंचा सकता हूं"। प्रभावती ने उनके संग जाने में इच्छा प्रगट की, किरणसिंह ने उन लोगों को संग लेकर उतरना आरम्भ किया। इधर दिन के भांति चांदनी दिक्‌मण्डल उँजियाला करने लगी। इसी चांदनी में उतरते हुये दोनों बालक को ओर देखकर किरण बोले 'आपलोग ऐसे अल्पवयस्क बालक हैं और फिर ऐसी असहाय अवस्था में पर्वतपथ से दिल्ली जाते हैं इसको देख मुझे अत्यन्त आश्चर्य होता है, कि बालकों के इस प्रकार जाने का क्या कारण है?" शैलबाला ने इस समय बात करने का अच्छा अवसर देखकर प्रभावती के कान में कहा कि "मैं इस युवा के संग एक चमत्कृत हँसी करती हूं, तुम चुपचाप होकर सुनो, कुछ प्रगट मत करना"। शैलबाला किरण से बोली

"आप यद्यपि हमलोगों के नये परिचयी हैं, तथापि आप के साथ जैसी मैत्री उपजी है, उससे आने का कारण आप से कहने में कोई बाधा नहीं है"। स्वर सुनकर किरणसिंह चिहुँक उठे, उनके कान में मानों बीणा सी बज गई। उन्होंने ज्योंही उस बालिकाका सुमधुरस्वर सुना अकस्मात् उनको शैलबाला स्मरण पड़ गई। उन्होंन एक लम्बी सांस ली। एक बार उनको बालिका का सन्देह हुआ। किन्तु उन्होंने उस सन्देह को हृदय में स्थान न दिया। शैलबाला प्रभावती की ओर दिखा कर बोली "ये इसी थोड़ी अवस्था में एक बालिका पर आशक्त हो गये हैं। उसके देखने के लिये पिता माता की आज्ञा उलंघन कर घर से भाग आये हैं। मैंने अत्यन्त निषेध किया परन्तु उसका कुछ फल न हुआ तो अन्त में हम भी इनके सङ्ग चले आये।" इस बात को सुन युवा ने फिर एक लम्बी सांस ली। प्रभावती मन्द स्वर से शैलबाला से बोली "यहां भी खेल?"

शैल—"इसमें फिर लज्जा क्या है? इनके निकट लज्जा का कोई कारण नहीं है। मुझको बोध होता है कि ये युवा भी किसी युवती पर आशक्त हैं, इसी से तुमारे दुःख से दुख प्रकाश करते हैं।" किरणसिंह कुछ लज्जित हो गये। उनका मुख किञ्चित लाल हो गया। उनको निरु-

तर देख शैलबाला बोली "क्या मेरा अनुमान यथार्थ नहीं है ?"

किरण "जब आप लोगों ने जो खोलकर मुझ से बात की तो मुझको भी कह देना उचित है। आप का अनुमान सत्य है।" सुनतेही शैलबाला का हृदय डोलाय मान हो गया। "तो क्या वही शैलबाला उनके मन में बसी है ? अथवा किसी दूसरी युवती के लिये उन्होंने लम्बो सांस ली ?' वह बोली "तो जान पड़ता है कि आप उसी के निकट जाते हैं ?"

किरण - 'हाय ! नहीं। मैं अपने बंधु की भांति भाग्यमान नहीं हूं।'

शैल —'क्यों, क्या वह युवती आप से प्रेम नहीं करती।'

किरण - "मैं यह भी नहीं जानता, मैंने बहुत दिनों से उसे नहीं देखा।"

शैल "तो देखता हूं कि आप नये प्रकार के प्रेमी हैं, आप जिसके प्रति अनुरागी हैं उसके मन का भाव नहीं जानते, बहुत दिनों से उसका सम्वाद तक नहीं पाया, तो आप कैसा प्रेम रखते हैं ? मुझको बोध होता है कि आप की प्रीति वैसी गाढ़ी नहीं है।"

किरण—"आप ऐसा मन में न लावें, मेरा हृदय उसके देखने के लिये छिन २ व्याकुल होता है, किन्तु इस

समय सैनिक व्रत में व्रती हो कर उसके देखने का विशेष अवकाश नहीं पाता हूं।"

शैल - "वह युवती आप को प्यार करती है कि नहीं यह न जान कर आप उसके प्रेम में अनुरागी क्यों हुये ? वह यदि आपका प्रेम न करे तो ?"

किरण इसका कारण तो मैं नहीं कह सकता कि क्यों उससे प्रेम करता हूं केवल इतनाही जानता हूं कि हां मेरा प्रेम उससे है । वह यदि अब मुझको भूल गई हो, दूसरे से प्रेम करती हो, तौभी मैं उसी से प्रेम करूं‌गा किन्तु उसके कष्ट का कारण नहीं होऊँगा, उसकी इच्छा में बाधा न दूंगा, मुझको कष्ट होने पर भी उसके सुख से मैं अपने को सुखी समझूंगा ।" शैलबाला अब अधिक अपने को न रोक सकी; धीरे २ बोली "तुम जिससे प्रेम करते हो, वह युवती अवश्य भाग्यवती है ।" उसने बिचारा कि, किस भाग्यवती ने दिलीप को मोहित किया है ? क्या, वह मोहिनी वही बाल्य सखी शैलबाला है ? क्या मेरा ऐसा सौभाग्य है ?" योंही नाना प्रकार के सन्देह उसके मन को मथन करने लगे इतने में वे लोग भी पर्वत के नीचे पहुंच गये। वहां आने पर किरणसिंह ने बिजय को जाते देखा । बिजय, अपना कार्य्य सिद्ध हो जाने से शीघ्र चलने की कोई आवश्यकता न देख कर

गृह की ओर मुख किये धीरे २ चले जाते थे। उनके मन में यह बात न आई, कि इस कुसमय में पर्व्वतपथ में उनसे किसी से भेट होगी। किरणसिंह ने द्रुत वेग से आकर, विजय के बहुत पीछे चलने पर भी उनको देख लिया। विजय को इस समय यहां देख कर किरणसिंह विस्मित हो कर बोले "यह क्या? तुम यहां कैसे आये?" कुमार को बालकों के संग पर्व्वत से उतरते हुये देख कर विजय भी विस्मित हो कर बोले "और यह क्या? आप यहां क्यों?"

किरण—'मैं कहता हूं, पहिले तुम तो कहो?

विजय कुछ देर तक यह सोच कर कि क्या उत्तर दूं, बोले कि 'इस पर्व्वत पर एक सन्यासी बास करते हैं, वे भविष्यत् गणना कर सकते हैं, मैं इन सन्यासी महाशय से पूछने आया था कि इस बार युद्ध में क्या होगा, वृष्टि के कारण उस कुटी से अब तक लौट न सका। वर्षा निवृत्ति होने पर वहीं से आ रहा हूं।'

किरण—"तो सन्यासी ने क्या कहा?"

विजय—"उनसे भेट नहीं हुई, वे आज कहीं गये हैं। किन्तु आप आज यहां कैसे आये?"

किरण—"मैं कविचन्द्र के खोज में दिल्ली से यवन-शिविर को जाता हूं, किन्तु किसी कारण वश अब पुनः

दिल्ली को लौटा जा रहा हूं। बड़े भाग्य से तुम मिल गए, देखता हूं कि अब मुझे कदाचित् दिल्ली न जाना पड़ेगा, जिस कार्य्य के लिए मै जाता था वह तुम्हारेही द्वारा सिद्ध हो जायगा! मै जो कहता हूं इसे दिल्लीश्वर से कह देना।" इतना कह कर उन्होंने प्रभावती से जो कुछ सुना था सब विजय से कह दिया। विजय ने सुनकर ऐसा क्रोध प्रकाश किया कि यदि वे उस विश्वासघातक को पकड़ पाते तो मानो उसी चण उसका रक्त पान कर जाते। कुमार ने विजय को यथोचित रीति से समझा कर कहा "तुम वृथा क्यों क्रोध करते हो? इस समय क्रोध करने से क्या फल होगा तुम विलम्ब मत करो अभी दिल्लीश्वर के निकट जाकर ये सब बातें उनसे कहो, ऐसा करने मे यथार्थ फल दीख पड़ेगा, और वे सावधान हो जांयगे। और इसी के साथ एक मेरा उपकार करके मुझे अनुगृहीत करो। क्योंकि मैं अब दिल्ली न जाऊँगा, अतएव तुम इन दोनों बालकों को संग लेते जावो, ये लोग जहां जाने की इच्छा करैं वहां पहुंचा देने से मैं परम बाधित होऊंगा।" विजय बोले "कुमार ने जो कहा उसके करने को मैं तैयार हूं।"

"कुमार का शब्द" सुन कर शैलबाला चिहुंक उठी। "दिलीप कुमार! दिलीप – राजपुत्र! तो उनकी प्रणय पात्री भी कोई राजकुमारी होगी। अज्ञातकुलशीला शैल-

वाला अब कभी उनकी प्रणयपात्री नहीं । उनकी सुन्दरी प्यारी की निकट शैलवाला अब दासी की दासी है। बाल्य सखी शैलवाला की बात दिलीप के हृदय में अब एक बूंद मात्र भी स्थान नहीं पाती है ऐसा होता तो वे शैल-वाला को पहिचान सकते। यदि उस बाल्यसखी को मन में रखते तो अब तक अवश्य पहिचान लिये होते । जिस दिलीप का नाम मेरे हृदय में सर्व्वदा स्मरण रहता है, अब देखती हूं, कि वही राजकुमार बन कर इस अना-थिनी को न पहिचान सके, वे अब नवअनुरागी हुये हैं।' शैलवाला अपना पुरुषवेष भूल गयी, दिलीप ने उसको बालिकावस्था में देखा था, अब उसकी अवस्था बहुत ब-दल गई है इसको भी भूल गयी। शैलवाला ने अपने तईं न पहिचानने में दिलीपही का दोष देखा। उसने विचारा कि 'दिलीप नये अनुरागी हुये हैं।" शैलवाला ने उनकी दृढ़ प्रीति की जड़ उखाड़ने की चेष्टा की किन्तु हृदय की रोपी हुई प्रीति क्या कभी उखड़ती है।

प्रभावती यह सुनकर किरणसिंह विजय से उनलोगों को संग ले जाने को कहतेही निकट में आकर उनसे बोली "मैंने एक अपराध किया है, उसे क्षमा करना होगा।" किरणसिंह हँसकर बोले "आपने क्या अपराध किया ?"

प्रभा —"मैंने आप ऐसे उपकारी पुरुष से अपना प-रिचय छिपा रक्खा है।"

किरण—"मैंने अभी तक तो आप से परिचय पूछा नहीं।"

प्रभा—"जो आपके न पूछने पर भी मुझे कहना उचित था, अब परिचयदे कर आप के निकट प्रायश्चित करता हूं, आपने एक बार कबिचन्द्र का नाम लिया, था क्या आप से उनसे परिचय है?"

किरण—"है! मैं उन्हीं के खोज में दिल्ली से चला हूं, यदि ऐसा न होता तो आज आपलोगों के संग साक्षात्लाभ भी न होता।" प्रभावती बोली "मैं उन्ही की स्त्री हूं—

दिलीप विस्मित हो कर बोले "आप कबिचन्द्र की स्त्री हैं? आपलोगों ने तो यथार्थही पुरुषवेश धारण किया है. मेरा सन्देह सत्य हुवा! तो आप लोगों के दिल्ली आने का क्या कारण है?" प्रभावती बोली "हमलोग भी अजमेर से उन्हीं के लिये आती हैं जिसके लिये आप जाते हैं, उसी हेतु यदि हमलोगों को भी संग लेते चलैं, तो आप हमलोगों का परम उपकार करें।" प्रभावती फिर शैलबाला से बोली "क्या कहती हो शैल। इनके संग चलने में अच्छा होगा न?" "शैल!" सुन कर तो कुमार चिहुंक उठे। गंभीर स्वप्न देखते २ अकस्मात् नींद खुल जाने से जैसे स्वप्न की बातें सत्य हो पर मन विह्वल हो

जाता है उसी प्रकार किरण का मन भी विह्वल हो गया। वे विचारने लगे—"तो क्या यह वही मेरे हृदय की शैलबाला तो कहीं नहीं है? मेरी शैल भी तो अजमेरही में रही?"

कुमार को अब उस बालक के मुखमंडल में शैल-बाला के मुख का आकार झलकने लगा, वे अत्यन्त प्रेम से उसका मुखारविन्द देखने लगे, अस्फुट स्वर से उसका नाम उच्चारण करने लगे, उनके ओठ कँपने लगे, उन्होंने अपने बाल्यसखी को पहिचान लिया। आनन्द से उनका हृदय विह्वल हो गया, जान न पड़ता था कि किस भा-वना से अथवा किस अभिलाषा से वे किंचित अधीर हो गये—फिर थोड़ेही देर में गंभीर भाव से हृदय का उमंग शान्त कर मनही मन बोले "शैल! तुम अब वह कुटीर वासिनी बालिका क्यों नहीं रही? तुम अब वह बाल्या वस्था की चंचल मूर्ति क्यों नहीं रही? यदि वैसी होतीं तो आज तुम को उसी बाल्यावस्था के प्रीति के अनुराग से आदर करने में कुछ भी संकुचित होना न पड़ता।"

कुमार ने समझा कि हमको पहचान कर शैलबाला हमारे मन का भाव जानने की चेष्टा करती है। उसकी इस छल से अपने मनही मन हँसे। किरणसिंह हर्ष से गद्गद चित्त हो प्रभावती के प्रस्ताव से सम्मत हुवे। शै

लवाला ने भी उनके मन का भाव समझ लिया और देखा कि अभी तक दिलीप का हृदय शैलवाला से पूर्ण है, वह अब तक मिथ्या दोष लगा रही थी। शैलवाला और प्रभावती का दिल्ली जाना बन्द हो गया, यह देख कर बिजय भी अतिशय हर्षित हुवे। वे इसी चिन्ता में पड़े थे कि उनलोगों के दिल्ली जाने से पृथ्वीराज उनलोगों से विजय की कुमंत्रणा सुनकर सचेत और सावधान हो जावैंगे अब वे निश्चिन्त होकर घर की ओर चले और अपने मन में कहने लगे कि 'अब की ईश्वर अवश्य पृथ्वीराज से बिमुख है। चन्द्रपति पकड़ेही गये, मेरा कुबिचार बारम्बार प्रकाश होकर भी छिपताही जाता है, चारों ओर से यवनों के जय होने का सुबोता होता जाता है। अब देखा चाहिये, मेरी आशा सफल होती है कि नहीं?

तेईसवां परिच्छेद।

महम्मदगोरी ने कविचन्द्र को बन्दी किया था। हत्या तो मुसल्मानों का स्वाभाविक कार्य्य है, सो न कर उनको बन्दी क्यों किया? इसमें अनेक कारण हैं। उन्होंने सोचा कि "यदि युद्ध में पराजित हुये, तो कविचन्द्र के बध करने से पृथ्वीराज क्रुद्ध होकर समुचित दण्ड विधान करेंगे। और कविचन्द्र को हाथ में रखने से यदि यवन लोगों में

से कदापि भूल चूक से कोई कैद हो जावे, तो उद्धार का उपाय रहैगा और यदि युद्ध में जय लाभ हुआ, तो उस को मारने में कितनी देर लगैगी? ऐसा होने से एक बार उसका अहङ्कार चूर्ण किया जावेगा" । इसी प्रकार सब ओर बिचार कर उन्होंने कविचन्द्र का बध न किया। अत्यन्त सावधानी के साथ उनके हाथ पांव शृंखलाबद्ध कर कैद में रख छोड़ा। रात दिन उनके शिविर की चारो ओर हथियारबन्द पहरेदार रहते थे, और वे शिविर में किस भाव से हैं, क्या करते हैं, पल २ पहरेदार लोग शिविर में जाकर देखा करते थे। इस अवस्था मे रहने से कविचन्द्र को भागने की कोई सम्भावना नहीं थी । तमाम दिन कष्ट में बिताते, केवल प्रतिदिन सन्ध्याकाल में वे एक बार एक नदी के तीर पर जो शिविर के निकट थी जाकर अपने हाथ से भोजन बनाकर आहार करने पाते थे और उसी समय प्रहरी लोग क्षण काल के लिये बन्धन खोल देते थे। पहिले पहिल दो तीन दिन तक तो उनके भाग्य में यह भी न था। यवन लोग उसी शिविर में भोजन की सामग्री लाते और वहीं पकाने को कहते थे। उन्होंने उस खेमें में जहां यवनों को छुवाछूत थी रसोई बनाना अस्वीकार किया। यवनों ने सोचा कि 'अभी नहीं बनाते, जब क्षुधा लगैगी. पेट जलैगा तो कहना न पड़ैगा।" । किन्तु

दो तीन दिन व्यतीत होने पर, वे क्षुधा तृष्णा से सुस्त हो गये, परन्तु उनके क्षत्रीय तेज और हिन्दू निष्ठा में कुछ भी कमी न हुई। उन्होंने वहां भोजन करना स्वीकार नहीं किया। बोले "मृत्यु होने से भी यवनों के छावनी में भोजन न करेंगे" यवन लोग इस विचार से कि उनका मर जाना अच्छा न होगा, छावनी के निकट एक नदी तीर पर दिन के अन्त में उनको एक बार ले जाने पर बाध्य हुये। वे जब वहां जाते तो छः प्रहरी हथियारबन्द उनके संग जाते थे। जब तक वे स्नान भोजनादि समाप्त करके फिर न आते तब तक वे सब सिपाही उनके संग २ रहते थे। पहिले पहिल इसी प्रकार बड़ी सावधानी आरम्भ हुई। किन्तु जब कैदी के भागने की इच्छा और चेष्टा किसी तरह से देखने में न आई तो क्रमशः सावधानी कुछ कम हो चली; छः प्रहरी से चार हुये, चार से तीन हुये, क्रमशः उसमें और भी कमी हुई। केवल दो प्रहरी रह गये। किसी २ दिन एक प्रहरी भी रहता था। उन सभों ने विचार किया कि, कैदी से भयही क्या है? यदि भागने की चेष्टा करैगा, तो निकटही में छावनी है, एक हाँक देने से क्षणभर में कितने आदमी आ जायँगे।

एक दिन सन्ध्या काल में कविचन्द्र नदी के तीर पर वृक्ष के जड़ के निकट बैठकर रसोई बनाते थे, निकट में दो

प्रहरी बैठे हुये थे। अमावस्या की रात थी, चारोंओर अन्ध-कार था। केवल उनके रसोंई की अग्नि से थोड़ी दूर तक प्र-काश था। अकस्मात् कविचन्द्र को मालूम हुआ कि जैसे नदी से होकर एक नौका चली गई है, और तुरन्त उसी समय उनके सन्मुख एक छोटासा टुकड़ा पत्थर का गिरा। उन्होंने उसको हाथ में लेकर देखा, तो उसमें एक पत्र बँधा है। उन्होंने शीघ्रही उस पत्र को खोल लिया। सिपाही सब पत्थर पड़ने का शब्द सुनकर "क्या है, क्या है" करके नि-कट चले आये। कविचन्द्र बनावट का भय प्रगट करके बोले "न जानैं क्या है, किन्तु मुझ को बड़ा भय जान पड़ता है। राम राम"। एक प्रहरी भूत समझकर बहुत डर गया। दूसरे ने समझा कि "कोई आया है"। वह चारो ओर फिर कर देखने लगा। अन्धकार में कुछ भी न दीख पड़ा। सोचा कि किसी निशाचर पक्षी ने वृक्ष से कुछ नीचे गिरा दिया है, उसी का शब्द हुआ है। इसी समय छावनी की ओर कुछ भयानक कोलाहल उठा, उन्होंने उसी डरे हुये प्रहरी से शिविर की ओर देखने के लिये जाने को कहा कि देख क्या होता है। किन्तु कवि-चन्द्र की बात से वह अत्यन्त डर गया था, शिविर तक अकेले जाने में उसको भय मालूम होने लगा। जाने में उसकी अनीच्छा देखकर, दूसरा प्रहरी बोला "तो मैं

जाता हूं, खेमें में क्या शोरोगुल होता है देख आऊं। तुम होशियारी से पहरा दो। अगर मेरे आने में कुछ अर्सा हो, तो कैदी को साथ लेकर खेमें में चले आना। मेरी इन्तिज़ारी मत करना"। उसके चले जाने पर कविचन्द्र ने पत्र पढ़कर देखा तो उसमें यह लिखा पाया कि "हम लोग आपके उद्धार के लिये आये हैं। कोई भय नहीं है, आपका किस प्रकार शीघ्र उद्धार किया जा सकता है उसे स्थिर करें तो किसी भांति उसे लिखकर जल में बहा देने से हमलोग पा जावेंगे"।

चन्द्रपति ने सोचा कि "यदि इसी सुअवसर में भागें तो भाग सकते हैं, क्योंकि अब केवल एकही प्रहरी यहां रह गया है. उसके हाथ से तदबीर किम्वा बल से भाग सकते हैं, अधिक प्रहरियों के आने से फिर भागना इतना सहज न होगा" इतना बिचार उसी पत्र की पीठ पर कोयले से लिखा कि 'प्रहरी एकही है और अवसर अच्छा है"। पत्र लिखकर उसको उत्तम रीति से लपेट वृक्ष के नीचे से कई एक पत्ते बीन लाये। उन्हीं पत्तों से एक छोटी सी नौका का आकार बनाकर और एक बरतन हाथ में लेकर जल लाने के बहाने से नदी की ओर चले, प्रहरी संग २ चला। इसलिये कि कोयले का लेख जल से मिट न जावे कविचन्द्र ने उस पत्ते की नौका में करके उस पत्र

को जल में बहा दिया । पत्र बहाकर और जल लेकर लौट आने की समय वे बारम्बार पीछे फिर देखने लगे कि पत्र लेने कोई आया कि नहीं । प्रहरी मनही मन और भी डरने लगा, उसने समझा कि कविचन्द्र ने किसी को देखा है । पहिले पत्थर गिरने से वह डरा तो थाही, बोला कि "क्या देखते हो" । उन्होंने "फिर नदी की ओर देखा, तुरन्त शरीर रोमांचित हो गया, आगे नौका पर उसकी दृष्टि पड़ी, अन्धकार और भय से उसने उस नौका को एक भयङ्कर मूर्ति के समान देखा । प्रहरी को जो भय हुआ था उस्को कविचन्द्र ने जान लिया । उनको आशंका हुई कि कदापि यह भय से चिल्ला उठे तो शिविर से और लोग भी आ जावेंगे और हमारे भागने में वाधा होगी, इसलिये उन्होंने उसका मुख बन्द करना आवश्यक देखा । पहिले बल द्वारा उसको नहीं रोक कर तदबीर का अवलम्बन किया । उन्होंने प्रहरी से कहा कि "देखो, साव धान ! इस समय उच्चःस्वर से बात मत करना । यदि उन सभों का मन दूसरी ओर हो और हमलोगों के उच्चस्वर पूर्व्वक बात चीत करने से वे सब हमलोगों को देख लेवें, अथवा हमलोगों पर क्रोध करें तो वृथा हमलोगों की जान जाय ।" प्रहरी को और भी अधिक भय होगया, इतनेही में किरणसिंह हाथ में तलवार लेकर उसकी ओर बढ़े ।

प्रहरी भय से उनको ताड़ के समान भयंकर काली मूर्ति की भांति देखने लगा, उनके हाथ की तलवार भी विपरीत लम्बी बोध होने लगी, वही मूर्ति क्रमशः आगे बढ़ कर मानो उसको पकड़ने आई। प्रहरी ने भय से मुग्ध की भांति भागने की चेष्टा की किन्तु पांव नहीं उठा। क्रमशः उस मूर्ति ने और भी आगे बढ़ कर एक हाथ से उसका हाथ पकड़ लिया और दूसरे हाथ से तलवार दिखा कर वज्र समान गंभीर स्वर से कहा कि "खबरदार बोलना मत, चुपचाप साथ २ चले आओ। जो मैंने कहा है इसके विरुद्ध चेष्टा करने से इसी तलवार से तेरा मस्तक काट डालूंगा।" प्रहरी ने कुछ भी उत्तर न दिया, उसका शरीर शून्य होगया, उसको कुछ भी न सुन पड़ा। उसके गिर जाने का लक्षण देख कर किरणसिंह ने हाथ छोड़ दिया, वह अचेत होकर गिरपड़ा। कविचन्द निकट आकर बोले "अब इसको नौका पर ले चलने की आवश्यकता नहीं है, यह भय से अचेत होकर पड़ा है। जब लों उसको ज्ञान होगा तबलों तो हम लोग बहुत दूर निकल जायंगे और वह जानताही नहीं कि हम लोग किस ओर जायंगे तो ज्ञान होने पर भी मार्ग न बतला सकेगा।" तब उनलोगों ने नौका पर आरूढ़ होकर उसे खोल दिया। नौका पर आरूढ़ हो कर कविचन्द्र ने देखा कि वही कुटीरवासी

दिलीपसिंह उन के उद्धारकर्त्ता हैं। उनको देख कर विस्मित हुये, पूछा कि "क्या तुम दिल्ली से आते हो?" किरण बोले "हां, आप को यवन शिविर से आने में विलम्ब देख कर मैं महाराज से आज्ञा लेकर आप की खोज में आया था।" कविचन्द्र को इच्छा हुई कि शैल-वाला और प्रभावती का सम्बाद दिलीप से पूछें कि कुछ जानते हैं कि नहीं, किन्तु अजमेर का सम्बाद उन को विदित होने की कोई सम्भावना न देख कर उन से नहीं पूछा। क्रमशः शिविर से नौका दूर निकल जाने पर कि-रण ने पूछा कि "अब क्या फिर कोई भय है?" कविचन्द्र बोले "नहीं अब कोई भय नहीं। इस समय दिल्ली का समाचार क्या है? उस के सुनने के लिये मेरा मन अत्यन्त चंचल हो रहा है, शीघ्र कहो।"

किरण -"दिल्ली का समाचार सब मंगलमय है। अब अधिक रात गयी, सोते चलो, वे सब बातें फिर करेंगे।" किरण की इच्छा न थी, कि शैलवाला और प्रभावती का हमारे संग आना चन्द्रपति आज जान लेवें! उन्होंने विचार किया था कि, चन्द्रपति के सो जाने पर प्रभावती को उन के निकट भेजेंगे, ऐसा होने से नींद खुलने पर अकस्मात् प्रभावती को निकट देख कर, चन्द्रपति अति-शय विस्मित् और आह्लादित होंगे। इसके उपरान्त बात

चीत में उन लोगों के आने की कथा कह देवेंगे अतएव उन्हों ने आज अधिक बातचीत करना न चाहा । दिल्ली का कोई मन्द समाचार न सुनने से चन्द्रपति निश्चिन्त हुये। किन्तु थोड़ासा सुन्ने से संतुष्ट न हुये। समग्र रात वे दिलीप से दिल्ली का सम्बाद सुनते, युद्ध का क्या सामान होता है जानते, महम्मदगोरी और विजय की सलाह जो सुना था उसे दिलीप से कहते, तब संतुष्ट होते, किन्तु किरण की उस विषय से नितान्त अनिच्छा देख और उनको विश्राम करने देना यथार्थ आवश्यक जान कर, आज को रात सब बातें करना उचित न समझा। किरण सिंह बोले 'नौका में और २ लोग हैं, आओ चलें नौका को छत पर सोवें।" किरणसिंह और कविचन्द्र उस रात को नौका की छत पर सो रहे। बहुत दिनों पर आज यवनों की 'कब्र" से निस्तार पाकर, पराधीनता के बन्धन से छूट कर, दिल्ली का सब मगल सुन कर मन के आनन्द से, स्वाधीन वायु भोग करते हुये, क्षण कालही में चन्द्र-पति गम्भीर निद्रा में मग्न हो सो रहे। उन के सो जाने पर, किरण सिंह वहां से धीरे २ उठ कर चले गये और प्रभावती को उनके निकट भेज दिया। प्रातःकाल नींद खुलने पर कविचन्द्र ने सहसा देखा कि प्रभावती उन के चरण के समीप बैठी है। उन के आखों में सन्देह उत्पन्न

हुआ, और उन्हीं ने समझा कि इस समय निन्द्रा में कहीं स्वप्न तो नहीं देखते । फिर जब भली भांति निरख कर देखा, तो आश्चर्य्य से मुग्ध की भांति अन्त में चिहुंक कर उठ बैठे । प्रभावती उस समय स्वामी के चरण के निकट बैठकर अनन्त सुखपूर्ण आशा से रोने लगी, जैसे 'लज्जावती लता' सादर छूने से मुरझा जाती है, शिशिर के सोहाग चुम्बन से फूल और भी क्लान्त हो जाते हैं बहुत दिनों पर कविचन्द्र का मुख देख कर मोहसागर में अभिमान से उनकी इतने दिन की वियोगयन्त्रणा मानो और भी उमँग उठी ।

कविचन्द्र भार्य्या का अश्रुपूर्ण मुख गोद में रखकर सुख से अभिभूत हो गये । कुछ देर इसी भांति चुपचाप मोह-मय भाव में उनलोगों ने काटा—क्रमशः दोनों में बात चीत आरम्भ हुई—प्रभावती अपने दुःख की बात कहती२ आह्लाद से बहुत रोई । जो जो कहने को मन में विचार किया था, उसका आधा भी न कह सकी, इस समय हर्ष से सब भूल गयी । जो मन में था उसे शेष कर बोली "हमलोग तो अब सुखी हुये, अब शैलबाला को भी सुखी करना चाहिये ।"

चन्द्र—"क्यों, वह कैसे दुखी है ?"

प्रभा—"क्या इसे आप नहीं जानते ? कि वह सर्व्वदा दिलीप २ पुकारा करती है । आप जानते हैं दिलीप कौन

हैं ? उनका यथार्थ नाम किरणसिंह है। वे समर संह के पुत्र हैं।" चन्द्रपति अत्यन्त विस्मित हो कर पूछने लगी, क्या ? दिलीप किरणसिंह हैं ? महाराज समरसिंह के पुत्र! यह तुमने कैसे जाना ?"

प्रभा---मैंने उन्हीं के मुख से सुना है?' प्रभावती अबलों इसका कहना भूलगई थी किरणसिंह के संग उनलोगों की किस प्रकार भेट हुई थी, उनको बात चलने पर अब उस ने वह वृत्तान्त कहा। पर्व्वत की गुफा में जो हिन्दू और मुसलमान का परामर्श सुना था उसको भी सविशेष कहा वह मंत्रणा किरणसिंह स्वयं पृथ्वीराज से कहने नहीं गये, बिजय को भेजा है। इसको सुनतेही कबिचन्द्र बज्राहत से हो गये बोले "क्या दैव ! अरे जो स्वयं विश्वासघातक है, उसी का बिश्वास कर इसे पृथ्वीराज के निकट भेजा है।, क्रोध और निराशा से उनका वह चमकता हुआ ललाट विकृत और पसीने २ होगया, गौरकान्ति बदन ने रक्त वर्ण होकर एक अपूर्व्व भाव धारण किया, उन्होंने यवन शिविर में महम्मदगोरी के साथ बिजय का जो परामर्श सुना था, उसको कहने के लिये किरणसिंह को बुलाया।

कुमार इस समय लों शैलवाला के संग बात करने में व्यस्त थे। नौका में आने की समय से शैलवाला और प्रभावती के एकत्र रहने के कारण अवसर न पाकर परस्पर

हृदयस्थ बातें न खोल सके । यवनों के भय से निश्चिन्त हो तथा निर्ज्जन स्थान में वार्त्तालाप का सूबीता पाकर, वे शैलबाला के सग मन खोल कर बात चीत करते थे । उन दोनों के पृथक होने पर, परस्पर के जीवन में जो जो घटनायें हुई थीं, उसी की बात चीत वे दोनों करते थे। शैलबाला बोली "आप अब राजपुत्र ठहरे, क्या अब भी यह अज्ञात कुलशीला बाल्यसखी आपके मन में रहैगी ?" कुमार बोले "इस कथन के भाव से तो बोध होता है, कि तुम यदि राजकन्या होतीं, और मैं राजपुत्र न होता, अर्थात् वही पहिले का दिलीपही रहता, तो फिर तुमको मेरा स्मरण न रहता। यदि ऐसा न होता तो इस प्रकार क्यों कहतीं ?" शैलबाला हँसकर बोली "स्त्रियों की प्रीति ऐसी नहीं होती, मैं पृथ्वीश्वरी होने पर भी आपको नहीं भूलती ।"

किरण—"तो फिर मैं क्यों भूलूंगा ?"

शैल—"मैं आपके समयोग्य नहीं हूं।"

किरण—"समयोग्य न होने पर भी मैं नहीं भूलता किन्तु शैल! भलायह तो कहो, तुमसमयोग्य कैसे नहीं हो ?"

शैल—"सभी विषय में, कुलशील प्रधान है ।"

किरण—"उसको तुम कैसे बिचार सकती हो ? क्या तुम अपना कुलशील जानती हो ?"

शैल – "नहीं, किन्तु यदि मैं जानती, तौभी तो आपके समयोग्य नहीं हो सकती मेरे पिता सन्यासी थे. इससे वे कितनेही बड़े क्यों न हों, राजवंशीय तो थे नहीं. और जो मैं नहीं जानती, तो क्या आप भी नहीं जानते?"

किरण – "यदि मैं जानूं भी तो क्या होगा?"

शैलवाला सहास्य बोली "क्या जानते हैं कहिये न?' किरणसिंह उसका परिचय कहते जाते थे, कि इसी समय कविचन्द्र का पुकारना सुनाई पड़ा। उनका सुख स्वप्नवत् भंग हो गया. इस भय से कि कदाचित् यवनों ने नौका पकड़ी हो .वे डरकर यह कहते हुये कि 'नाव बेग से चलाओ' एक फलाङ्ग में नौका से बाहर आ गये। बाहर आने पर भय का कोई कारण न देखा। किन्तु बिना कारण कविचन्द्र का शोकव्यजक शब्द और क्रुद्ध मूर्त्ति देखकर विस्मित हुये निकट आने पर कविचन्द्र ने महम्मदगोरी का जो बिजय के संग परामर्श सुना था उनसे कहा। किरण उसको सुनकर हतज्ञान से हो कर बोले "तो किस उपाय से देश की रक्षा होगी?"

चन्द्र – उपाय तो हम कोई नहीं देखते। नौका से उतर कर पगडण्डी से आजही दिल्ली की यात्रा करता हूं केवल इसी प्रकार शीघ्र जा सकता हूं। प्रभा से मैंने सुना है कि तुमअब चितोर जाओगी, तो तुम प्रभा और शैलवाला

को सग लेकर जाव। स्त्रियों को संग लेकर मुझको दिल्ली पहुंचने में बिलम्ब होगा, और युद्ध में स्त्रियों को संग रखना भी उचित नहीं है, बिपत्ति की सम्भावना है। मैं यदि युद्ध से बच आया, तो चित्तौर आकर प्रभा को ले आऊंगा, और शैलवाला के संग तुमारा विवाह कर दूंगा" किरण ने इस समय शैलवाला का परिचय चन्द्रपति के निकट प्रगट कर दिया। उन्होंने और सब बातें प्रभा और शैलवाला के निकट कही थी, केवल उसके कुलशील का परिचय न दिया था। बात चीत समाप्त होने पर चन्द्रपति ने चण भर भी बिलम्ब न किया, तुरन्त नौका से उतर दिल्ली का मार्ग लिया। प्रभावती नें निज मस्तक की मणि पा कर भी फिर खोया।

चौवीसवां परिच्छेद।

इधर प्रहरी शिविर में कोलाहल का कारण निर्णय करने आया तो देखा, कि शिविर में महा कलकल मच रहा है। सिपाहियों के आह्लाद सूचक जय २ शब्द से शिविर परिपूरित है, उस हुल्लड़ में कान देने की किसकी सामर्थ्य है। छोटे २ सिपाहियों का दल और पहरे वाले सब सुरापान कर रहे हैं। चारो ओर सब कोई आनन्द में मग्न हैं, मानों अभी युद्ध के जय का सम्बाद आया हो।

प्रहरी ने आश्चर्य से एक दूसरे प्रहरी से पूछा 'क्या हुआ ? इतनी खुशी किस बात की है ?'' वह मद्य ढालता हुआ बोला "हमलोग क्या जानैं क्या हुआ ? जब सभी आज खुशी में चूर हैं, तो बेशक कोई उमदी खबर होगी। और हमलोगों के खुशी करने का भी यही बाइस है।'' प्रहरी को यह देखकर कि यह सब अभी तक आह्लाद का कारण नहीं जानते, और भी आश्चर्य हुवा। उसने एक और आदमी से पूछा, तो वह बोला कि क्या तुमने "नहीं सुना ? जंग में हमलोगों की फतह होगी, किसी ने इल्म नजूम के जरिये से बतलाया है इसीसे सबको इतनी राहत हासिल हुई है इसप्रकार जब आह्लाद का यथार्थ कारण वह प्रहरी न जान सका तो महम्मदगोरी के खेमे में आकर उपस्थित हुआ। देखा कि, एक सिपाही के संग महम्मदगोरी और सभासद गण अत्यन्त ध्यानपूर्वक बात चीत कर रहे हैं।

यह कौन है, ? इसने क्या कहा है ?, और किस लिये यवनों को इतना आह्लाद हुवा है, इसका वर्णन उस प्रहरी के ज्ञान के निमित्त कर हम अपने पाठकों का भी कुतूहल निवारण करते हं।

बिजय का परामर्श जानने के लिये जो सिपाही दिल्ली के पर्व्वत पर भेजा गया था, उसने आज लौट कर महम्मदगोरी के निकट बिजय का परामर्श प्रगट किया। बिजय

को सहायता से इसबार वे लोग निश्चय रणविजयी होंगे, इसी आशा में महम्मदगोरी इत्यादि सब के सब आह्लाद में फूल उठे हैं। सामान्य पदातिक से अश्वारोही लों उन-लोगों का आह्लाद देख कर, कारण जानने के पूर्व्वही उनलोगों के आह्लाद का संग दिया है। प्रहरी ने आकर सुना कि महम्मदगोरी कहते हैं 'तो क्या हमलोगों को इस मर्तब: जंग में फतह हासिल होगी ? मगर जो वज़ीरजादा अपने इकरार से मुनहरिफ़ हुआ तो। उस सिपाही ने कहा कि "नहीं वे हर्गिज अपने वादे के बखिलाफ़ न करेंगे उनकी बातों पर मुझे पूरा एतक़ाद है।"

महम्मदग़ोरी अपनो सेनापति की ओर देखकर बोले "तो हमलोग आजही कल्ह में यहां से छावनी उठाकर दिल्ली पर चढ़ाई करने के लिये चलेंगे, एकबयक चढ़ाई करने से फतहयाबी हासिल होने की ज्यादातर उम्मीद है।" सेनापति बोला "हुजूर का हुक्म बशरोचश्म मंज़ूर है।" महम्मदग़ोरी ने फिर उस सिपाही से पूछा 'तो रास्ते में तो तुम्हें कोई आफत न आई ?' वह बोला "जी नहीं, कोई नहीं लौटने को समय किरणसिंह से ताड़ना पाकर जो वह यवनदूत प्राणभय से भागकर पर्व्वत में छिपा था उसे दो कारणों से उसने महम्मदगोरी के निकट प्रगट न किया। प्रथम तो यह कि, महम्मदगोरी उस

तमाम वृत्तान्त के सुनने पर उसके दूत कार्य्य से असन्तुष्ट हो कर, और उसको कादर समझकर, जो पुरस्कार देना स्वीकार किया था न देंगे; और दूसरे यह कि 'किरणसिंह जब उन बालकों को संग लेकर फिर पर्बत पर चढ़े थे, उस समय विजय को अकेले देखकर उन्होंने उनसे फिर साक्षात् किया था और विजयसिंह का उनलोगों के परा-मर्श प्रकाश होने के विषय में अभय प्रदान करने से वह भी सम्पूर्ण निश्चिन्त हुआ था, इसलिये उन सब बातों को महम्मदगोरी से प्रकाश करने को कोई आवश्यकता न देखी। महम्मदगोरी ने उसके दूतकार्य्य से अतिशय संतुष्ट हो कर उसको पुरस्कार दे बिदा किया। किन्तु पहिले जो बातें हुईं थीं वह उस प्रहरी को मालूम न थी इससे जि-तना सुना, उससे आह्लाद का कारण स्पष्ट न समझ सका। फिर जब वह सिपाही महम्मदगोरी के खेमें से बाहर आया तो प्रहरी ने उसी से सब समाचार सुना। आह्लाद का कारण मालूम होने पर वह भी और पहरेवालों की भांति आह्लाद में मत्त हो गया तथा मद्यपान और नाचने गाने में प्रवृत्त हुआ। जिस धर्म्मप्रचार के लिये मुसलमान लोग नरहत्या को भी मङ्गलदायक समझते हैं, सुरापान न करना भी उसी धर्म्म की एक विशेष आज्ञा है, किन्तु उन लोगों में से थोड़ेही ऐसे देखे जाते हैं जो इस आज्ञा का पालन करते हों।

आमोद प्रमोद में प्रहरो कुछ काल लों कविचन्द्र को बात भूल गया। अकस्मात फिर उसको कविचन्द्र की बात स्मरण हुई। देखा कि वे अभी तक नहीं लौटे। इतना बिलम्ब हुआ, और अभी तक कविचन्द्र शिविर में क्यों नहीं आये इसी सोच से वह फिर नदी के तीर गया। जहां कविचन्द्र भोजन बनाते थे, वहां किसी को न देखा तब समझा, कि जब मैं शिविर से इधर को आ रहा था, तभी वे किसी दूसरे मार्ग से शिविर की ओर गये होंगे। इतने में अकस्मात् एक बार किसी के गले का शब्द उस के कान में पड़ा वह चारो ओर ढूंढ़ने लगा कि यह कैसा शब्द है. देखा कि नदी से थोड़ी दूर पर एक आदमी पड़ा है, समझा कि वह भयङ्कर शब्द उसी का है। पहिले उसने उस्को न पहिचाना, किन्तु जब निकट आकर देखा तो जाना कि वही डरा हुआ प्रहरी है। उस्की ऐसी अवस्था देख उस्को विस्मय उत्पन्न हुआ। नदी से जल लाकर उसके मुंह और आंख पर देने लगा तो उस डरे हुये प्रहरी को कुछ चेत हुआ। किन्तु निकट में मनुष्य देखकर सहसा प्रेतयोनि समझ "अल्ला: अल्ला:" करके फिर अचेत हो गया दूसरे प्रहरी ने यह हाल देखकर उससे पूछा "क्यों भई तुझे क्या हुआ है? ऐसा क्यों करता है? मैं शेरअली हूं, मुझ से खौफ़ क्यों खाता है?" शेरअली की बात पर उसको वि-

श्वास न हुआ, उसने समझा कि शैतान उसके संग चातुरी करता है । वह निश्चलभाव से चुपचाप पड़ा रहा । शेरअली फिर बोला "उठ उठ कैदी कहां है ?" प्रहरी धीरे से आंख खोलकर डरता हुआ उसको देखने लगा । भली भांति देखने पर उसे विश्वास हुआ कि यह शेरअली है । तब तो वह उठ बैठा, किन्तु इस भय से कि कहीं बात करने पर फिर वही विकराल मूर्त्ति न आ जावे. उसने कुछ बात न की । शेरअली ने फिर पूछा "कह भई क्या हुआ? कैदी कहां है?" उसने अँगुली से नदी की ओर दिखला दिया किन्तु बोला नहीं, शेरअली ने पूछा "क्या? नदी में भाग गया ?" प्रहरी ने सिर हिलाकर जताया "नहीं"। शेरअली अधीर हो कर बोला "तो क्या हुआ कहता क्यों नहीं ?" प्रहरी भय से उस्के कान में कहने लगा "क्या करते हो ? इतने ज़ोर से क्यों बोलते हो ? ऐसा करोगे तो कैदीही की हालत हमलोगों की भी होगी ।" शेरअली और क्रुद्ध हो कर बोला 'तो कैदी क्या हुआ ? प्रहरी बोला 'अभी मुझको कहने से खौफ़ मालूम होता है, खेमें में चलकर कहूंगा" । प्रहरी ने जब इस प्रकार कविचन्द्र के बतलाने में विलम्ब किया, तो शेरअली क्रुद्ध हो कर उसको एक घूंसा मार कर बोला "कैदी कहां है? जल्द बतला वर्न. अभी तुझे मार कर चला जाता हूं' ।

प्रहरी ने कोई उपाय न देख धीरे से कहा "उसको शैतान ले गया" । इस बेर शेरअली ने समझा कि कैदी प्रहरी को धोखा देकर भाग गया । इस आशा से कि कदाचित् अब भी वह पकड़ा जावै उसने शिविर के लोगों को पुकारा । थोड़ही देर में मशाल लिये हुये अस्त्रधारियों से नदीतीर पूर्ण हो गया. किन्तु उनलोगों ने देखा कि उस के पकड़ने की आशा वृथा है कौन जानता है कि नौका किधर गई। यदि दोनों ओर नौका भेजी जावै तो भी यह निश्चय नहीं है कि कैदी पकड़ा जावैगा । इतनी देर में तो कहीं किनारे उतर कर वह लुक गया होगा। इसी कारण उस समय वे सब कविचन्द्र को ढूंढ़ने न गये, किन्तु महम्मदग़ोरी से यह सब वृत्तान्त कहने के लिये चले। इस घटना के उपरान्त भी उस डरे हुये प्रहरी को विश्वास था कि कविचन्द्र को शैतानही ले गया है इस अटल विश्वास को उसके मन से कोई दूर न कर सका। उसने उसी विश्वास के अनुसार महम्मदग़ोरी के निकट भी उस वृत्तान्त को वर्णन किया ।

पचीसवां परिच्छेद ।

महम्मदग़ोरी ने जब सुना कि कविचन्द्र भाग गये तो क्रोध से अधीर हो गया । उसे इतने दिनों तक जीवित रखने पर उसे अत्यन्त क्रोध होने लगा, । किन्तु अब क्रोध करने से कोई फल न था, यदि युद्ध में जय हुआ तो हिन्दुओं से इसका बदला लेंगे, यही विचार इस समय उसने क्रोध निवारण किया । महम्मदग़ोरी ने देखा कि कविचन्द्र भाग गये हैं, वे दिल्ली में पहिले पहुंचे तो हमलोगों के जय होने के पक्ष में बड़ा विघ्न उत्पन्न होगा। कविचन्द्र से विजय की विश्वासघातकता सुनकर पृथ्वीराज चौकन्ने हो जावेंगे और पहिली बार की भांति ताड़ना पाकर हमलोगों को फिर इस देश से भागना पड़ेगा । यदि ऐसा हुआ तो फिर किसप्रकार हम अपने देश और बंधुबान्धवों को मुह दिखलावेंगे? और अब बिलम्ब करने का प्रयोजन क्या है? विजय का परामर्श जानने के लिये इतने दिन तक मार्गप्रतीक्षा की गई आज वह भी विदित हो गया, अब जितना शिघ्र दिल्ली पहुंच सकें उतना ही उत्तम है । पृथ्वीराज जबलौं उत्तम रूप से युद्ध का सामान करें उसके पूर्व्वही चलना चाहिये ; आवश्यकता होने पर असत् कार्य्य करने में भी पाप नहीं है । यही सोच बिचार उसने क्षणकाल भी बिलम्ब न किया, उसी

रात सेना सहित उनने दिल्ली की यात्रा की। क्रमशः जंगल को राह गुप्तभाव से चलकर आठवें दिन रात्रि को स्थानेश्वर के समीप उतरे और वहीं एक जंगल में डेरा डाल दिया। रात को थोड़ेही विश्राम करने के उपरान्त वे कुछ सेना उसो वन में छिपा कर, २०००० अश्वारोही और ४०००० पदातिक (पैदल) सेना लेकर कुछ अंधेरा रहतेही नदी पार हो गये और सहसा हिन्दूसेना पर चढ़ाई की; इधर पृथ्वीराज की सहायतार्थ राजपुताने के कर देनेवाले औ सन्धिबद्ध राजा लाग सब अभी तक नहीं पहुंचे थे। इतने दिनों में केवल दोही एक राजे आये। विजय की चातुरी और कुटिलता से बहुतों को पत्रही न मिला, बाज २ ने आने की आवश्यकताही न समझी फिर जयचन्द्र के कुबिचार से भी बहुतेरे राजा बिचलित हो गये और कोई २ उनके बाक्यानुसार कार्य्य करने में बाध्य हो कर अपनी २ स्वीकार की हुई सहायता भेजने से विमुख हो गये। योंहीं नाना कारण से पृथ्वीराज को वैसी सहायता अभी तक प्राप्त नहीं हुई जैसी वे आशा करते थे। किन्तु सहायता की आशा न रहने पर भी पृथ्वीराज तुरंत उतनीही सेना जितनी उपस्थित थी लेकर युद्ध के लिये प्रस्तुत हो गये। पहिले से सज्जित हो कर, हिन्दूसेना बलहीन होने पर भी यवन सेना की छावनी

तक आने के पहिलेही उत्साह पूर्व्वक रणक्षेत्र में युद्ध के लिये आगे बढ़ी। पाठकगण, आज समरक्षेत्र का भयानक भाव देखकर हृदय का रक्त सूखा जाता है। एक ओर यवन सैन्यगण दृशद्वती नदी के पार जहां तक दृष्टि जाती है तहां तक फैले हुये घूम रहे हैं। किसी के हाथ में बर्छा, किसी के हाथ में कृपाण, किसी के हाथ में बल्लम, किसी के हाथ में धनुष, पीठ पर बाण से भरे हुये तरकस, सब के सब मानो आज भारतवर्ष को निःक्षत्रीय करने का संकल्प करके "अल्लाहो अकबर" शब्द से दिकदिगन्त पर चढ़ाई किया चाहते हैं। दूसरे ओर धनुर्धारी और कृपाणधारी राजपूत सैन्यगण यवनसंहारमूर्त्ति धारण करके विपक्षियों के हृदय में त्रास उपजाते हैं। सम्मुखही तोपों (शतघ्नी) की कतार (पांत) मुंह खोले हुये मानो शत्रुओं के बिनाश की प्रतीक्षा कर रही है। "जय, पृथ्वीराज की जय" "जय, समरसिंह की जय" इत्यादि शब्द हिन्दूसेना-गण में चारो ओर उठ रहे हैं। राजपूत और यवनसैन्यों के समावेश में किञ्चित भेद जान पड़ता है। क्षत्रीय सेना सम्मुख की कतार (श्रेणी) में प्रायः एक कोस में जुटी हुई है किन्तु पीछे के भाग में बहुत कम सैन्यों का समा-वेश है। मध्य श्रेणी के सेनापति पृथ्वीराज हैं, उनके दहिने अलँग समरसिंह अपनी मीवारस्थ सेना खड़ी किये हैं।

पृथ्वीराज के बांयें ओर की सैन्यश्रेणी युवराज कल्याणसिंह के हाथ में सौंपी गई है । पृथ्वीराज के पीछे विजयसिंह बहुत सी सेना लेकर, इसलिये प्रस्तुत हैं कि सन्मुख की श्रेणी में सेना के कम होने पर उसको पूर्ण करेंगे अथवा किसी स्थान में अकस्मात् कोई अनहोनी विपद् के पड़ने पर उसका निवारण करेंगे। इधर महम्मदगोरी ने सन्मुख की सैन्यश्रेणी बहुत कम कर पीछे की सैन्यश्रेणी प्रायः दो कोस तक फैला रक्खी है।

रात्रि व्यतीत हुई, पौ फटा, सिपाहियों में परस्पर देखादेखी हुई । चन्नोयसेना ने विकट गर्ज्जन कर तथा "जय, पृथ्वीराज की जय" —"जय, पृथ्वीराज की जय" इत्यादि जयध्वनि कर शत्रुओं पर चढ़ाई की । पृथ्वीराज की सैन्यश्रेणी ने पहिलेही युद्ध में प्रवृत्त हो यवन सेना के सन्मुखस्थ श्रेणीसमूह को एकही बेर में छिन्न भिन्न कर दिया, विकट गर्ज्जन से तोपों का शब्द होने लगा। गोलों की चोट से सन्मुखस्थ यवनों के विशालाकार हाथ खड्ग और धनुष सहित टूट २ कर गिरने लगे। किसी ने अल्लाह का आधही नाम उच्चारण करते २ प्राण त्याग दिया, कोई भाग चला, क्रमशः पृथ्वीराज की सेना और भी आगे बढ़ने लगी, और जयध्वनि करती हुई जल-प्रमाण वेग से यवनों को दूर प्रक्षिप्त करने लगी। महम्मद

गोरी जलाशय के जल की भांति सन्मुख-की सैन्यश्रेणी को पीछे से क्रमशः बढ़ाने लगी । तोपों के गोलों से निस्तार पाने के लिये, युद्ध करते २ सेना के सहित उनने किंचित् हट कर बगल से आक्रमण किया । सिपाहियों को उत्ते-जन वाक्यों से बढ़ावा देने लगी, उत्साह से स्वयं सिपाहियों के सन्मुख आकर अपने हाथ से तलवार चलाने लगी । ब-गल से हो कर एक बेर पृथ्वीराज की गोल को बिचलाने का उद्योग किया, किसी २ को बिचलाय भी दिया, किंतु चत्रीय, तलवार से आगे का यवन सैन्यदल पल भर में छिन्नमस्तक हो गया घोड़ों के सवार घोड़ों के पददलित हो गये । महम्मदगोरी ने सवार द्विगुणित पराक्रम के साथ अपनी समस्त सेना में से आधी सेना को एक साथही चलाकर पृथ्वीराज की गोल जहां बिचल गई थी उसी ज गह आकर प्रवेश किया. घोर संग्राम मच गया, समरसिंह और कल्याणसिंह की सेना ने यवनसेना को जो भीतर चली आई थी घेर लिया, घोड़ों की टाप और रथचक्र के रगड़ से उड़ती हुई धूलिराशि तथा तोपों के धूमसमूह ने नभमण्डल को छिपा दिया, मानो प्रलयकाल के मेघ-माला से दिगन्त व्याप्त गया, सूर्य्य छिप गये, चतुर्दिक् अन्धकारमय हो गया, तोपों का शब्द, सेना का कोलाहल, रणवाद्य का नाद एकत्रित हो कर प्रलय बज्र की भांति

गरजने लगा, दिङ्मण्डल मथन होने लगा, शीघ्रता पूर्वक तलवारों के चलने से मानो प्रलय की बिजुली गिरने लगी। वीरों के पद के धमक से पृथ्वी काँप उठी, मानो प्रलयविप्लव में भूमण्डल केन्द्रभ्रष्ट होने का उद्योग करता है। पृथ्वीराज ने सम्मुख से, तथा कल्याण ने बांये अलँग से, और समरसिंह ने दहिने ओर से यवनसैन्यदल को घेर लिया। इसी समय यदि विजयसिंह भी आकर चौथे ओर से घेर लिये होते तो गोल में से एक यवन भी बँच कर न फिरा होता, किसी भी यवन के लिये उसरात्रि का प्रभात न होता, किन्तु विजयसिंह क्षत्रीयव्रत का गुरु मन्त्र स्मरण कर स्वछन्द अपनी समस्त सेना लेकर पृथ्वीराज के पीछे निश्चिन्त हो बैठे रहे, वरन अपने सैन्य का उत्साह बन्द करने की चेष्टा की और कहने लगे कि 'अभी अवसर नहीं है'। यही कह कर सब को बोध देने लगे। इधर महम्मदगोरी की सेना तीन ओर से भयानक रूप से घिर गई, और अधिकांश सेना भूमि पर पड़ी हुई देखकर बाकी सैन्य समेत गोरी ने चौथी ओर से भागने की चेष्टा की। सब से आगे अपना घोड़ा दौड़ाया, और उनकी सेना पीछे उलटी सांस लेती हुई भागी, पृथ्वीराज समरसिंह और कल्याण तीनों ने उन सबों का पीछा किया और क्षत्रीय तलवार को यवनों के रक्त में डुबोने लगे। यवनों के दृशद्वती नदी

के पार भाग जाने पर क्षत्रीय लोग जय की पताका उड़ाते हुये अपने २ छावनी में फिर आये। हिन्दू रणविजयी हुये। सब के सब मिलकर महादेव की पूजा और आशापूर्णादेवी के जयकीर्तन में अधिक रात व्यतीत कर सो गये । भोर नहीं हुआ था कि पृथ्वीराज और कल्याण, सैन्यगण को युद्ध के लिये उत्तम रूप से सज्ज कर फिर महिषी और उषावती को देखने चले, विचार किया कि, वहां से आकर हमलोग नदी पार चलकर यवनों पर चढ़ाई करें। पहिले दिन के पराजय पर आज फिर पराजित होने से यवन फिर क्षणकाल भी भारतवर्ष में रहने के साहसी न होंगे।

छब्बीसवां परिच्छेद।

स्थानेश्वर में छावनी की एक कोठी में महारानी, मृत्युप्राय उषावती के बगल में बैठी हैं, और उसका मुख देख २ कर रो रही हैं। महिषी का अब वह शरीर नहीं है, अब वे पूर्णयौवना नहीं हैं, इन थोड़ीही दिनों में सब रूप इनका ऐसा बदल गया कि इस घटना के पहिले जिन लोगों ने इनको देखा था, वे लोग यदि इस समय अकस्मात् इन्हें देखैं तो पहिचान सकैंगे कि नहीं इस में सन्देह है। निकट में कल्याण और पृथ्वीराज खड़े हैं, वे लोग यह

विचार कर कि आज फिर युद्ध में जाना होगा इन लोगों को देखने आये हैं।

रात्रि व्यतीत हो गई है, किन्तु अभी सूर्य्य की ज्योति नहीं दिखाई पड़ती, इसलिये रोगी के निकट दीप जल रहा है। कल्याण दृष्टि लगाकर राजकन्या का वह निर्जीव निर्दोष मुखमण्डल देख रहे हैं, किन्तु इस समय वे क्या सोच रहे हैं, उनके हृदय में क्या भयानक विप्लव उपस्थित है, उसको कौन वर्णन कर सकता है? अग्निगिरि विदारण करने के पहिले यदि कोई उसके भीतर की अवस्था देखे हो; यदि कोई उसका उष्ण अग्निपदार्थ और धातुमय पदार्थ का अभिघात प्रतिघात रूप भयानक व्यापार अनुभव कर सके, तो वही कल्याण के चित्त का विकार समझ सकेगा। उनकी प्राणप्रिया उषावती आज मृत्युशय्या पर सोई हैं - और वेही उसके मृत्यु के कारण हैं। उन्होंही ने उसके बिमल चरित्र में कलंक लगाया था उन्होंही ने भ्रान्त हो कर उसको बज्र गम्भीर स्वर से 'मायाबिनी' (छलिनी) कह कर उसके कोमल हृदय को भग्न कर दिया था। कठोर आघात से जिस लता को उन्होंने छेदन किया था आज उसी छिन्न लता के लिये वे शोक करने आये हैं!

यही सब सोचते २ यातना और लज्जा से उनका हृदय विदीर्ण होता था, वे उन्मत्त को भांति उषावती के प्रातः-शशिसदृश मलिनक्रान्ति मुखमण्डल को एकटक देख रहे थे, उसके अधखुले लाल कमल सदृश युगलनयन को अव-लोकन करते थे। शोकाग्नि में उनका हृदय दग्ध होताथा। उनकी वह शोकव्यञ्जक वीरमूर्ति देखकर एक छोटा सा बालक भी उस शोक का अनुभव कर सक्ता था। पृथ्वीराज कन्या को देखकर अन्तःकर्ण में जो कष्ट पाते थे, उसके छि-पाने की चेष्टा करते थे, और इसमें कृतकार्य्य भी हुये, कुछ काल तक मुंह से कोई बात न निकली। पृथ्वीराज पहिले कुछ और बात कहकर बोले "महिषि! इस हृदयविदारक घटना में भी हमलोगों को अधीर होना उचित नहीं है। क्षत्रीकुल में जन्म लेकर देशरक्षाही हमलोगों का प्रधान धर्म्म है—आज फिर उसी देशरक्षा के निमित्त जाता हूं। इस समय सैकड़ों विपद के पड़ने पर भी उसमें निरुत्साही होना उचित नहीं, और उसमें त्रुटि न होनी चाहिये। अब मैं जाता हूं। देवी आशापूर्णाही तुमलोगों की सब विपत्तों से रक्षा करेंगी। उन्हीं के हाथ में अब मैं प्राणा-धिका पत्नी और कन्या को सौंप कर जाता हूं"। महिषी रो रही थीं, सब बातें उनके कान तक नहीं पहुंची, वे बोलीं "इस बार गृहलक्ष्मी हमलोगों को छोड़कर जाती

हैं, भाग्यलक्ष्मी भी हमलोगों के प्रति निर्दय होंगो । मेरे मन में शंका होती है कि इसबेर युद्ध में जयलाभ न होगा'।

पृथ्वी०--'सो क्यों महिषी! ऐसी बात तुमारे मुख से क्यों निकलती है? जिन यवनों को कल एकही बेर के युद्ध में परास्त किया क्या उन सभों से आज हमलोग पराजित होंगे? शोक से व्याकुल होने के कारण क्या क्षत्रियों की वीरता पर भी आज तुमको अविश्वास होता है? धर्म्म के जय में भी आज तुमको सन्देह उपजता है?। तो यदि सत्यही ईश्वर ने ऐसाही किया, यदि सत्यही अब अधर्म्म की जय हो, यदि अब से सूर्य्य और चन्द्र का प्रकाश पृथ्वी में न हो तो पराजित होकर मैं कभी जीवित न फिरूंगा। यदि युद्ध में जैलाभ हुआ तो मुझे देख पाओगी, नहींतो बसयह''—।

महिषी बोलीं—"देव! मैं यह इच्छा नहीं करती कि आप युद्ध में पराजित हो कर लौट आवें । परन्तु आप के साथ युद्धक्षेत्र में मैं भी प्राण त्याग न करने पाऊँगी इसी का मेरे मन में खेद रहैगा। किन्तु मन में यह विचार मत कीजिये कि हमलोगों का यही अन्तिम साक्षात् है। यदि आपकी मृत्यु हुई तो मैं भी आपकी अनुगामिनी होऊँगी। परलोक में फिर हम सब लोग एकत्र मिल सकैंगे, नाथ! तो अब आप विलम्ब मत कीजिये—अब हम

लोगों का सोच करके मनको कष्ट मत दीजिये"। कल्याण अब तक कुछ भी मुख से न बोले, उनके दुःखी चित्त से भला बात निकल सकती थी। अपनेही को इस मर्म्मभेदी घटना का मूल कारण समझकर वे खेदित चित्त से देवताओं के निकट प्रार्थना करते थे, हाय! किस्के कारण आज यह कुसुमलतिका अकालही में सूख गई? क्या वे उस विषय में सम्पूर्ण दोषी नहीं हैं? कल्याण के अन्तःकरण में मानो ये सब बातें प्रतिध्वनित होने लगीं—"मैंही सम्पूर्ण दोषी हूं, पृथ्वी में मेरे समान दोषी कोई नहीं है, मेरे ऐसा कोई पापी नहीं है। इस निर्दोष पवित्रहृदया बालिका का मैंनेही अविश्वास किया था? जो निर्बोध बाला मुझ को देववत् जानकर पूजा करती, जिस्का मुझी से सब सुख था, जो मेरे अतिरिक्त किसी को न जानती थी, उसका भी मैंने अविश्वास किया? क्या उसके सरलता का यही पुरस्कार है? क्या उसके हृदयदान का यही प्रत्युपकार है? मैंनेही निर्बोधभाव, निर्दयभाव से ऐसे कुसुमकलिका को जो खिलनेही चाहती थी तोड़कर दलित किया है। हा!--देवि! भगवति, चित्तौर अधिष्ठात्री! इस पाप का क्या प्रायश्चित्त है? मुझ को क्या दण्ड दोगी सो देव! मेरे हृदय में नर्क की अग्नि जला दो—मैं बिना कष्ट के उस्को सह लूंगा? किन्तु नर्क की ज्वाला क्या इससे भी भयानक

है ? नर्क की आंच क्या इससे भी अधिक जलावैगी? भग-वती! तुमारे निकट मैं जो प्रार्थना करता हूं क्या ऐसा अधिकार मुझ को है? इस पापी के मुख से तुमारा पवित्र नाम उच्चारण करने में क्या वह कलुषित न होगा? तुमारे निकट प्रार्थना करने का भी मुझ को साहस नहीं होता है। किन्तु देवि! प्रसन्न हो! मैं संकुचितभाव से तुमारे निकट केवल इतनीही प्रार्थना करता हूं। मैं अपने लिये प्रार्थना नहीं करता और जब तक जीता र-हूंगा न करूंगा. मुझ को अपने लिये कोई प्रार्थना नहीं करना है। किन्तु यही प्रार्थना करता हूं, कि उषावती को अपने अमृतमय गोद में स्थान दो, मैंने उसके हृदय में जो अग्नि जला दी है, ऐसा करो जिस्में वह तुमारे अमृत-जल से ठढो हो जावे"। —कहते २ उन्होंने फिर उषावती की ओर देखा —तुरन्त उनका हृदय दारुण दु ख से अधीर हो गया। उन्होंने आंखें बन्दकर लीं, और मन में बिचारा कि, क्या मैं अब भी उस पवित्र मुखचन्द्र देखने का अधि-कारी हूं? मैं घातकरनेवाला! मै स्त्रीहन्ता! सतीहन्ता! मैं अपनी प्राणाधिक् प्रणयनी का हन्ता हूं! मुझ को अब उस मुख के देखने का अधिकार नहीं है"। फिर मन में बिचारा कि "मैं तो अब युद्ध में जाऊँगा, मरूंगा, तो क्या मैं उषावती के निकट अपराधी होकर मरूंगा? नहीं मैं

अश्रुपूरित नेत्रों से उसके निकट क्षमा की प्रार्थना करूंगा, अपना अपराध मुक्तकण्ठ हो स्वीकार कर क्षमा चाहूंगा ; क्षमा किया तो उत्तम, नहीं तो समरभूमि में अपने को उषावती का अपराधी समझ इस जीवन को विसर्जन करूंगा। किन्तु किसके निकट क्षमा मांगूंगा ? उषा-वती के निकट ? उषावती तो पीड़ित है, मेरी उषावती तो अचेत है, मेरी उषावती तो मृत्यु के सन्निकट है, हाय!" कल्याण को अब विचार करने की भी शक्ति न रही। हृदय विदीर्ण होने लगा।

उनको चतुर्दिक शून्य जान पड़ने लगा। सिर घूमने लगा। विवश होकर राजकन्या के पायताने पलंग के स-मीप बैठ मूर्छित हो गये। उनका मस्तक राजकुमारी के चरण से टिक गया। दिल्लीश्वर उनकी यह अवस्था देख कर चकित हो गये, किञ्चित् डर भी गये। निकट आकर कल्याण का मस्तक पकड़ आदर से बोले 'कल्याण!, प्राणाधिक कल्याण!' कल्याण को सुध न थी कुछ भी न बोले। एक ओर प्राणाधिक कन्या आसन्नमृत्यु, है दूसरी ओर शोक में निमग्न महिषी, एक ओर मूर्छापन्न पुत्रतुल्य वीरकेशरी कल्याण; यह सब दशा देख पृथ्वीराज का हृदय भी शोकदलित हो गया। अकस्मात् सैन्यगण की ओर से सुन पड़ा "यवन आ गये" यवन आ गये —यह भयानक

कोलाहल उनके कानलों पहुंचा, समझ गये कि यवनों ने चढ़ाई की. साहसा महिषी से बोले "महिषी! अब मैं नहीं ठहर सकता, यवन आ गये हैं, अब मैं विदा होता हूं, युवराज कल्याण और उषावती तुमारे निकट रहेंगे, अब बिलम्ब करने से हमारे हृदय की दुर्ब्बलता प्रतीत होगी, स्नेह ममता के निकट क्षत्रियवीर्य्य पराजित हो जायगा।" महिषी सजलनयन हो बोलीं "देव! मैं अचेतन युवराज और मूर्छित कन्या को लेकर अकेली किस प्रकार रहूंगी? आप के चले जाने पर मैं अत्यन्त असहाय हो जाऊंगी, इससे फिर युद्ध में --" उनकी बात शेष न हुई थी कि पृथ्वीराज बोले "भद्रे! भगवती कात्यायनी तुमलोगों की रक्षा करेंगी, क्षत्रीकुललक्ष्मी इस क्षण निद्रिता नहीं है, धर्म्मही हमलोगों की सहायता करेगा।" महिषी बोलीं "किन्तु।"

पृथ्वी। "नहीं महिषी, अब किन्तु का समय नहीं है। मैं अनुचित बिलम्ब करता हूं, अब तुम रोदन कर के मेरी यात्रा में बाधा मत करो।"

महिषी। — "महाराज! क्षत्री की स्त्री भला स्वामी के युद्धयात्रा में कभी बाधा दे सकती है। मैं आप को बाधा नहीं देती—मैं केवल इतनाही कहती हूं, कि जब लों कुमार को चेत न हो, तबलों आप यहां ठहर कर हम

लोगों को ढाढ़स बंधावें। किन्तु इस से भी यदि युद्ध में किसी विघ्न की सम्भावना हो, तो इसी क्षण युद्ध यात्रा करके जयलाभ कीजिये।" अभी यह बात समाप्त न हुई थी कि कल्याण एक लम्बी सांस लेकर सचेत हुये। परिचारिकागण उनके मुख और आंख पर गुलाबजल छिड़क रही थीं। उनका जागना देखकर पृथीराज ने रानी से कहा "राजमहिषी, युवराज को चेत हुआ।" महिषी ने कल्याण से स्नेह पूर्व्वक पूछा "कल्याण! क्या तुमको अत्यन्त यातना हुई?" कुमार को कुछ भी सुनाई न पड़ा उन्मत्त की भांति मनही मन उच्चः स्वर से बोलने लगे "भगवति शैलसुते!, देवि क्षत्रकुललक्ष्मि!—" महिषी कुछ डर कर कुमार का हाथ धर "कल्याण। कल्याण, । युवराज कल्याण!" कह कर बार बार पुकारने लगीं। कुमार चिहुंक कर उठ बैठे। सहसा उन को प्रतीत हुआ कि जैसे सचमुच भगवती उनके रोदन से कातर होकर उनके निकट आई हैं, जब भली प्रकार निरखा तो देखा—कि राजमहिषी सन्मुख खड़ी हैं। उन को किंचित् लज्जा हुई, उनकी बात समाप्त हुई। किन्तु फिर उनकी आंखें बन्द हो गईं और मनही मन कुछ बोलने लगे "भगवती शैलसुते! देवि क्षत्रकुललक्ष्मि! यदि जन्म भर मैंने तुमारी आराधना की हो, तो उषावती

को एक बार चैतन्य कर दो, मैं एक बार उसके निकट मुक्तकंठ से अपना अपराध स्वीकार कर लूं, अपराध क्षमा की भिक्षा मांग लूं।" बोलते २ कल्याण का अधर कँपने लगा, बराबर अश्रुधारा उनके कपोल से छाती पर, और छाती से भूमि पर गिरने लगी। उन्होंने अश्रुपूर्ण लोचन व्यथित हृदय, व्याकुल दृष्टि से फिर उषावती की ओर देखा। तुषार की मारी मलिन कमलिनी को देख कर उनकी दृष्टि अटक गई। नेत्रों की धारा सूख गई, फिर एक बून्द भी आंसू नेत्रों में न आया। यदि पहिले की भांति रो सकते, तो भी तो हृदय की आग कुछ बुझती, किन्तु ऐसा भी न हुआ—हृदय नम्रतायुक्त, शरीर खम्भ के सदृश, रगों में रुधिर का प्रचार रुक गया, न तो वे कुछ देखते, न कुछ सुनते और न कुछ विचारते थे, ज्योतिहीन नेत्रों में टकटकी लग गयी। हठात् शरीर में रक्त चलने लगा, निर्जीव ज्ञान सजीव हो गया, चिन्ता हृदय में देख पड़ी, फिर विचारने लगे कि "आज यह सुन्दर मुख सूखा क्यों है? यह मधुर कण्ठ नीरव क्यों हैं? ये प्रेमपूर्ण नयन बन्द क्यों हैं? किस कारण इस की माता का हृदय आज शून्य है? पिता का हृदय भी शोक मग्न हो रहा है, किस कारण वे भी आज मृत्युप्राय हैं? मैं पाखण्डी हूं—बस मैं ही इसका कारण हूं। मेरे हृदय में गुप्त

भाव सें आग सुलग रही है, मृत्यु पर्य्यन्त उसको आहुति मिलेगी । तो मैं जाता हूं—तोप के जलते हुये मुख में गिर पड़ूं जिसमें पृथ्वी से मेरा बन्धन छूट जावे. हृदय तो छिन्न होही गया है, शरीर भी छिन्न हो जावे, जीवन विच्छिन्न हो । तो अब चलता हूं—जिसमें उषा के आगेही पृथ्वी से बिदा हो जाऊं ।" इस समय पृथ्वीराज गम्भीरस्वर से बोले "युवराज कल्याण ! तो क्या तुम स्त्रियों की भांति शोक में अधीर हो जाओगे । युद्ध की बात क्या एक बेरही भूल जाओगे !" कल्याण किञ्चित् शान्त होकर बोले "महाराज ! आगे बढ़ें, मैं अभी युद्ध में चलता हूं ।" पृथ्वीराज ने देखा " कि यदि कल्याण और अधिक क्षण यहां रहे, तो उनका हृदय शिथिल हो जावेगा, शोक में और भी अधीर हो जावेंगे, शोक की समय शोकदृश्य संताप वृद्धि करता है। यही विचार कर किञ्चित् कपटकोप प्रकाश करके बोले "तो क्या आज सत्तोवीर कल्याण को रणक्षेत्र से रोगी के निकट रहनाही अधिक प्रिय है ? कल्याण लज्जित हो गये । कुछ उत्तर न देकर क्षणभर मुख नीचे कर प्रस्थान के लिये रानी से आज्ञा मांगी । किन्तु न जाने किस कारण अचेतन उषावती के मुख की ओर दृष्टि न फेरी, धीरे २ पृथ्वीराज के पीछे २ शिविर के बाहर हो गये । क्रमशः

जब सैन्य कोलाहल और रण के बाजन का शब्द उन के कान में पहुंचा, उन का चित्त किञ्चित् शान्त हुआ। जब सेनायों के मध्य में जा पड़े, तो समर का उत्साह उन के मन में बलवान होगया।

सत्ताईसवां परिच्छेद।

प्रभात होने के पूर्व ही पृथ्वीराज और कल्याण जब राजमहिषी के शिविर में गये, तो योगिन्द्र समरसिंह प्रातः संध्यासमापन करने के लिये पुण्यजला दृशद्वती के तीर आकर बैठे और उनकी थोड़ी सी सेना भी क्षत्रीय रीति के अनुसार पूजा में प्रवृत्त हुई।

क्रमशः रात्रि व्यतीत हुई, पौ फटने से पूर्व्व दिशा रक्त नील पीत नाना बरण से रंजित हो गई। लतापल्लव को किञ्चित् हिलाता, सरोवर को कँपाता, दृशद्वती का निर्म्मल हृदय तरङ्गित करता हुआ, मृदु मन्द शीतल समीर बहने लगा, तीरस्थमल्लिका तथा मालती के ऊपर झुंड की झुंड मधुलोभी भ्रमरों ने उड़ २ कर गूंजना आरम्भ किया, अशोक और पलास से पपिहा का पिउ पिउ, कोकिला का कुहू २ स्वर निद्रित सैनिकों को जगाता हुआ ध्वनित होने लगा। समरसिंह का भी ध्यान भंग हो गया। उन्होंने नेत्र खोलकर देखा, कि कुछ यवनसेना दृशद्वती के

आधी दूर तक लाँघ आई है, तिसके पीछे बहुत सी सेना पार होने के लिये निरीह और निःशब्द भाव से उद्योग कर रही है। समरसिंह ने अपने अनुचरों को युद्ध के लिये तुरन्त एकत्रित करके पृथ्वीराज को सम्बाद देने के लिये दो अनुचरों को भेजा। इस अवसर में समरसिंह अपने अनुचरों को लेकर सन्मुखस्थ यवनदल का आना रोकने लगे। आधे यवन जल में, आधे भूमि पर खड़े होकर अस्त्र चलाने लगे। अल्ला हो अकबर! करते २ झुक पड़े। किन्तु समरसिंह के अटल अचल वीरभाव के विरुद्ध वे सब फिर एक पग भी आगे न बढ़ सके। समरसिंह क्रमशः बल-हीन होने लगे, इधर चत्रोसेनागण ने पृथ्वीराज और कल्याण का अन्तःपुर से आने में बिलम्ब देख उन लोगों की प्रतीक्षा न की, बहुत से समरसिंह की सहायता के लिये चले आये, उधर फिर यवनसेना भयानक वेग से आगे वालों के साथ मिलकर सब की सब टिड्डी दल की भांति आगे बढ़ने लगी। इतने में पृथ्वीराज और कल्याण अनेक सवार लेकर आ पहुंचे और समरसिंह की विपत्ति देख शीघ्रता से नदी तीर पर आकर 'जय आशापूर्णा की जय" शब्द करते हुये उन्होंने यवनों पर आक्रमण किया। समर सिंह भी क्रुद्धसिंह के समान सान धरी तलवार को बिजुली की भांति चलाते २ शत्रुओं में प्रवेश करके दावानल की

भांति प्रचण्ड और चञ्चलभाव से शत्रुओं का संहार करने लगी। यवनसेना पृथ्वीराज के नवउपस्थित सैन्यदल को देख कर भागनेही का विचार किये थी, तिस पर फिर चत्रीय सूरता से त्रासित हो छिन्न भिन्न हो कर सब की सब भागने लगी, पीछे फिर कर देखने का भी किसी को साहस न हुआ।

चत्रीयसेना को शिविर तक फिर आने में प्राय: दो पहर होगया, और अत्यन्त स्थकित और क्लेशित सैनिकगण विश्राम की लालसा से कोई शिविर कोई वृक्ष के छाया में सो रहे। उसी दिन तीसरे पहर समरसिंह, पृथ्वीराज, मंत्री और बिजयसिंह इत्यादि सब के सब एकत्रित हो कर यह बिचारने लगे कि महम्मदगोरी के संग अब क्या करना उचित है। अन्त में सब लोगों ने यही स्थिर किया कि महम्मदगोरी यदि अब अपनी इच्छा से भारतवर्ष त्यागकर चला जावे, तो फिर अब युद्ध का प्रयोजन नहीं है, क्योंकि असमर्थ होकर भागने पर शत्रु को चमाही करना उचित है, दुर्बल के ऊपर बल प्रकाश करना चत्रियों को योग्य नहीं! किन्तु विजयसिंह इसमें सम्मत न हुये, बोले कि "यवनों को इच्छा अब क्या देखनी है, जब उन सबों ने अहङ्कारमत्त हो भारतवर्ष में आगमन की स्पर्द्धा की तो उन सभों की इच्छा हो या नहीं, हमलोग युद्ध में उन

सभों को समुचित दंड देकर देश से मार कर निकाल देंगे, युद्ध में फिर बिचार क्या? यवनों को अब क्षमा क्यों करें? वैरी से बदला लेने में दया क्यों?" पृथ्वीराज और समरसिंह दोनों बोले "उन्हें तो यथेष्ट दंड दे दिया है, दुर्व्वल को मार कर अब क्या होगा, और बिना प्रयोजन हम लोगों को सेना का क्षय करना भी आवश्यक नहीं है। वे सब यदि अब स्वदेश को लौट जाना चाहें, तो हमलोग इन सबों को इसबार भी क्षमा करके निर्विघ्न जाने देंगे यही ठीक करके आजही उनसभों के पास दूत भेजा जावै, क्योंकि वे सब स्वयं इस प्रकार की याचना करने में इस बेर साहसी न होंगे।" इस परामर्श का सबलोगों ने अनुमोदन किया और महम्मदगोरी के पास दूत भेजा गया। महम्मदगोरी अत्यन्त आह्लाद और कृतज्ञता प्रकाश पूर्व्वक इस सन्धि के प्रस्ताव में सम्मत हुये; दो दिन युद्ध में पराजित होकर उनकी बहुत सी सैना हत होगई थी। उन्होंने देखा कि, इस तरह दो एक बार युद्ध में पराजित होने से, हमलोग अब अपने देश को लौट कर न जाने पावैंगे। विजय हमारे पक्ष में रहे, बीच २ में भागने का उपाय और दूसरा २ यत्न होता है, किन्तु उससे भी कोई जय लाभ की आशा नहीं है। यही सब सोच कर वे अत्यन्त चिन्ता में ग्रस्त थे। आपही सन्धि के लिये व्याकुल होकर

पृथ्वीराज के निकट दूत भेजने के निमित्त उत्सुक हुये थे किन्तु पृथ्वीराज के पास दूत भेजने में साहसी न होकर विजय का परामर्श जानने को चुपके पहिले उनके पास एक आदमी भेजा। विजय की बात से फिर उनको जय की आशा हुई और उनके परामर्श के अनुसार कार्य्य करने लगे। विजय ने सलाह दिया कि "सन्धि करो, ऐसा होने से हिन्दू सेना निश्चिन्त हो कर आमोद प्रमोद करेगी, तब अकस्मात आक्रमण करना, किन्तु पहिले समग्र सैन्य युद्धक्षेत्र में मत लाना, कुछ सेना छिपा रखना। जब हिन्दू सेना श्रान्त हो जावे, तब वही अवशिष्ट छिपी हुई सेना लेकर आक्रमण करना, ऐसा करने से निश्चय जयलाभ होगा।" महम्मदगोरी ने विजय के परामर्शानुसार सन्धि स्थापन किया। पृथ्वीराज के क्षमागुण से मानो अत्यन्त उपकृत हुये, ऐसा भाव उस दूत के सामने प्रकाश कर तुरन्त वहां से डेरा डंडा उठाने की आज्ञा दी। दूत के रहतेही रहते उठ कर जाने के लिये बहुत सा सामान हो गया। दूत यह सब देख सुन कर शिविर में फिर आया।

सन्धि स्थापित हो गयी। महम्मदगोरी ने पृथ्वीराज के निकट अपनी अत्यन्त निचाई स्वीकार किया है, दूत के मुंह से यह यह सब वार्त्ता सैनिकों में प्रचार होने से, उनलोगों के आनन्दध्वनि, और भारत की जयध्वनि से

आकाशमण्डल व्याप्त हो गया, सेनापतियों में परस्पर गाढ़ आलिंगन और सैनिकों में परस्पर उत्सव वार्त्तालाप में समय व्यतीत होने लगा। पृथ्वीराज ने सेना में यह कहला दिया कि आज रात्रि जो आशा पूर्णादेवी की प्रतिमा बना कर पूजा कर उस के उपलक्ष में उत्सव समाप्त करके कल प्रातःकाल दिल्ली फिर चलना होगा। केवल पृथ्वीराज, उषावती को पीड़ित समझ कर थोड़ीसी आवश्यक सेना समेत परिवार सहित थोड़े दिन यहीं रहेंगे। पूजा के सामान में समग्र दिन सब सेना व्यस्त रही। कोई फूल लाने में, कोई बलिदान के बकरों औ भैंसों के ढूंढ़ने में, कोई दृशद्वती के निर्मल जल लाने में, इसी तरह हर्ष की उमंग में सब के सब चारों ओर चले गये। कोई २ प्रतिमा बनाने लगे। क्रमशः प्रतिमा तयार होने पर सबों ने मिल कर घोर करतालि बजाई और आशापूर्णा के जयध्वनि से आर्य्यभूमि को कँपाय दिया। संध्या का पहिला पहर बीत गया, आकाश का प्रान्तवर्त्ती तृतीया का क्षीणचन्द्र अस्त हुआ। क्रमशः चतुर्दिक अंधकार फैलने लगा। किन्तु आकाश के तारागण और सैनिकों ने जो आग जलाया था उस प्रकाश से उस अंधकार ने केवल क्षेत्र के किनारे ही सघन हो कर भयानक भाव धारण किया। पूजा के उत्सव और बलिदान के

कोलाहल तथा तुरही और भेरी बजने के शब्द और जय २ निनाद से दिगदिगन्त मथन हो गया। गंध धूप का उठता हुआ धूआं, बलिदान की रक्तलहरी, अनेक प्रकार के फूलों के सुगध का उड़ना सभी उत्सव बढ़ाने लगे। क्रमश: सभ के सभ अमोद आहलाद में प्रवृत्त हुये। कहीं सौ सौ बीरों ने एकत्र हो कर पुरू राजा के पराक्रम का चवाव और क्षत्रीय सूरता के जय का कीर्तन आरम्भ किया कहीं सौ सौ सैन्य भोज के आमोद में मत्त हो रहे हैं, कहीं भाई भाई परस्पर हृदय खोल कर बात कर रहे हैं, कहीं यवनों की भीरुता की चर्चा हो रही है, कोई २ दूसरों से अपने २ प्रिया के रूप गुण का बखान कर रहे हैं, कोई विरहयन्त्रणा में सुखस्वप्न देख रहे हैं। कोई पूजा समाप्त होने से शारीरिक और मानसिक शान्ति लाभ करके सुख से सो रहे हैं। कोई शिविर में, कोई किनारे, कोई वृक्ष के तले, सब के सब आज असीम सुरापान में मत्त हो कर, गाने बजाने में उत्सव के समय को बिता रहे हैं। प्रभात होते ही अब सब दिल्ली लौटेंगे, स्त्री पुत्र कन्या का मुंह देख पावेंगे, यवनों के पराजय का चवाव कर सकेंगे – सभी ओर उत्साह और आनन्द है। पूजा समाप्त होने पर जब आशापूर्णा के पूजा का स्थान जो एक प्रान्त में था शून्य हुआ, जब सभ लोग

उत्सव में मत्त हो गये, तब समरसिंह केवल अकेले इसी छिपे हुये प्रान्त में आशापूर्णा के प्रतिमा के निकट खड़े रहे। देवी के सन्मुख हाथ जोड़ कर आंख बन्द कर बोले देवि आशापूर्णे ! भगवति क्षत्रीयकुललक्ष्मि ! तुमने प्रसन्न होकर हमलोगों की, अपने क्षत्रीयसन्तानों की आशा पूर्ण की--यह जान नहीं पड़ता । क्योंकर हम अपने हृदय की कृतज्ञता का भाव प्रकाश करें, भक्ति के उमंग से समग्र हृदय पूर्ण है, । मातः ! तुम अन्तर्यामिनी हो, तुम्ही हमलोगों के अन्तःकर्ण में एकबेर आंख उठाकर देखो, तुम्ही सब भाव समझ लो मैं प्रकाश करने में असमर्थ हूं।" यही कह कर समरसिंह भक्तिभाव से साष्टांग दंडवत कर फिर उठखड़े हुये. कृतज्ञता के सहकार में फिर प्रतिमा के प्रति दृष्टिपात की, देखा कि जैसे उस प्रतिमा के ज्योतिमय युगलनेत्र से दो बून्द आंसू गिर कर कपोल की रक्तमय आभा को अधिकतर उज्वल कर रहेहैं। यह देख समरसिंह चिहुंक उठे, उनका समस्त शरीर रोमांचित हो गया । योगीन्द्र समरसिंह ने समझा, कि यह कोई भविष्य अमंगल घटना का लक्षण है। 'न जानैं, हमलोगों ने देवी के चरणों में क्या अपराध किया है, न जानैं यह फिर किस प्रकार के अमंल की सूचना है।" यही सोच कर समरसिंह देवी को प्रसन्न करने के निमित्त पुनः उन

की आराधना में बैठे । किन्तु किसी भांति भी देवी के उस मलिन मुख छबि ने प्रसन्नताभाव धारण न किया। तब समरसिंह निराश और आनन्दरहित हृदय से पूजा समाप्त कर बाहर आये, किन्तु उन्होंने उसबात को किसी के निकट प्रकाश करना उचित न समझा, सोचा कि इस अमंगल लक्षण के सुनने से इस आनन्द में सभी निरुत्साह और निरानन्द हो जांयगे और इससे शीघ्र कोई विपत्ति होने की सम्भावना है, अतएव इससमय इसे गोप्य रखनाही उचित है। समरसिंह जिस समय व्याकुलचित्त से इस अशुभ लक्षण का फलाफल बिचारते थे. उस समय बिजयसिंह दृशद्वती के तीर अकेले घोर चिन्ता में मग्न हो कर घूम रहे थे। आधीरात को दो तीन यवनसेना के लोग राजपूत का बेश धारण कर नदीपार हो कर उनके निकट आये। वे सशंकित भाव से एकबेर चारो ओर देख कर अति मृदु, तथा सतर्क भाव से. उनसभों के संग बात करने लगे। कुछ देर पर वे सब भी सावधानी के साथ वहां से चले गये। बिजय भी धीरे २ शिविर में लौट आये। पाठक गण! इस समय पृथ्वीराज और कल्याण कहां हैं? वे लोग मूर्छित उषावती को जो बेसुध पर्य्यङ्क सेवन कर रही है आज फिर देखने गये हैं। रण जीत कर कल प्रात:काल ही सब लोग दिल्ली को लौटैंगे, इसी आह्लाद में आज

सभी उन्मत्त हैं। किन्तु कल्याण ?—उनकी एक मात्र अव-शिष्ट कामना एक मात्र इच्छा व्यर्थ हुई, समर में भी उन की मृत्यु न हुई। उनके हृदय का क्लेश अब कौन वर्णन करे ? मन में बिचारा था कि युद्ध में मरैंगे, उषावती के आगेही इस पापी प्राण को विसर्ज्जन करैंगे. किन्तु क्या हुआ ?—समर में भी तो उनकी मृत्यु न हुई। क्यों ? क्या उषावती को ऐसे अवस्था में देखकर यन्त्रणा भोग करने के निमित्तही युद्ध में उनकी मृत्यु न हुई ? तो अब और क्या उपाय है ? आत्म हत्या ? आत्म हत्या की बात चित्त में सोच कर ऐसे कठिन यातना में भी क्षत्रीय वीर थहरा उठे। इस अधम कार्य्य करने में उनको साहस न हुआ, बिचारा कि आत्महत्या तो कापुरुषों का कर्म्म है. ऐसा करने से चित्तौर राजबंश का अपमान है. क्षत्रियों के सहन-शीलता का गर्व्व लोप होता है, मनही मन बोले "नहीं, नहीं, ऐसा कदापि नहीं हो सकता. मैं आत्महत्या न करूंगा जीते रहने से बहुत दिन लौं दग्ध होऊंगा. नहीं तो पाप का प्रायश्चित्त क्या हुआ ? जिस निर्जन, जलते हुये लम्बे चौड़े ऊसर मैदान में जहां पशु न हो, पक्षी न हो, तृण न हो, लता न हो, उसी उत्तप्त बालुकामय ऊसर भूमि में रह कर उषावती के सुख के लिये देवताओं के निकट प्रार्थना करूंगा, जहां अग्निगिरि का गर्भभेद

कर अग्नि प्रज्वलित है और पिघल २ कर धातुओं का सोता बह रहा है उसी जगह उसी अगम भयानक पर्व्वत में रह कर उषा के निमित्त प्रार्थना करूंगा । मैं मरूंगा नहीं, मरने में तो कुछ भी दंड मुझे न होगा, मरजाने से इस गुरुतर पाप का प्रायश्चित न होगा, मैं चिरकाल लों दारुण दग्ध यंत्रणा भोग करूंगा, उससे भी यदि इस पाप का किंचित मात्र दण्ड होजावे, कुछ प्रायश्चित हो जावे, तो मैं उसी को भोग करूंगा।' इसीप्रकार वे नाना भांति की दारुण चिन्ता करने लगे, सोचते हुये उषावती का मुख कमल देख रहे थे । योंही तीन पहर बीत गया । इसी समय सहसा बाहर भयानक कोलाहल उठा सैनिकों में आकाशभेदी हुल्लड़ मचा । पृथ्वीराज आश्चर्य्य से चिहुंक उठे, कि "अब फिर क्या हुआ" यह कह कर कल्याण की ओर देखा, क्रमश: कोलाहल और भी बढ़ने लगा, पृथ्वी राज रानी से बिदा होकर कल्याण का हाथ पकड़े हुये बाहर आये ।

अट्ठाईसवां परिच्छेद ।

क्रमश: रात्रि व्यतीत हुई । इधर कन्यावत्सला रानी उसी मूर्छित उषावती के बग़ल में बैठी हैं, उसका मुख देख रही हैं, कभी लम्बी सांस लेती कभी धीरे २ अपने

आखों से आंसू पोछती हैं, कभी उषावती का बिखरा और उलझा हुआ बाल सम्भारती और बटोरती हैं, कभी धीरे से कन्या का मुख चूम लेती हैं, । परिचारिकागण पंखा कर रही हैं, जब महिषी का जी नहीं भरता तो आपही पंखा लेकर कन्या को हवा करती हैं, कभी कन्या का सिर अपने गोद में ले लेती हैं। बहुत देर पर उषावती को कुछ ज्ञान हुवा, उनने शून्य दृष्टि से चरोओर देखते २ देखा कि एक अलंग स्नेहमयो माता विषस और मलिन मुख बैठी हैं, सन्मुख दासीगण भी मौन और पुतलो की भांति खड़ी हैं—उषावती को कुछ आश्चर्य हुआ, कुछ भी उसके समझ में न आया, । माता को रोती देखकर बोली 'मा, क्या हुआ है? रोती क्यों हो मा?—बड़ी बेदना होती है मा?" इतना कह महिषी का हाथ अपने हृदय पर रख लिया। बात करते २ उषावती फिर अचेत हो गई। महिषी कन्या की बातों से और भी व्याकुल हो गईं। कातरदृष्टि से कन्या का मुख देख रही थीं, निरन्तर अश्रु धारा ने कपोल से बह कर कन्या के केश भिगो दिये, उन्होंने स्नेह से उसे पोछ दिया, फिर आसुओं की धारा से केश जाल भोगने लगा । उन्होने धीरे २ कन्या का मस्तक उठा कर सिराङ्गे रख लिया । अकस्मात् उषावती करुणा स्वर से बोलो 'पिता—युवराज—कह कर

चिल्ला उठी। महिषी ने व्यग्र होकर अपने गोद में मस्तक रख लिया, उनने समझा कि "राजकन्या के मस्तक में जहां व्यथा है वहीं दुख रहा है, किन्तु फिर समझा कि वह बिकार का घोर स्वप्न देख कर प्रलाप दशा में बक उठी है। यही सत्या था, राजकन्या स्वप्न देखती थी कि—"जैसे वह कल्याण के संग यमुना के तीर पर भ्रमण कर रहीं हैं दोनों प्रेमालाप में मग्न हो रहे हैं। कल्याण लज्जित-भाव से अपना अपराध स्वीकार करके उससे क्षमा की प्रार्थना करते हैं। कल्याण के मुख की ओर देखकर उन को सुखी पाकर वह मानो आह्लाद में हँसती हुई मनही मन हृदय से उन्हें क्षमा करती है। किन्तु लज्जा से खुल कर नहीं बोल सकती, केवल ओठों का हर्षभरा मधुर हास्य, प्रेमपूर्ण नयन की स्थिर ज्योति उसके मन का भाव प्रकाश किये देती है। बात करते२ मानों कल्याण उषावती का चरण पकड़ने लगे हैं। उषावती सलज्जभाव से मृदुहाँस के साथ हँसकर सरक गई। मुंह से यही बात निकली, "उठो उठो, मैं निज प्राण रहते तुम को ऐसी अवस्था में नहीं देख सकती, तुम क्यों मेरे निकट क्षमा चाहते हो ? क्या मैं तुमको क्षमा करने के योग्य हूं ? तुमने क्या अप-राध किया है कि उसके लिये मैं तुमारे ऊपर अभिमान करूंगी ? तो तुम क्षमा क्यों चाहते हो ? मैं तो तुमारा

कोई दोष नहीं जानती। तुम मेरे देवस्वरूप हो। देवता जो चाहें करें कोई दोष नहीं है। तुमारे मन का भ्रम दूर हो गया, अब तुम मुझ को मायाविनी नहीं समझते तुम जो अब मेरे ऊपर प्रसन्न हुये हो, इसी आह्लाद से मेरा समग्र हृदय परिपूर्ण है। इस क्षुद्र हृदय में दोष रखने के लिये बिन्दुमात्र भी स्थान नहीं है"। कल्याण आह्लाद में अधीर हो गये। परस्पर दोनोंही इस समय महासुखी थे। जो देखते हैं उसी में हर्ष दीख पड़ता है, उसी में आशा है, इस समय सभी उनलोगों के निकट हँस रहे थे। सन्ध्याकाल का समय स्वाभाविक शान्त और मधुमय हो रहा है। चान्दनी से प्रदीप्त होकर नदी तीर के वृक्षशाखागण को सन्ध्याकाल का पवन मन्द २ डोलता हुआ मृदुनिनाद करता है। बीच २ में यमुनाजल निःशब्द उन्हीं तीर के वृक्षों के मूल को भिजोता हुआ फिर नदी में गिर पड़ता है। सुनील यमुना इस समय चान्दनी के स्फटिक किरण से धवलित हो रही है। मृदुनिनादिनी, तटप्रघातिनी क्षुद्र २ तरंगमाला से नाचती हुई करारे को स्पर्श करती है; नदी के गर्भ में प्रतिबिम्बित आकाश उसी तरंगमाला के संग नाच उठता है। इस समय चतुर्दिक् शोभायमान है, चतुर्दिक् हर्षित है, चतुर्दिक् शान्त है। अकस्मात् उषावती को फिर दूसरे प्रकार का दृश्य देखने

में आया । पृथ्वी ने विपरीत भाव धारण किया । स्वभाव बदल गया । सहसा शान्ति के स्थान में अशान्ति उपस्थित हुई । भयानक कोलाहल से निःशब्दता शेष हुई । चारो ओर मधुमय के स्थान में भयानक शब्द हो गया । उन्होंने देखा कि अब चान्दनी नहीं है, और तारागण भी नहीं हैं, सहसा घनघोर घटा से आकाश छिप गया, घोर अन्धकार से पृथ्वी ढक गई, भयानक आंधी ने आकर अपना प्रचण्ड प्रताप प्रकाश किया । वायु के शब्द और मेघ के गरजने से धरती कांप उठी । वही छोटी २ तरंगमाला अब पर्वत के समान ऊँची हो होकर तीर के ओर लहराकर गिरने लगी । किन्तु क्या आश्चर्य है, कि इसके मध्य में एक बार भी बिजुली न चमकी, किम्वा एक बून्द भी वर्षा न हुई । अन्धकार में उनलोगों को कोई घर न दीख पड़ा । इस कुअवसर में उषावती के लिये आश्रय ढूंढ़ने में कल्याण अत्यन्त व्यग्र हुये । इस भय से कि इस अन्धकार में उषा-वती कहीं खो न जावे कल्याण उसका हाथ अपने हाथ से दृढ़ता पूर्वक पकड़े रहे । उषावती भी कुसमय से डर कर अर्द्ध मूर्छित अवस्था में उनके कन्धे पर सिर रक्खे रही । देखते २ वही पर्वत समान तरंगमाला किनारे आकर गिर पड़ी । तुरन्त उषावती के स्वप्न ने भिन्नभाव धारण किया । तरंग का आकार बदल गया । क्या आश्चर्य है, वह भयानक

लहर नहीं है। वही तरंगमाला अब असंख्य २ नौका हो गई। नौका तीर लगने पर अनगिनित यवन सिपाही तीर पर कूदपड़े। यवनसेना के समूह से नदीतीरे पर मानोमेघ सा छा गया। वायु के शब्द और मेघ के गर्जन के स्थान यवनों का 'अल्लाहो, अकबर शब्द गगनमण्डल स्पर्श करने लगा, अस्त्रों की झनझनाहट क्रमशः बढ़ने लगी। यवनों को देखकर कल्याण का चत्रीय रक्त उत्तेजित हो गया। वे उषावती को भूल गये। क्रोध से तलवार निकालकर उषावती को उसी दुरावस्था में अकेली छोड़ तीर वेग से वे यवनों की ओर अग्रसर हुये। कल्याण को अकेलेही उस असंख्य यवनों के मध्य प्रवेश करते देखकर उषावती मारे भय के उस स्थान पर मूर्छित हो गई। स्वप्न में फिर मोहभङ्ग हुआ। देखा कि यमुना के तीर वे मूर्छित हुई हैं, वहां अब यमुना नहीं है। रुधिर के प्रवाह में सहस्रों तरंगमाला उठकर उनके पांव में बारम्बार आघात करती हैं। तीरे अनगिनित मुर्दे पड़े हुये हैं, उनके साथ वे भी सोई हुई हैं। सियार कुत्ते उन्हीं मुर्दों की लोथ लेकर परस्पर लड़ रहे हैं। झुण्ड को झुण्ड कौवे गिद्ध गिद्धिनी उसी जगह मुर्दों के लोथ पर उड़२ कर आते हैं। थोड़ेही दूर पर रण का बाजा बज रहा है। तोपों का गम्भीर गर्जन और अस्त्रों की झनझनाहट सुनाई देती है। भय से

वह धीरे २ उसी रणक्षेत्र में उठ बैठी। हा! कैसा भयानक दृश्य है। उनने अपने पिता पृथ्वीराज को यवनों के हाथ में कैद देखा। राजगृह में देखा कि आग लगी है, धांयँ २ जल रहा है। उनका सिर घूमने लगा, बैठ न सकीं, लुढ़क पड़ी, एक रक्तमय मुर्दे के लोथ पर गिर पड़ी। देखा कि वे कल्याण के मृतक शरीर के ऊपर गिर पड़ी हैं। स्वप्न में ऐसा देखते मात्र वे तुरन्त घबड़ाकर "पिता—युवराज" कहकर करुणा के साथ चिल्ला उठीं। महिषी डर कर "उषा, उषा, बेटी!—क्यों ऐसा करती है? कहकर कन्या को पुकारने लगीं। उषावती को कुछ चेत हुआ, धीरे २ कमलनैन खुला, एक गहिरी और लम्बी सांस लेकर 'मां' कह के पुकार उठी। महिषी बोली "पुत्री, क्या भय हुआ था" उषावती धीरे २ अति मृदुस्वर से बोली "मां, मैं एक भयानक स्वप्न देखती थी: मां—पिता—और—और—?" उसका स्वर भंग हो गया। पीले मुख पर किञ्चित् लोहित आभा देख पड़ी, तौभी कल्याण का नाम न कह सकी। "वे सब लोग कहां हैं? उनलोगों को देखने की मेरी बड़ी इच्छा होती है। मैंने स्वप्न देखा कि जसे पिता—जैसे युवराज"—उषावती अधिक न बोल सकी; कण्ठ सूख गया दुर्बलता के कारण फिर निद्रित की भांति पड़रही। थोड़ी देर में चिकित्सक (वैद्य) आये, और सुना कि राजकन्या

को आज मूर्च्छा भंग हुई है, उनने कुछ बातें भी की हैं। यह सुन सोचने लगी कि "यह क्या! आज सहसा ऐसा सुलक्षण क्यों दीख पड़ता है? अतिशय पीड़ा के कारण दो दिन से प्रति दिन जिस्के मृत्यु की आशङ्का हो रही है, अकस्मात् उसको ऐसो शान्ति कैसे हुई? क्या पीड़ा से अब आरोग्य होगी? कि यह मृत्यु का पूर्व लक्षण है? जो हो, आज का दिन बीतनेही से निश्चय समझ में आवैगा"। यह आरोग्य का चिन्ह है किम्बा मृत्यु का पूर्व लक्षण है, वैद्य ने उसको निश्चय न जान कर भी उसकी इस अवस्था को देख सुन कर किञ्चित् आह्लाद प्रकाश किया। वे कुछ काल बैठकर उषावती के निश्चेष्ट मुख का भाव देखने लगे, देखा कि, वही मुख किञ्चित् हास्य से बिकसित होता है, प्रात: कमल की भांति धीरे२ बिकाश पाता है, देखा कि उषावती का ओष्ठाधर मृदुमन्दभाव से काँपता है, मानो बोलने का उद्योग करती है। क्रमश: सुना कि "इन्द्रभुवन पारिजात—वह—युवराज—उठा दो—सिर में"—कण्ठ कण्ठही में रह गया, किन्तु उन्होंने देखा कि उषावती ने दहिना बाँह धीरे २ उठाकर अपने गिरे हुई केश गुच्छों के ऊपर रक्खा और किञ्चित् सौभाग्य की हँसी आई। वैद्य-राज महिषी से बोले "राजबाला सुखस्वप्न देखती हैं, यह भी एक प्रकार का सुलक्षण है। यह सूचिकाभरण नामक

औषधि खिलानी होगी। सिर पर अब और औषध देने की आवश्यकता नहीं है। सिर इस समय अच्छा दीख पड़ता है। आज इस समय जैसा लक्षण देखा जाता है यदि ऐसाही आज रात्रि व्यतीत होने तक रहै तो आरोग्यही की अधिक सम्भावना है। ऐसा होने से राजबाला एकही सप्ताह में आरोग्यता लाभ कर सकेंगी"। यह कहकर वैद्यराज चले गये। महिषी और दासियों का मुख कुछ प्रफुल्लित हो गया। क्रमशः तीसरे पहर उषावती को फिर चेत हुआ। बोली 'माता, बड़ी प्यास लगी है"। महिषी ने अपने हाथ से सोने के घड़े से जल लाकर सोने की झारी में डाल कर मुख में दिया। राजकन्या बोलीं "माता, मैं स्वप्न देखती थी कि यहां से और कहीं गई हूं। कैसे सुख से हम लोग घूमती फिरती थीं! वहां कितना पारिजात है— कितना कनकपद्म है, वहां जाने पर तुमलोग देख पड़ोगी न?" महिषी मन का भाव छिपाकर कष्ट से बोलीं "हां, क्यों नहीं देख पड़ेंगी"। उषावती बोली "माता, पिता कहां हैं, और—और—"उषावती युवराज का वृत्तान्त पूछने में लज्जित हुई। महिषी बोलीं "वे लोग युद्ध में गये हैं"।

उषा०—"मुझ से कहकर नहीं गये क्यों?"

महिषी—"उस समय तुम सोती थीं"। उषावती

को फिर बात करने में कष्ट हुआ। बोली "माता, अब मुझ से बोला नहीं जाता, किन्तु यह पूछती हूं कि—वहां जाने से उनलोगों से भेट तो होगी न?" इतने में द्वार के बाहर एक भयानक कोलाहल हुआ। परिचारिकागण सब की सब उधरही कान लगाकर सुनने लगीं। महिषी भी घबड़ा उठीं। मूर्छित उषावती के कान में भी उस कोलाहल का शब्द स्पष्टरूप से सुनाई पड़ा। सहसा दो तीन क्षत्री सिपाही उलटे सांस उस जगह आये। और हाँफते २ बोले "आओ—आओ—शीघ्र आओ"। सब की सब मिल कर पूछ उठीं "क्या हुआ?" उन सबों ने उत्तर दिया "बोलने का समय नहीं है, शीघ्र आओ, यवनों की जय हुई चाहती है, वे सब अब राजशिविर लूटनेआवेंगे;—पालकी तयार है"। महिषी ने भयभीत होकर पूछा 'महाराज कहां हैं?" वे सब बोले "उनको भूमि पर गिरते देखा है"। इस बात से राजकन्या घबड़ाई हुई की भांति देख रही थी। राजमहिषी ने फिर उन्मत्त की भांति पूछा "समरसिंह?—कल्याण?' कल्याण का नाम राजकन्या के कान पड़तेही, उसको सहसा बल हो गया। उत्तर की आशा में किञ्चित् शिर उठाकर टकटकी लगा देखती रही, सुना कि समरसिंह बलहीन होकर भी अभी तक यवनों का बढ़ना रोक रहेहैं, नहीं तो अब तक वे सब शिविर में आ

गये होते,—और युवराज कल्याण ?--युवराज कल्याण ने युद्ध में प्राण त्याग किया !!! तुरन्त राजकन्या का मस्तक मिट्टी के पिण्ड की भांति सिरान्हे गिर पड़ा !। एक बार माता, पित:—युवराज—यही दो नाम अत्यन्त कष्ट से निकला। उन्होंने आंखें बन्द कर लीं । अनन्त निद्रा में निद्रित हुईं। वस्तुतः दीपनिर्व्वाण हो गया।

किन्तु प्राण त्यागने के संग उनके मुख की श्री कुछ भी न बदली । बरन उनके मुखमण्डल में एक स्वर्गीय शान्तिभाव प्रकाश हुआ। उनका ओष्ठाधर किञ्चित् भिन्न और आंखें कुछ खुली रहने से मन में बोध होता था कि वे अभी कुछ बोला चाहती हैं। राजमहिषी ने कन्या का मस्तक पलंग पर गिरते देख डर से उनके नाक और छाती पर हाथ रखकर देखा । किन्तु कुछ भी सांस न पाया। क्रमशः हाथ पांव मुख की चेष्टा देखकर कन्या की यथार्थ अवस्था समझ गईं। महिषी ने उषावती के पीड़ा के समय से आहार निद्रा प्रायः सब त्याग कर दिया था। एक तो कई दिन से मन का कष्ट, दूसरे निद्रा आहार का छुटना, तिसपर आज पति कन्या और राज से विहीन हो कर वे असह्य कष्ट में मूर्छित होकर गिर पड़ीं।

क्रमशः दासियों की शुश्रूषा से महिषी सज्ञान होकर उठ बैठीं, पुनः उषावती पर दृष्टि पड़ी, उन सिपाहियों

पर दृष्टि पड़ी, उनको अब अपनी यथार्थ अवस्था बोध हुई। वे इस समय पतिहीना, कन्याहीना हैं, उनका राज्य अब नहीं है, इस समय देश यवनों के हाथ में है। उनका हृदय विदीर्ण होने लगा, फिर वे अपने तईं न सम्हाल सकीं, आंखों से आपही आप आंसुओं की धारा बहने लगी। मृत कन्या को छाती से लगाकर रोने लगीं। उस समय एक सिपाही ने कहा "महिषी, कोलाहल बढ़ता जाता है; अब और बिलम्ब करने में विपद् की सम्भावना है;। महिषी रोते २ उठ बैठीं, और शरीर से समय अलङ्कार उतार कर तुरन्त दूर फेंक दिया, आंखों से आंसू पोंछ डाला, एक बूंद भी न शेष रहा, चोटी खोल डाली, महिषी की मूर्ति उन्मादिनी की मूर्ति हो गई। वे उन्मत्ता की भांति शून्य दृष्टि से देखकर हृदयभेदी गम्भीर स्वर से बोलीं 'कैसी विपद! मुझको अब और क्या विपद् होगी? अब मुझको विपद भय नहीं दिखा सकती। तुम लोगों को विपद् से भय होता है तो तुमलोग जाओ मैं नहीं जाऊँगी। मैं भागूंगी नहीं। क्षत्री की स्त्री, स्वामी-पुत्र राज्यविहीना होकर भागना नहीं जानती। पालकी में बैठने के बदले अब हम चिता पर बैठेंगी। यवनों के अधीन होकर जहां चाहो भाग कर प्राण की रक्षा करो, जिसकी इच्छा हो वह क्षत्रीयरक्त को कलंकित करे, किन्तु

मेरा जीना तुमलोगों की भांति नहीं है। जैसी मैं राज-महिषी थी—अन्त समय भी वैसीही राजमहिषी की भांति मरूंगी, क्षत्री की स्त्री की भांति मरूंगी, बीरबाला की भांति मरूंगी, यवन मुझ को देख भी न पावेंगे'। यही कहकर महिषी ने चिता प्रस्तुत करने की आज्ञा दी सेनागण ने लज्जित और हताशहृदय से प्रस्थान किया।

उन्तीसवां परिच्छेद।

जिस युद्ध में पृथ्वीराज कैद हुये, जिस युद्ध में कल्याण ने प्राण त्याग किया, उसी युद्ध के एक पूर्व्व वृत्तान्त को आवश्यक जान कर हमलोग इस परिच्छेद में उसे वर्णन करतेहैं। यवनों के साथ हिन्दुओं के सुलह होने पर पृथ्वी-राज और कल्याण जिस रात्रि उषावती को देखने गये थे उसी रात तीसरे पहर यवन सब सन्धि भंग करके चुपचाप दृशद्वती के पार चले आये थे। उत्सवोन्मत्त हिन्दू सेनागण ने जब देखा कि यवनों ने गुप्तभाव से आकर उनलोगों की छावनी के एक ओर आग लगा दी, और इधर उधर छिट-फुट जो हिन्दू सिपाही थे उनको विश्वाशघातकता पूर्व्वक विनष्ट कर दिया, वे सब उसी बे सरोसामान की अवस्था से कोई आग बुझानेलगे, कोई यवनों की ओर आगे बढ़े। सेना के लोगों की आनन्दध्वनि, आर्त्तनाद से बदल गई,

बाजे का शब्द तोपों की धमक में डूब गया । समरसिंह विपद् देखकर अस्त्र शस्त्र लिये हुये घोड़े पर सवार होकर शत्रु के सन्मुख जा उपस्थित हुये । उन्मत्तों की भांति दोनों हाथ से तलवार चलाने लगे, उनका घोड़ा भी मानों वीर-मद से मत्त होकर उनको यवनों के मध्य में लिये हुये चला गया । उनके चारोंओर बहुत से क्षत्री सिपाही कोई हथियार लिये कोई बिना हथियारही कोई बर्म्म पहिने कोई नंगे शरीर जी पर खेल कर युद्ध करने लगे, क्रमशः थोड़े २ सज्जित होकर उन सिपाहियों के सहायता के निमित्त आने लगे, मरे और घायल सिपाहियों की जगह, फिर नये सिपाहियों से पूर्ण होने लगी । इसके पहिलेही पृथ्वीराज और कल्याण यवनों की चढ़ाई सुनकर सिपाहियों के मध्य में पहुंचे थे । समरसिंह ने कुछ काल लों यवनों को युद्ध में रोका तब तक उनलोगों ने उसी थकी मांदी सेनागण को यथासाध्य शृङ्खलाबद्ध (कतार) करके समरसिंह की सहायता की । समरसिंह ने सन्मुख से हो कर यवनों पर चढ़ाई की थी, इस कारण उनलोगों ने दो ओर से चढ़ाई किया, और समरसिंह के अधीन में और नई सेना भेजा । और यह आज्ञा दिया कि केवल चार सहस्र घुड़ सवार और तीन सहस्र पैदल सेना सज्जित करके विजय अपने साथ लिये हुये पीछे २ आवैं । पृथ्वी-

राज ने इन सब सिपाहियों को सञ्चित रक्खा, विचारा कि यदि पीछे अत्यन्त आवश्यकता होगी तो इन सभों के द्वारा सहायता पा सकेंगे। पृथ्वीराज ने विशेष करके कह दिया था कि जब तक वे राज-भेरी स्वयं न बजावें, विजय उस सेनागण को लेकर रण में प्रवृत्त न हों। क्रमशः अब घोरतर संग्राम आरम्भ हुआ, हथियारों की झनझनाहट, रण का बाजों, और सैन्य कोलाहल से शिविर कांपने लगा, रणक्षेत्र में रक्त की नदी बहने लगी। एक बेर "जय जय महाराज" एक बेर "अल्ला हो अकबर" का शब्द आकाश में गूंजने लगा। इसी प्रकार क्षणकाल घोरतर युद्ध होने पर फिर इस बार भी यवन पराजित हुये, इतनी धूर्तता और चातुरी पर भी न जीत सके। परास्त होकर वे सब भय भीत हो इधर उधर भागने लगे। समरविजयी होकर हिन्दू आह्लाद में मत्त हो गये। वे लोग केवल विजयी होकर सन्तुष्ट न रह सके। यवनों के विश्वासघातकता का फल देने के लिये भागने पर उनलोगों ने शत्रुओं का पीछा किया। कल्याण ने उन्मत्त की भांति उन यवनों की भीड़ को छेदकर मुहम्मदगोरी के पीछे धावा किया। पृथ्वीराज और उनको सेना कल्याण के पीछे २ चली। उन लोगों को इसप्रकार उन्मत्त देखकर बीरचूड़ामणिसमरसिंह भी सेना के साथ उनलोगों की सहायता के लिये चले।

इसी प्रकार दोनों दल के लोग क्रमान्वय से दौड़ने लगे । क्रमशः हिन्दू सैनिक लोग छिटफुट हो गये। मुहम्मदग़ोरी ने जब देखा कि कल्याण की सेना आगे बढ़ आई है और पृथ्वीराज तथा समरसिंह के दल को बहुत पीछे छोड़ दिया है तो वे सहसा सेना लेकर फिर खड़े हुये, कल्याण तुरन्त पूर्ण वेग से घोड़ा दौड़ाकर उनके निकट आये और उन्मत्त की भांति तलवार चलाकर बोले "रे यवन, अपने विश्वासघातकता का दण्ड ले"। यह कहकर मुहम्मदग़ोरी के छाती पर मारने के लिये इच्छा करके प्रचण्ड वेग से हथियार चलाया. किन्तु मुहम्मदग़ोरी के तीर के समान पीछे हट जाने से उसका नोकमात्र उनके छाती में लगा, उससे उस अस्त्र की प्राणघातक तीक्ष्णता अनुभव करके उनने भी तीव्र दृष्टि से कल्याण का मस्तक ताक कर तलवार चलाया, किन्तु कल्याण के ढाल पर पड़कर वह उसी क्षण दो टूक हो गई, मुहम्मदग़ोरी ने फिर तुर्त पल भर में कमर से दूसरी तलवार निकाली। किन्तु उसके खोलने की आवश्यकता न थी, क्योंकि उसके पहिलेही एक सिपाही ने पीछे से कल्याण को निशाना करके एक तीर चलाया था। वह तीर कल्याण के मस्तक होकर ललाट छेद कर अटक गया, कल्याण ने चकित की भांति उसको खींचते हुये पीछे फिर कर देखा। देखा कि विजयसिंह धनुष

से और एक तीर चलाकर विकट हास्य से हँसते हैं। कल्याण ने सिर से तीर निकाल कर दूर फेंक दिया, उसने एक यवन सिपाही के मस्तक को छेदकर उसका प्राण विनाश किया। कल्याण ने विजय को ओर देखा, किन्तु उनको देर तक न देख सके, उनका सिर घूमने लगा और 'रे पापिष्ट, उषावती को बध करके भी तेरे रक्त की प्यास न मिटी" कहते हुये मृत्यु प्राय: होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। मुहम्मदग़ोरी के तलवार से कल्याण का घोड़ा छिन्न मस्तक होकर अपने सवार के साथही गिर पड़ा, दोनों ने क्षण कालही में प्राण त्याग किया। इसी समय सिपाहियों को लिये हुये पृथ्वीराज और समरसिंह आ पड़े। उनलोगों ने मानो सहस्र गुण बलवान होकर यवन सेना पर चढ़ाई की। सहसा मुहम्मदग़ोरी के उसी छिपी हुई सैन्य भाग के मध्य से ५००० घोड़े के सवार, और ४००० पैदल सैन्य ने आकर उसी छितिराई हुई थकी मांदी हिन्दू सैन्य को घेर लिया। तब पृथ्वीराज विजय को उस बाकी सैन्य लाने के लिये कमर से तुरही निकाल बजाकर बुलाने लगे। विजय न आये। पृथ्वीराज समरसिंह इत्यादि सब के सब प्रतिक्षण विजय के आने की प्रतीक्षा करने लगे किन्तु विजय न आये। विजय के आने तक इस चेष्टा से कि यदि वे कुछ काल के लिये भी यवनों के युद्ध में सहायता कर

सकेंगे तो देखा जायगा वे लोग उसी थकी मांदी बँची बँचाई थोड़ी सेना लेकर अनेक यवनों के अग्रसर होने में बाधा देने का यत्न करने लगे। किन्तु सेना रण त्यागने पर बाध्य हुई, तौभो विजय न आये। तथापि यह कहकर कि नई सेना आती है सिपाहियों को भरोसा देकर और हिन्दू वीर्य्य को स्मरण कराकर वे लोग बीच २ में सिपाहियों को समरोत्साही करने लगे और बारम्बार यह देखने लगे कि विजय सेना समेत आते हैं कि नहीं। इतने में दूर से देखते क्या हैं कि उनलोगों की ओर एक सेनादल बढ़ी चली आती है। इस आशा से कि विजय सैन्य लेकर आते हैं उनलोगों का हृदय प्रफुल्लित हो गया। विजय को पीछे रख आये थे किन्तु सम्मुख से आते देखकर बिचारने लगे कि, किसी कारणवश इस ओर से घूमकर आना हुआ है इसी से विजय के आने में इतना बिलम्ब हुआ नई सैन्य देखकर पृथ्वीराज के सेना को फिर बल प्राप्त हो गया। वे लोग, 'जय जय महाराज' बोलते हुये द्विगुणवेग, द्विगुण रोष से उस अगणित यवनसेना के संग युद्ध करने लगे। क्रमशः वह सेना निकट आई। तुरन्त राजपूत सिपाहियों का हृदय टूट गया। वे लोग आशाभंग हो गये—हाय! यह विजय की सैन्य न थी। अब नूतन ५००० यवन घुड़सवार और ६००० यवन पैदल सैन्य उनलोगों पर चढ़ाई करने आती है।

इस समय पृथ्वीराज ने पराजित सैन्य के संग विजय को भी भागते देखा । उन्होंने समझा कि विजय उनकी बात न मान कर पहिलेही से अपनी अधीन रहनेवाली सैन्य दल को लेकर संग्राम में प्रवृत्त हुये थे. अब वह भी दूसरे सिपाहियों की भांति थक कर युद्ध में असमर्थ हो गये हैं। समरसिंह और पृथ्वीराज ने कोई दूसरा उपाय न देखा। निराश होने पर भी जब लों हो सका सिपाहियों को समरोत्साही रखने को चेष्टा करने लगे। किन्तु अब नई सेना ने आकर उनलोगों पर चढ़ाई की इससे उस बची बचाई थकी मांदी सेना गण को उन सभों के विरुद्ध फिर युद्ध करने में हिम्मत न हुई। बहुत से कट कर मर गये, कुछ घायल हुये बाकी सिपाहियों ने हताश हो भागना आरम्भ किया । इस समय सेनापतियों का समरोत्साही वाक्य उनलोगों को उत्साहित न कर सका । केवल थोड़ी सी प्रभुभक्त सेना प्रभुओं के संग प्राण देने को प्रस्तुत रही। अन्त में घायलसिंह के नाईं पराक्रम कर भांति समरसिंह और पृथ्वीराज ने अपनी विश्वासपात्र थोड़ी सी सेना लेकर उन्मत्त की भांति उन सौ सहस्र यवनों के चय करने के लिये दृढ़ प्रतिज्ञा की। घोर संग्राम हुआ—खड़्ग बर्छा तलवार, तीरों से महाप्रलय उपस्थित कर दिया। दोनों हाथों से तलवार चलाते २ समरसिंह ने

एक बार पीछे एक बार सम्मुख आकर सिपाहियों का संहार प्रारम्भ किया। पृथ्वीराज भी समरसिंह की भांति प्रबल प्रताप से युद्ध करने लगे, अकेलेही अनेक यवन सैनिको ध्वंश कर डाला, किन्तु ऐसे अवसर में जय लाभ की आशा रखना व्यर्थ है। युद्ध करते २ उनके सिपाहियों में से बहुतेरे खेत रह गये, और वे भी सर्व्वांग में बान बिध जाने से घायल और मूर्छित होकर घोड़े से गिर पड़े। पृथ्वीराज उसी मूर्छित अवस्था से यवनों के हाथ बन्दी हो गये। देबी आशापूर्णा ने यवनोंही की आशा पूर्ण की! महम्मदगोरी ने युद्धक्षेत्र में यह आज्ञा प्रचार कर दी कि पृथ्वीराज को कोई सिपाही न मारे।

पृथ्वीराज को भूमि पर गिरते हुये देख समरसिंह की जय की आशा लुप्त हो गई किन्तु तौ भी वे अन्त पर्य्यन्त यवनों की गति बन्द करने में दृढ़ हो कर युद्ध करने लगे कुछ देर लों ऐसाही रहा। वही थोड़ी सी बची बचाई सेना लेकर वे इस प्रकार अटल भाव से युद्ध करने लगे, कि यवनों के हृदय में त्रास उपजने लगा। एक घड़ी बीती दो घड़ी बीती, समरसिंह की थोड़ी सेना और भी थोड़ी हो चली तथापि वे उसी प्रकार अटल रहे। वे उसी थोड़ी सी सेना से उनलोगों का गर्व्व चूर्ण करने लगे साहस करके जो लोग उनके निकट आने लगे। समरसिंह के बीर भाव

से डर कर उनके निकट आने में क्रमश. यवनों का कलेजा कंपने लगा। जब महम्मदगारी ने देखा कि उनके आज्ञा पर भी कोई सिपाही आगे नहीं बढ़ता तो उन सभों को साहसी करने के लिये उनने स्वयं आगे बढ़ कर समरसिंह के सेना गण पर आक्रमण किया । इससे उनके सैनिकों को भी साहस हुआ और वे सब उनके पीछे चले। जब समरसिंह की समस्त सेना विनष्ट हो गई तब महम्मदगोरो ने समरसिंह पर आक्रमण किया । किन्तु उनके हस्त-चालित तलवार के सन्मुख आने में साहसी न हुये पीछे से आकर समरसिंह के घोड़े के एक पैर में ऐसो तलवार मारी कि वह कट गया। घोड़े के गिरते २ समरसिंह भूमि पर कूद पड़े, गिरने के साथ चारो ओर से उनके अंग पर अस्त्र की दृष्टि होने लगी, वे दोनों हाथ चलाते हुये उसी अवस्था में युद्ध करने लगे । समरसिंह को बिपत्ति में देख कर महम्मदगोरी ने इस बार उनका मस्तक ताक कर तलवार चलाया। किन्तु उस्से समरसिंह की घूमती हुई दहिनी भुजा कटकर गिर पड़ी । इसको देखतेही बहुत सी यवनसेना ने निकट आकर उनको घेर लिया । कोई हाथ कोई पीठ कोई २ छाती और कोई मस्तक में आघात करने लगे । समरसिंह अब और कुछ न कर सके, हथियार चलाते २ पृथ्वी पर गिर पड़े और

प्राण त्याग कर दिया। सन्ध्या के पहिलेही यवनों की जय हुई। चिरप्रज्वलित दीपक इस बार बुझ गया, आर्य्य गौरव का सूर्य्य आज अस्त हो गया, आज धर्म्म अधर्म्म से परास्त हुआ, आज भारतवर्ष बिषाद के अन्धकारसे छिप गया, केवल यवनों का बिजयपताका रूप प्रज्वलित धूमकेतु मस्तक के ऊपर प्रकाशमान हुआ।

तीसवां परिच्छेद।

अभी तक दिन का अन्त नहीं हुआ है। अनेक क्षण से नभमंडल में कुछ २ मेघ छा रहा है। अस्ताचल को जानेवाले सूर्य्य देव उसी तरल मेघमाला के मध्य में छिप कर अपनी तेजो हीन ज्योति प्रकाश करते हैं। मेघों से छिपी हुई मलिन ज्योति में चारो ओर का अन्धकार भाव मानो और भी बढ़ गया है। उधर उस दूरवर्ती भयानक रणक्षेत्र का भयानक भाव और भी भयानक हो गया है, इधर यह निर्जन क्षेत्र और सज्जित चिता मनुष्य हृदय को उदासीनता से विवश किये देती है। महिषी आज कन्या के संग इसी चिता पर बैठेंगी। महिषी आज देव लोक में स्वामी के दर्शन हेतु गमन करेंगी। किन्तु महिषी के मुख से एक बात भी नहीं निकलती वे अपने प्राणाधिका उषावती को छाती में लगा कर चलती हुई पत्थर

मूर्ति की भांति चिता की ओर चलीं। परिचारिकागण भी रोती हुई उनके पीछे२ चलीं। उन्होंने कन्या को उसी चिता में सुलाकर उसको चन्दन माला से भूषित करके आप भी ललाट में रक्त चन्दन का लेपन किया, और उस चिता को भक्तिभाव से प्रणाम करके चिता में बैठने जाती हैं। इसी समय एक दल क्षत्रिय घुड़ सवारों का उसी स्थान पर आ कर उपस्थित हुआ और उन लोगों के सेनापति घोड़ों से उतर कर महिषी को प्रणाम कर कुछ कहने के आशय से हाथ जोड़ सन्मुख खड़े हुये। उन लोगों के आने से महिषी फिर खड़ी हो गईं और पूछा "बलदेवसिंह! तुम को क्या कहना है कहो, कहने की आज्ञा देती हूं।"

बल—"देवि। दिल्लीश्वर ने मुझको आप के निकट एक बात निवेदन करने के लिये भेजा है।"

महि—"दिल्लीश्वर! उन्होंने तो रणक्षेत्र में प्राण त्याग किया है?।"

बल—'नहीं देवि। उनके घायल और मूर्छित होकर भूमि पर गिरने से सब लोगों ने उनके मृत्यु का अनुमान किया, किन्तु वास्तव में वे — —"

महि—"वास्तवि में वे क्या—? कहो, तुम लोगों की महिषी आज्ञा देती हैं कहो।"

बल—"वास्तविक वे यवनों के हाथ-- बन्दी -- हुये" बन्दी सुनकर महिषी व्यग्र हो गईं। दिल्लीश्वर ने उनलोगों को क्या कहने के लिये भेजा है इसका सुनना वे भूल गईं। सैनिकगण के प्रति घृणा सूचकभृकुटी फेर कर, परिचारिकाओं की ओर रोष से कम्पित मुख फेर कहने लगीं 'परिचारिका गण! यह क्षत्रिय सैनिकगण, ये क्षत्रिय बीरपुरुष समरक्षेत्र त्याग कर 'महाराज बन्दी हुये हैं, यही सुसम्बाद देने के निमित्त इतनी दूर कष्ट सहकर आये हैं। रहैं, ये लोग इसी स्थान पर रहैं, अथवा स्त्री पुत्र कन्या इत्यादि का मुख देखने के लिये अपने देश को लौट जावैं। किन्तु दिल्ली के महाराज चक्रवर्ति हैं। मैं प्रजा होकर कभी स्वतन्त्र नहीं रह सकती, महाराज मेरे स्वामी हैं, मैं पत्नी होकर कभी निश्चिन्त न रहूंगी। ये लोग कभी क्षत्रियजननी के दूध से प्रतिपालित नहीं हैं, किन्तु मैं क्षत्रियकन्या हूं, मैं क्षत्रिय पत्नी हूं, मैं बिना सहायता किसी के आज उनको बन्धन से छुड़ा कर लाऊँगी।" यही कह कर जो सैनिक पुरुष महिषी को सम्बाद देने के लिये घोड़े से उतरा था, उसके हाथ से तलवार खींच लिया और उसके घोड़े पर आरूढ़ होकर वही पट्टबस्त्र पहिने हुये, रक्त चन्दन लगाये छुटे हुये सघन केशजाल से शोभिता, बीरपत्नी अभिमान में गम्भीर

और क्रोध से रक्तवर्ण हो कर, तथा वीरतेज से उन्मत्त की भांति समर क्षेत्र की ओर चलीं । सैनिक लोग अब तो लज्जा और अनुताप से मृत्यु प्राय हो कर मनही मन कहते थे कि "महाराज के छुड़ाने के हेतु जब लों हम लोगों में से एक का प्राण भी रहता तब लों युद्ध करते किन्तु क्या करें महाराज ने हमलोगों को युद्ध से छोड़ाकर अत्याचारी यवनों के हाथ से महिषी और अन्य २ स्त्रियों को अंततः चितारोहण पर्य्यन्त रक्षा करने के निमित्त यहां आने की आज्ञा दी है ।" फिर महिषी को घोड़े की पीठ पर आगे बढ़ते देख वे सभ भी बिद्युत् की भांति तेज उत्तेजित हो उठे और सब के सब भारत की जयध्वनि करते हुये रानी के पीछे २ चले । परिचारिका गण चिता के निकट उषावती को लेकर शून्य दृष्टि से देखती रहीं ।

महिषी जिससमय युद्ध के लिये बाहर हुईं उस समय यवन लोग अपने अवशिष्ट अदण्ड और अटल शत्रु बीर श्रेष्ठ समरसिंह को बहुत कष्ट से बध करके निष्कंटक जय ध्वनि करते हुये शिविर लूटने आते थे । राह में सब उस विकरालमूर्त्ति उस संहारकारणी मूर्त्ति, बीरांगणा को हाथ में कृपाण लिये घोड़े की पीठ पर अग्रसर देखकर पहिले भड़क उठे, फिर जब क्षत्रिय सेनादल उनलोगों की गतिरोध करने में तलवार चलाने लगी, तब उन

लोगों की चटक भंग हो गई । जलधारा की भांति चारो ओर से तीर, बर्छी, बेग से आकर क्षत्रिय सेना के ऊपर पड़ने लगी। क्षत्रिय सैनिक लोग दुर्भेद्य व्यूहबद्ध हो कर महारानी को घेर प्राण पर खेल कर युद्ध करने लगे। यवनगण उन्मत्त तरंग की भांति जितना आक्रमण करने लगे, क्षत्रिय सेना भी समुद्र तीर के शैलश्रेणी की भांति अटल भाव से बारम्बार उन सभों को दूर फेकने लगी। किन्तु महिषी व्यूह में फिर निश्चेष्ट हो कर बैठ न सकीं, अपनी सेना को हटा कर, तलवार हाथ में लिये हुये यवनसैन्य के सन्मुख आने की चेष्टा की, उनकी चेष्टा से उनके सन्मुख की सेना छितराय गई, तुरंत उनसभों के मध्य से एक बर्छा आकर रानी की छाती में बिध गया, वे घोड़े से गिर पड़ीं। उसी क्षण इस आशंका से कि उनका देह कोई यवन स्पर्श न करे एक क्षत्रिय सिपाही ने उनको अपने घोड़े पर उठा कर बेग से घोड़े की बाग छोड़ दी। यवन लोगों ने उसके निकट पहुंच बलद्वारा महिषी को लेने की इच्छा की उसके निवारण के लिये महिषी के संग संग और भी कई एक सैनिकोंने घोड़ा दौड़ाया। यवनगण जब तक उनका पीछा करे, तब तक रानी की बाकी सेना उनसभों की गतिरोध करके खड़ी हो गई। बचने की आशा किम्बा इच्छा फिर उनलोगों में किसी को न रही,

उसी थोड़ी से क्षत्रिय सेना को पराजित करने में बहुत समय लगा और अनेक यवन सैनिक पृथ्वी पर लोट गये।

सैनिक लोग महारानी का मृत शरीर लेकर जब चिता के निकट आये उस समय सन्ध्याकाल व्यतीत हो गया था। उषावती को गोद में लेकर चिता प्रशान्त भाव से मानो महारानी की अपेक्षा कर रहीथी। सैनिक लोगों ने उस चिता पर उषावती के निकट रानी को शयन करा के उसमें आग लगा दी, चिता धधक कर बल उठी। सैनिक लोग और भी आहुति उसमें देने लगे, चन्दन की लकड़ी से अग्नि बढ़ने लगी। क्रमश: अग्नि की लवर गगन स्पर्श करने लगी, परिचारिका गण भी सभ की सभ चिता में बैठ गईं, अग्नि और भी भभक उठी, पतिव्रता के प्रकाश का खम्भ दिगदिगन्त को प्रकाशित कर उस चिता में जलने लगा, क्रमश: आग में लालिमा हो आई, अन्त में चतुर्दिक अन्धकारमय करके वह प्रदीप्त आलोकस्तम्भ लोप होगया, उसीके साथ २ चतुर्थी का चन्द्रमा भी अस्त हुआ, भारत का दीप भी बुझ गया।

चारो ओर अन्धकार मय—चारो ओर शून्यमय—स्थानेश्वर अशाज स्मानमय है—केवल बीच २ में यवनों के आह्लाद का कोलाहल है, हिन्दुओं का आर्त्तनाद है, घायलों का कातरस्वर है, और सियारों का अभंग चीत्कार दिगदिगन्त से उठकर गगन मार्ग को विदीर्ण करने लगा।

उसी समय से वही संकीर्ण स्मशान क्षेत्र क्रमशः बिस्तृत हो कर हिमाचल से कन्याकुमारी तक समस्त भारतभूमि में व्याप्तमान होने लगा। क्रमशः समस्त भारतक्षेत्र स्मशानक्षेत्र हो गया। चारो ओर से उस शिवाका अशिव चीत्कार, उन घायलों का आर्त्तनाद प्रतिध्वनित होने लगा। दीपहीन भारत चारो ओर से क्रमशः निशा के घोर अन्धकार में छिप गया। अब कुछ भी नहीं दीख पड़ता, केवल कभी २ दूरप्रान्त में दो एक प्रज्वलित चिता धधक कर जल उठती है जिस से पाषाण हृदय भी संतप्त होता है और कहीं २ लुक के तीक्ष्ण प्रकाश से मनुष्यों की दृष्टि चौंक जाती है।

एकतीसवां परिच्छेद।

समरसिंह हत हुये, पृथ्वीराज बन्दी हुये, रणबिजयी महम्मदगोरी को आज कैसे सुख का दिन है उन्हें आज थकावट नहीं है, उनको आज बिश्राम नहीं है। युद्ध जय होने पर बिश्राम न करके वे इस समय घोड़े पर सवार हो कर, चारो ओर का वृत्तान्त देखते फिरते हैं। सैन्यगण को युद्ध के पुरस्कार (ईनाम) में हिन्दुओं की छावनी लूटने को आज्ञा देते हैं, घायल और थके मांदे

सैन्य गण को अब विश्राम की आज्ञा देते हैं, हिन्दू कैदियों को देख कर कि कहां २ हैं उनके निकट उत्तम रूप से पहरेदार नियुक्त करते हैं, किसी २ हिन्दू कैदी को जल्द बध करने की आज्ञा देते हैं। इसी प्रकार से चारो ओर के बन्दोबस्तही करने में व्यस्त हो रहे हैं। इसी समय दो तीन यवन सैनिक आकर आदाब बन्दगी बजा कर उनसे बोले "जहांपनाह! हमलोग छावनी लूटने जाते थे, राह में थोड़ी सी लश्कर लेकर हिन्दू रानियों ने पागलों के मानिन्द दीवाने हो कर हमलोगों पर हमला किया। पृथ्वीराज के गिरफ़ारी का हाल सुनकर वे उसके रिहाई के फिक्र में आई थीं। मगर हमलोग उनको अभी कतल किये आते हैं।" यह बात सुन कर महम्मदगोरी आश्चर्य्यान्वित हो कुछ देरलों चुपचाप रहे, फिर न जाने क्या सोच कर बोले "तुमलोग हमारे सिपहसालार और खास २ मुसाहिबों को यहां ले आओ, जल्द जाओ, मैं इसीबरगद दरख़ के नीचें इन्तजारी करता हूं।" एक सैनिक बोला "सिपहसालार ने तो लड़ाई में इन्तकाल किया।"

महम्मदगोरी—"आज कुतबुद्दिन नया सिपहसालार मोकर्रर किया गया है। उसी को खबर दो'। इतनी सुन सैनिक लोग चले गये। थोड़ी देर बाद सेनापति और सभासदगण उस जगह आकर उपस्थित हुये। महम्मदगोरी

सेनापति को सम्बोधन कर बोले "कुतुब! सुना है कि पृथ्वीराज के कैद का अहवाल सुनकर हिन्दू रानियें उसे छोड़ाने के लिये आई थीं"।

सेनापति—"जैसा गरूर किया था उसका वैसाही समरा भी पाया!"

मह०—'यह तो हुआ, लेकिन क्या तुमको इससे यह नहीं मालूम होता, कि पृथ्वीराज जब तक कैद रहेगा तब तक हमलोग बेफ़िक्र नहीं रह सकते। इसमें वे काम-याब हों या न हों मगर उसके रिहाई के लिये हिन्दू लोग ज़रूर फिर लड़ेंगे।"

सेना०—"हिन्दू लोग जैसे शिकस्त हुये हैं, क्या फिर भी उनमें लड़ने की ताकत बाकी है?"

मह०—"तो तुमने अभी तक उनलोगों को पहि-चाना नहीं। वे सब जैसे वफ़ादार और अतायतशआर हैं, राजा को कैदी सुनने से मुल्क में वे लोग जिन्होंने हथियार हाथ में नहीं लिया, वे सब भी हथियार उठाने की ख्वा-हिश करेंगे। देखो! उसकी साहिद औरतें हैं जो उसके लिये हमलोगों के मुकाबिल जङ्ग करने आई थीं"।

सेना०—बेशक आईं, मगर हुआ क्या? अब पृथ्वीराज नहीं, समरसिंह नहीं, वह शेर का बच्चा कल्याण भी नहीं है, अब किसका खौफ़ है? रियाया का? जिन्होंने पैदाइश से कभी हथियार नहीं उठाया?"

मह०—'नहीं, नहीं, मैं ख़ौफ़ की बात नहीं कहता अब तो हमलोग बिलाशुबहा उन छोटी २ आफ़तों को दफ़ा कर सकेंगे। लेकिन लड़ाई होने में भी तो सिपाही मारे जावेंगे, और नुकसान भी होगा, अगर बिला तरद्दुद हमलोग इस फ़तेहयाबी का समरा उठा सकें, तो फिर बिला ज़रूरत लड़ाई करने से क्या फ़ायदा? पृथ्वीराज को क़त्ल करनेही से अब हमलोग बेख़तर होंगे, ऐसा होने से फिर किसकी रिहाई के लिये हिन्दू लोग जान देने आवेंगे ? क़त्ल करने से क्या नफ़ा नुकसान है इसका तस्फ़ीया इसी वक़्त होना चाहिये"।

उसी बटवृक्ष के नीचे घोड़े के पीठ पर इस विषय पर उनलोगों का परामर्श होने लगा। एक सैनिक बोला "मगर पृथ्वीराज को क़त्ल करने के एवज़ अगर हमलोग उसे बतौर गुलाम के अपने मुल्क में फ़तहयाबी का निशान बनाकर ले चलें तो हमलोगों को और भी ज़्यादा फ़ख़्र हासिल होगा"।

मह०—"नहीं, नहीं, जो वजूहातें मैंने कही हैं उन्हीं वजहों से पृथ्वीराज को उतने दिन तक क़ैद में रखना मसलहत नहीं है"। एक और सैनिक बोला "लेकिन पृथ्वीराज को जिन्दा रखने में उसके ज़रिये से अगर हमलोगों का फ़ायदा हो तो इसमें क्या हरज है ? क्योंकि हमलोगों

को फिर भी हिन्दुस्तान के और दूसरे अतराफ़ में फतेह करने के गरज़ से जाना है, अगर पृथ्वीराज उस बारे में हमलोगों की मदद करेंगे तो बिलाशुबहा मुराद हासिल होगी। अगर वे हमारे राय को कबूल करें तो एक छोटा सा मुल्क अपने मातहत में उनको दे दिया जावेगा, और कामयाबी के बाद इस सुलह का तोड़ डालना तो हमलोगों के अख़्तियार में है, इस तौर के सुलह होने में किसी बात का ख़ौफ़ नहीं है"। सब किसी ने इसी बात का अनुमोदन किया। मुहम्मदग़ोरी बोले "यह राय तो अच्छी है। मगर सुलह हो या क़त्ल यह इसी वक्त से हो जाना चाहिये"। यही कहकर उन्होंने पृथ्वीराज को उसी जगह लाने की आज्ञा दी। सैनिक लोग शृङ्खलाबद्ध पृथ्वी-राज को उसी स्थान पर ले आये। पृथ्वीराज का समस्त शरीर क्षत विक्षत था, किन्तु शारीरिक कष्ट से उनकी भौं मात्र भी टेढ़ी न थी देखने में नम्रता या संकुचित भाव कुछ भी न था, वरन वह बीरमूर्त्ति और अधिकतर क्रोधी हो गई, अधिकतर तेजस्विनी हो गई। पृथ्वीराज यहां आने पर कुछ भी न बोले, बात करने में भी उनको अपमान बोध होने लगा। वे तुच्छभावसूचक और रोष गम्भीर आरक्त दृष्टि से देख रहे थे। कैदी का ऐसा भाव देखकर मुहम्मदग़ोरी आश्चर्य्यान्वित हुये, उनका कटाक्ष देखकर

अज्ञातभाव से आपस में मानो कुछ सहम गये । उनके मुख से कोई कठोर बात न निकली । वे नम्रभाव से बोले "महाराज आपने और भर्तबे हमलोगों के साथ सलूक किया था, इस मर्तब: आप देखेंगे कि हमलोग उसे नहीं भूले हैं, मैं भी आपके उस सलूक के बदले सलूक करूंगा" इस बात का पृथ्वीराज क्या उत्तर देते हैं सुनने की इच्छा करके मुहम्मदगोरी चुप हो गये; किन्तु पृथ्वीराज ने कुछ भी उत्तर न दिया । अनुग्रह की बात सुनकर अपमान से उनका शरीर सिर से पैर तक जल उठा, रोमाञ्च खड़े हो गये । यवनों का अनुग्रह वाक्य भी उनको सुनना पड़ा ! विधाता ने युद्ध में भी उनकी मृत्यु नहीं लिखी! पृथ्वीराज ने अति कष्ट से अपने चित्त को सँभाला । किसी की ओर न देखकर दृष्टि नीचे कर ली । उनको निरुत्तर देखकर मुहम्मदगोरी फिर बोले "मैं आपकी जांबख्शी करूंगा, अपने मातहत आपको मुल्क दूंगा" । अधीन में राज्य देंगे! सुनकर पृथ्वीराज के आंखों से आग की चिनगारी निकलने लगी, शरीर का रक्त गर्म हो उठा । मुहम्मदगोरी ने मन में बिचारा जीवनदान सुनकर मालूम होता है कि सहसा पृथ्वीराज और भी तेजमान हो गये । वे बोले लेकिन मैं आपके साथ सलूक करूंगा तो आपको भी मेरे साथ स-लूक करना पड़ेगा । मै हिन्दुस्तान के और २ अतराफ में

फतेह करने जाऊँगा, आपको भी मदद करनी होगी"। पृथ्वीराज से अब न रहा गया, फिर अपना संकल्प स्थिर न रख सके, बात करनेसे फिर न रुक सके. क्रोध नें मुग्ध होकर कमर में जो तलवार थी उस पर हाथ बढ़ाने की चेष्टा की, किन्तु चेष्टा निष्फल हुई, जंजीर का झनझन शब्द हुआ हाथ बँधा हुआ पाया, उनको अपनी प्रकृति अवस्था स्मरण हुई, देखा कि वे कैदी हैं, दिल्ली के महाराजाधिराज पृथ्वीराज आज यवनों के हाथ में कैद हैं। इस समय वे रस्सी में बँधे हुये क्रुद्ध सिंह की भांति, बँधे हुये दावानल के समान भयानक मूर्ति धारण करके रोष कम्पित वज्र गम्भीर स्वर से बोले, यवन ! दुरात्मन ! कैदी समझकर मेरे निकट इस प्रकार् अधम प्रस्ताव करने में तुझ को साहस हुआ। मैं यवन के अधीन में राज्य भोग करूंगा ?! मैं अपना देश दे कर—" क्रोध से पृथ्वीराज का कण्ठ बद हो गया, और बात न करसके। उस गर्वित बात से महम्मदगोरी भी क्रुद्ध हो गये। आपही से हृदय का यथार्थ भाव प्रगट हो गया, मीठी २ बातों से फिर उस को न छिपा सके, कठोर स्वर से बोले, "मुसलमानों से सुलह करने में आपकी बेइज्जती है ? तो मुसलमानों के हाथ से कतल होनेही में आप की इज्जत मालूम होती है'।

पृथ्वी—'यवन के हाथ से ?—पिशाच के हाथ मे मृत्यु भी अब मेरे पक्ष में सम्मानजनक है। किन्तु अब

नहीं—तेरे उपहासवाक्य का अब मैं उत्तर न दूंगा । दुरात्मन् ! यवन के संग वार्तालाप करना भी क्षत्री के पक्ष में कलंक है " कह कर पृथ्वीराज मौन हो गये । बन्दी का गर्व्वित भाव महम्मदग़ोरी फिर न सह सके । तुरन्त अपने सन्मुख उन के बध करने को आज्ञा दी उन्हों ने इङ्गित किया, प्रहरीगण पृथ्वीराज का हाथ पकड़ कर किंचित ओट में ले गये, और उन को मस्तक नीचे करके बैठने को आज्ञा दी, सैनिक लोग चारो ओर से घेर कर खड़े हो गये, महम्मदग़ोरी ने फिर इशारा किया, घातक (जल्लाद) आज्ञानुसार कुठार से एक २ करके पृथ्वीराज का तमाम अंग छेदन करने लगा, हर्षित लोचन से महम्मदग़ोरी उस को देखने लगे । किन्तु इतने कष्ट पर भी पृथ्वीराज ने एक भी बात मुंह से न निकाली, एक बार भी कातर स्वर से न बोले । महम्मदग़ोरी ने फिर इशारा किया, घातक ने हाथ तौल कर पृथ्वीराज के गले पर कुठार चलाया, रक्त बहता हुआ मस्तक भूमि पर गिर पड़ा, आर्य्यकुलगौरव दिल्लीश्वर का मस्तक आज यवन के हाथ से छिन्न हो कर भूमि पर गिरा—शेषनाग सहस्र मस्तक से व्यथित हुये - समुद्र के सहित भारतवर्ष काँप उठा—स्वाधीनता अनन्त मूर्छा में मूर्छित हुई - बस दीपनिर्वाण हो गया ।

उपसंहार ।

दीप तो निर्वाण हुआ, किन्तु अब तक किरणसिंह, कविचन्द्र, शैलवाला और प्रभावती क्या हुई, उस को कुछ वर्णन करके इस उपन्यास को समाप्त करते हैं । कविचन्द्र यथासाध्य चेष्टा करने पर भी नाना कारणवश समय से दिल्ली न पहुंच सके। प्रथम कारण यह था कि कविचन्द्र को ढूंढने यवन लोग पहिले दिल्ली ही की ओर जावेंगे इस विचार से उन्होंने उस रात को भागने पर पहिले दिल्ली की ओर जाना युक्तिसिद्ध न समझा, इसी हेतु दूसरी ओर चले । एक ही रात में दिल्ली से भी और अधिक दूर जा पड़े। दूसरा कारण यह था वहां से दिल्ली आने का कोई उत्तम पथ न था, अतिदुर्गम मार्ग था आने की समय पथभ्रम इत्यादि नाना असुविधे हुये । सुतरां इसी प्रकार सामान्य २ नाना कारणों से यवनों के थानेश्वर आने के तीन चार दिन उपरान्त वे दिल्ली पहुंचे । वहां आने पर सुना, कि महम्मदग़ोरी ने विजयी हो कर पृथ्वीराज को बध किया और दिल्ली में राज्यस्थापन करने के लिये थानेश्वर से दिल्ली आते हैं । कविचन्द्र ये सब बातें देख सुन कर जितने व्यथित हुये उसका कहना बाहुल्य मात्र है। फिर उन्होंने गुलाब को देखा, गुलाब को उन्मत्तावस्था में देख कर उनका शोकसागर एक

बेर उमग पड़ा, किन्तु क्या करैं—भग्नहृदया उन्मता गुलाब को संग लेकर चित्तौर की ओर यात्रा की । यह समझ कर कि गुलाब उन्मत्त हो गयी है महिषी अपने संग उसको स्थानेश्वर नहीं ले गयीं, दिल्ली ही में रख गयी थीं । किन्तु कविचन्द्र आप कितनेहूं व्यथित क्यों न हों, वे चित्तौर आ कर पहिले एक विशेष कार्य्य करने में तत्पर हुये—कदाचित् यवन चित्तौर आक्रमण करने आवैं इस बिचार से उन्होंने पूर्व प्रबन्ध कर उस नगरी को उत्तम रूप से युद्धसामग्री द्वारा सज्जित कर रक्खा । इस कार्य्य के समाप्त होने के कुछ दिन उपरान्त शैलवाला का किरणसिंह के साथ बिवाह कर दिया, प्रभावती और गुलाब को लेकर जन्मभूमि अजमेर के एक छिपे हुये पर्वत-कन्दरा में आकर शोकसंतप्त चित्त से उसी जगह बास करने लगे । वहां रह कर पृथ्वीराज का पराक्रम, रूप और महिमा का वर्णन, उदारता और बीरता काव्यरीति से छन्दोबद्ध करने लगे राजपूतों का इतिहास वर्णन करना उन के जीवन का एक मात्र प्रधान उद्देश्य हुआ । गुलाब ने अजमेर में आ कर थोड़ेही दिन उपरान्त परलोक की यात्रा की ।

अन्त में विजय के जीवन का उपसंहार भाग भी वर्णन करना आवश्यक है । युद्ध जय होने पर जब महम्मदगोरी

सैनिकों को पुरष्कार (इनाम) देने के लिये सभा करके बैठे, उस समय विजय ने सबके पहिले ही करबद्ध खड़े हो कर महम्मदगोरी के निकट दिल्ली के सिंहासन के लिये प्रार्थना की। महम्मदगोरी क्रोध से बोले "जो शख्स अपने मुल्क और मालिक के बखिलाफ निमकहरामी कर सकता है, उस को तख्त देने के एवज़ जांबकशी करना क्या कम ईनाम है? इतना सुनते ही सभासदगण हास्य करने लगे, विजय सहम कर काठ हो गये, पुरष्कार के सुन्ने से मानो विजय पर बिजुली गिर पड़ी, उसके हृदय से सभी आशा जाती रही, उसने समझ लिया कि किसी कुकर्म्म करने से उसके निकट भी लज्जित होना होता है, जिसके लिये वह किया जावे अपना कार्य्य सिद्ध होने पर उन लोगों से प्रत्युपकार नहीं मिलता। विशेषतः यवनों के हृदय में दया नहीं है, इन सबों की बात में हम क्यों भूले? क्या उस समय हिंसा और लोभ के परवश हो कर यवनों के स्वभाव को भी न पहिचान सके? क्या अपना देश यवनों को देने ही के लिये हमने विश्वासघातकता की थी। इस समय उन का हृदय अनुताप से पूर्ण हो गया। उन्हों ने देखा कि वे सकल दोषों के दोषी हैं। उन्हों ने लोभ के परवश हो कर अपने देश का गौरव नष्ट किया, उन्हों ने हिंसा के परवश हो

कल्याण और राजकन्या का इस लोक का सुखहरण किया, उन्हों ने स्वार्थपरवश हो कर निर्दोषी गुलाब को दोषी बनाया। वेही कल्याण के हत्याकारी हैं। उन से कौन पाप नहीं हुआ? उनके पाप का अब प्रायश्चित नहीं। विजय ने अपने तुल्य पापी और किसी को भी न देखा। वे जीवित अवस्थाही में नरक भोग करने लगे, उस समय उस यंत्रणा से मुक्त होने का एक मात्र उपाय मृत्यु ही बोध होने लगा। इसी प्रकार सोचते २ क्रमशः पहिले मन का बेग जब कुछ कम हुआ तो उनकी चिन्ता-श्रेणी ने भिन्न भाव धारण किया, महम्मदग़ोरी का अ-न्यायाचरण मन में सोच कर क्रोध से अंग जल उठा, तब उन्होंने क्रुद्धभाव से महम्मदगोरी से कहा "यवन ! मैं अति मूर्ख हूं !—इसी नराधम !—इसी पाखण्डी—इसी कृतघ्न यवन का विश्वास करके अपने देश का मैंने अमंगल किया। पाखण्ड! मैं इस का बदला लूंगा और इसका बदला ही लेकर अपने सकल पाप का प्रायश्चित्त करूंगा"। यह कह कर विजयसिंह क्रोध से कांपने लगे। विजय की बात सुन कर महम्मदग़ोरी ने क्रुद्ध हो कर उनको यावज्जीवन शृंखलाबद्ध रखने की आज्ञा दी। इस स्थान पर यह कहना उचित है—कि विजय के पिता वृद्ध मन्त्री ने रणक्षेत्र में प्राणत्याग किया था,

पुत्र की विश्वघातकता सुन और उसका यह निकृष्ट आचरण देख उनको फिर वृद्धावस्था में कष्ट भोगना न पड़ा।

समाप्तम्।

पुस्तक वितरण की तिथि नीचे अङ्कित है। इस तिथि सहित १५ वें दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए। अन्यथा ५ नये पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।